प्रवेशिका पाठ्य पुस्तक-2

(एकांकी, सत्य का स्वर, व्याकरण)

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

त्यागरायनगर, चेन्नै-17

प्रवेशिका पाठ्य पुस्तक-2

पहला भाग

पाँच एकांकी

विषय सूची

1.	भरत का भाग्य	–	डॉ. रामकुमार वर्मा	5
2.	भीम और राक्षस	–	विष्णु प्रभाकर	24
3.	न्याय की जीत	–	—	36
4.	राजपूतनी का बदला	–	द्विजेन्द्रलाल राय	51
5.	बंदी (दूसरा दृश्य मात्र)	–	श्री आरिगपूड़ी रमेश चौधरी	61

1. भरत का भाग्य

डॉ. रामकुमार वर्मा

पात्र-परिचय

पुरुष पात्रः-

श्रीराम	–	अयोध्या के महाराज
भरत, शत्रुघ्न	–	श्रीराम के भाई
वशिष्ठ	–	महर्षि
सुमन्त, जयन्त, सिद्धार्थ	–	मंत्रीगण
हनुमान	–	श्रीराम के भक्त
नागरिक आदि		

स्त्री पात्रः-

कौशल्या	–	श्रीराम की माता
माण्डवी	–	भरत की पत्नी

दृश्य - 1

स्थान-नन्दि ग्राम, अयोध्या से एक कोस दूर।

[पर्णकुटी के सामने का भाग]

[भरत श्रीराम की पादुकाएँ सामने रक्खे हुए विनीत भाव से हाथ जोड़े हुए हैं, काषाय वस्त्र और कृष्ण मृगचर्म धारण किए हुए हैं! सिर पर जटाओं का जूट है। शरीर से कृश और मन से उदास हैं। फल-मूल खाकर इन्द्रियों को अपने वश में रखते हुए वे तप में रत हैं और धर्माचरण में लीन हैं। देखने में सूर्य के समान तेजस्वी हैं। उनके समीप ही सुमन्त, जयन्त और सिद्धार्थ, मंत्रीगण काषाय वस्त्र और कृष्ण मृगचर्म धारण किए खड़े हैं।]

भरत–*[पादुकाओं का पूजन करने के बाद शंख-ध्वनि करने के अनंतर]* श्री रामराम रघुनन्दन राघवेश! प्रभुराम की ये पादुकाएँ समस्त राज्य का मंगल करें! धर्म के ये दोनों नेत्र, प्राणों के ये दो रक्षक, साकेत की रक्षा करें।

सुमंत–जय हो, देव!

भरत–महाराज रामचन्द्र की वन-यात्रा समाप्त हो रही है। उनका कोष्ठागार परिपूर्ण है?

सुमंत–*[हाथ जोड़कर]* स्वामी! आपके आदेशानुसार कोष्ठागार में एक सहस्त्र नये कोष्ठों का निर्माण हो चुका है और उनमें पहले से दस गुनी अधिक अन्न-राशि है। जब उन कोष्ठों में प्रचुर अन्न के पुष्ट दाने उड़ेले जाते हैं तो उनमें से ऐसी ध्वनि निकलती है जैसे भगवती अन्नपूर्णा के नूपुरों की ध्वनि हो रही है।

भरत–सुमंत! मेरे कान तो भगवती सीता के नूपुरों की ध्वनि सुनना चाहते हैं।...*[गहरी साँस लेकर]* ओह, भगवती सीता! *[प्रकृतिस्थ होकर]* जयन्त! भगवती सीता राजलक्ष्मी हैं, उन्हीं की कृपा से यह समस्त कोष है। वह कोष तो हमारी सेवाओं से व्यवस्थित है?

जयन्त–*[हाथ जोड़कर]* प्रभु! राज्य-कोष में स्वर्ण और रत्नों का प्रकाश है! अमावास की रात्रि में तारों की जो शोभा है उससे भी अधिक कोशल के कोष की शोभा है! सूर्य, चन्द्र और समस्त नक्षत्र जैसे राशि-राशि होकर इस कोष में निवास करते हैं। इन रत्नों में से जो किरणें निकलती हैं वे कक्ष के समस्त अन्धकार को दूर कर देती हैं।

भरत–वे प्रभु राम के अंगुष्ठ-नखों की किरणें हैं जो हृदय के अन्धकार को दूर करती हैं, जयन्त। उनकी सेवा का सौभाग्य भाई लक्ष्मण को प्राप्त है। सिद्धार्थ! भाई लक्ष्मण को जो विशेष प्रिय है, उस सेना का संरक्षण तो ठीक है?

सिद्धार्थ–*[हाथ जोड़कर]* प्रभु! सुमेरु की भाँति ही यह सेना सुदृढ़ और संगठित है। आपने महाप्रभु की पादुकाओं से आदेश लेकर सेना को जो शस्त्र दिए हैं और उनकी जैसी शिक्षा सैनिकों को मिली है उसे देखते हुए सूर्यवंश की शक्ति चिरस्थायी रहेगी।

भरत–तथास्तु! सुमन्त, जयन्त और सिद्धार्थ! राजाधिराज रघुनन्दन की प्रीति के पात्र बनो। कल प्रभु की वन-यात्रा की अवधि समाप्त हो रही है। उनके आने पर उनकी राज्य-श्री परिवर्धित कर उन्हें सौंपनी होगी। तुम सब जाओ और प्रभु के आने के मार्ग में सुख-श्री का विस्तार करो। श्री पादुकाओं की सेवा में प्रणाम निवेदन कर जा सकते हो।

सुमंत–*[हाथ जोड़कर]* पूज्य पादुकाओं की श्री-सेवा में प्रणाम।

जयन्त–*[हाथ जोड़कर]* पूज्य पादुकाओं की श्री सेवा में प्रणाम।

सिद्धार्थ—*[हाथ जोड़कर]* पूज्य पादुकाओं की श्री सेवा में प्रणाम।

[तीनों का प्रस्थान]

भरत—*[गहरी साँस लेकर दुहराते हुए]* पादुकाओं की श्री-सेवा में प्रणाम! *[हाथ जोड़ते हैं।]* मेरी आराध्या! जिन्होंने वन-यात्रा में प्रभु के पैरों को कंटकों से बचाया। और वे कंटक मेरे कारण–भरत के कारण--उनके मार्ग में आए! मेरे कारण! ओह भरत! अभागे भरत! क्या तेरा जन्म इसीलिए हुआ था कि प्रभु वन-यात्रा करें? प्रभु का अनुज होते हुए भी उनसे दूर....बहुत दूर...! मेरी आराध्या! तुम तो उनके पास रहीं। उनके चरणों में तुमने निरन्तर निवास किया। किन्तु इस पापी भरत ने तुम्हें भी उनके चरणों से दूर कर दिया। इस कलंकी भरत से क्या-क्या अपराध नहीं हुए। *[गला भर आता है]* मुझे क्षमा करो। मैंने अपने सहारे के लिए तुम्हें प्रभु के चरणों से दूर किया..........

[माण्डवी का प्रवेश]

माण्डवी—*[प्रवेश करते ही]* आर्य!

भरत—*[चौंककर]* कौन माण्डवी! आओ आओ, आज अपने कलंकित आर्य का एक कलंक और सुनो। महाप्रभु के चरणों में निवास करने वाली इन पादुकाओं को मैंने महाप्रभु के चरणों से दूर कर दिया। इनका भाग्य भी मैंने नष्ट किया!

माण्डवी—आर्य! ये पादुकाएँ महाप्रभु के चरणों में रहते हुए महाप्रभुमय हो गई थीं, फिर चरणों से दूर होना कैसा? आप मन की ग्लानि दूर करें।

भरत—तब देवी! ये पादुकाएँ मुझसे अधिक सौभाग्यशालिनी हैं। महाप्रभु के चरणों में निवास का सौभाग्य इन्हें यहाँ तक मिला कि ये महाप्रभुमय हो गई और मैं?

माण्डवी—प्रभु! आप परम सौभाग्यशाली हैं। आप को तो यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि आप महाप्रभु के प्रेम को संसार में सूर्य की भाँति प्रकाशित कर दें। आपके बिना यह किसी से भी संभव नहीं था। यदि उनके प्रेम ने कोई रूप ग्रहण किया है तो वह आपका ही रूप है, प्रभु!

भरत—देवी! तुम्हारे सन्तोष के शब्दों की कोई सीमा नहीं है।

माण्डवी—आर्य! महाप्रभु की कृपा ही हमारे सन्तोष का बल है। अब आप कुछ फल ग्रहण करें। मैं महाप्रभु के उद्यान से लाई हूँ। कल से आपने कुछ भी ग्रहण नहीं किया।

भरत—देवी! मैं महाप्रभु के उद्यान के इन फलों को प्रणाम करता हूँ।

माण्डवी—क्या इन्हें ग्रहण नहीं करेंगे?

भरत—देवी! अभी तक महाप्रभु के आने की सूचना नहीं मिली। क्या मैं इतना मन्द भाग्य हूँ कि प्रभु की सूचना भी मेरे पास नहीं आना चाहती? प्रभु की सूचना... या मेरे प्रभु ही अब लौट कर नहीं आना चाहते। उन्होंने कुटिल और कपटी समझकर मुझे भुला तो नहीं दिया....? ओह देवी! वे तो इतने कृपालु हैं कि पर-दुःख को भी अपना दुःख मान लेते हैं। फिर अपने सेवक—अपने दास पर तो उनकी कृपा असीम होती है।

माण्डवी—इसमें कोई सन्देह नहीं, आर्य।

भरत—देवी! आज मेरे हृदय में बड़ी चिन्ता है। कल रात्रि सो भी नहीं सका। प्रातःकाल प्रभु की पादुकाओं का पूजन कर किसी प्रकार मंत्रियों से कुछ बातें कर सका हूँ।

माण्डवी—आर्य! कल रात मैं भी नहीं सो सकी। तीसरे पहर कुछ आँख लगी तो एक विचित्र स्वप्न के कारण फिर जाग उठी।

भरत—विचित्र स्वप्न! कैसा था वह स्वप्न?

माण्डवी—आर्य! मैंने देखा कि एक बड़ा भयानक वन है। उसमें चारों ओर टेढ़ी-मेढ़ी बेडौल शिलाएँ बिखरी हुई हैं। उनमें धातुओं और गेरू की चौड़ी-चौड़ी लाल रेखाएँ हैं। देखते-देखते वे शिलाएँ राक्षसों के मुख की भांति खुलने लगीं और गेरू की चौड़ी रेखाएँ उनमें हिलने लगीं।

भरत—फिर क्या हुआ?

माण्डवी—आप दूर वन में तपस्या कर रहे हैं और मैं अकेली फल तोड़ने के लिए आई हूँ। भय से मुझे रोमांच हो आया। उसी समय मैंने देखा कि आपके यज्ञ का धुआँ उन राक्षसों के खुले मुँहवाली चट्टानों में भरने लगा। और धीरे-धीरे वे आकाश में उड़कर अदृश्य होने लगीं। मैं साँस रोके उन्हें गिन रही थी। वे चौदह चट्टानें थीं।

भरत — वे वनवास के चौदह वर्ष थे जो पहले राक्षसों की तरह भयानक जान पड़ते थे- फिर मेरे नन्दिग्राम की तपस्या में वे धीरे-धीरे व्यतीत हो गए।

माण्डवी — तब तो आर्य! महाप्रभु के वियोग की अवधि बीत गई अब वे आते ही होंगे।

भरत — संभव है देवी! किन्तु अभी तक उनके आने की सूचना नहीं मिली।

माण्डवी — धैर्य रखें आर्य! सूचना आती ही होगी।

भरत — देवी! अब धैर्य भी आँसू बन गया है। चौदह वर्षों की कठिन अवधि जिस हृदय ने धैर्य की शिला पर बैठकर बिता दी, वह अब एक दिन की अवधि में डूब रहा है। यदि प्रभु नहीं आए तो बतलाओ देवि! मैं कल माता कौशल्या को क्या कहकर प्रणाम करूँगा। माता सुमित्रा मेरे प्रणाम के उत्तर में मुझे किन शब्दों में संबोधित करेंगी बोलो, बोलो माण्डवी!

माण्डवी – आर्य, मैं केवल यही कह सकती हूँ कि महाप्रभु कल अवश्य लौटेंगे।

भरत – *[उद्विग्नता से]* फिर से कहो देवी – मैं बार-बार यही सुनना चाहता हूँ।

माण्डवी – हाँ, आर्य, महाप्रभु कल अवश्य लौटेंगे।

भरत – मेरे मन से भी यही ध्वनि निकलती है किन्तु अपने भाग्य पर मुझे विश्वास नहीं रहा। वह अभिषेक को भी वनवास बना देता है। यदि कल मेरे प्रभु न लौटे तो मेरे जीवन की अवधि भी....

माण्डवी – *[बीच ही में]* आर्य!

भरत – देवी! मैं सत्य कहता हूँ कि उनकी वन-यात्रा की अवधि बीत जाने पर भी यदि मैं जीवित रहूँ तो संसार में मुझसे बढ़कर अधम कौन होगा? भरत...जिसके जीवन का अर्थ था। पिता का मरण, और माताओं का वैधव्य, भाइयों का चौदह वर्षों के लिए तपस्वी वेश से वन में निवास, राजकुमारी सीता को असह्य यातना! यदि मेरे महाप्रभु भगवती सीता और भाई लक्ष्मण सहित नहीं लौटे तो मेरे प्राण....

माण्डवी – मेरे प्राण भी आपके साथ चलेंगे, प्रभु!

भरत – *[गहरी साँस लेकर]* मैं क्या कहूँ देवी माण्डवी! चित्रकूट में मैंने निवेदन किया था कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न को अयोध्या भेज दीजिए और मुझे अपने साथ ले लीजिए। किन्तु वह प्रार्थना भी निष्फल रही। भाई लक्ष्मण ही सौभाग्यशाली रहे कि वे निरन्तर प्रभु के साथ रहे।

माण्डवी – आर्य, आपको भी यह सौभाग्य मिला है। आप भी तो निरंतर प्रभु के साथ रहते हैं। शरीर से न सही, चिन्तन से सही। आप तो उनसे अभिन्न हैं।

भरत – देवी, फिर भी ये नेत्र उनके दर्शन चाहते हैं, ये हाथ उनकी सेवा के लिए व्याकुल हैं। यह मस्तक उनके पद-पद्मों में अपना स्थान पाना चाहता है। कल चौदह वर्ष की अवधी पूरी हो रही है। क्या उनके चरण अयोध्या की दिशा में चले होंगे? अपनी आराध्या इन पादुकाओं से पूछूँ! मेरी आराध्या, बोलो तुम तो उनके चरणों की गति पहिचानती हो! क्या प्रभु, इस सेवक के हाथों की ओर अपने चरण बढ़ा रहे हैं? मेरी आराध्या बोलो!

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी – स्वामिनी! बाहर एक बटु आए हैं। वे स्वामी के दर्शन करना चाहते हैं।

माण्डवी – आर्य, आपकी सेवा में प्रतिहारी यह संवाद निवेदन करना चाहता है! आगत बटु के लिए क्या आज्ञा है।

भरत – देवी! संभव है मेरी आराध्या प्रभु की पादुकाएँ बटु के मुख से उत्तर देना चाहती हों। तुम इन फलों को पादुकाओं की श्री सेवा में समर्पित कर दो और पास के विश्राम कक्ष में पूजा की सामग्री सजाओ।

माण्डवी — जो आज्ञा आर्य! प्रतिहारी, बटु को आर्य की सेवा में आने की अनुमति सुनाओ। मैं अभी आती हूँ।

प्रतिहारी — जो आज्ञा। *[प्रस्थान]*

माण्डवी — ये फल प्रभु की पादुकाओं को समर्पित करते हुए आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप उनका प्रसाद अवश्य ग्रहण करें। नियम और उपवास में भी तो फल ग्रहण किये जाते हैं। आज्ञा दीजिए। प्रणाम। पादुकाओं की श्री सेवा में प्रणाम।

भरत — महाप्रभु कृपा करें।

[माण्डवी का प्रस्थान]

भरत — मेरे प्रभु की पादुकाओ! यह नैवेद्य ग्रहण करो! जब तक मेरे प्रभु न आएँगे तब तक यदि तुम्हारा प्रसाद न पा सकूँ तो क्षमा करना। माण्डवी की यह सेवा है। किन्तु यदि प्रभु नहीं आये तो क्या होगा! वे प्रभु जिन्होंने बाल्यावस्था में भी मेरा मान भंग नहीं किया, क्या आज मुझसे विमुख हो जाएँगे? मेरे प्रभु! राम राघव, रघुनन्दन! कहाँ हैं मेरे महाप्रभु राम!

[गला भर आता है।]

बटु का प्रवेश।

भरत — आओ बटु, कहो कुशल से हो?

बटु — प्रणाम करता हूँ महाराज!

भरत — मुझे महाराज न कहो, बटु! इन पादुकाओं को महाराज कहो! मेरे प्रभु! राम की पादुकाएँ! यही साकेत की शासिका हैं। मैं तो इनका सेवक मात्र हूँ। तुम यहाँ की कार्यशैली से अपरिचित ज्ञात होते हो।

बटु — पादुकाओं की श्री-सेवा में प्रणाम।

भरत — महाप्रभु राम के कृपा - पात्र बनो। किन्तु तुम कुछ परिचित से ज्ञात होते हो। बटु! मैंने तुम्हें पहले कभी देखा है।

बटु — स्वामी! यह मेरा सौभाग्य है! मैं श्रृंगवेरपुर से आ रहा हूँ।

भरत — निषादराज गुह कुशलता से हैं?

बटु — वे अत्यन्त आनन्द में लीन हैं, प्रभु!

भरत — वे महाप्रभु के सखा हैं। वे महाप्रभु के आत्मीय हैं।

बटु — स्वामी! मैं एक संवाद निवेदन करना चाहता हूँ!

भरत – शीघ्र निवेदन करो!

बटु – स्वामी! जिनके ध्यान में आप निरन्तर लवलीन हैं वे राजकुल तिलक महाराज राम, रावण को मारकर महारानी सीता और लक्ष्मण अनुज सहित.......

भरत – *[बीच ही में उद्विग्नता से]* आ रहे हैं? बटु शीघ्र ही कहो वे आ रहे हैं? मेरे राम? आ रहे हैं?

बटु – हाँ, महाराज! वे असंख्य वानरों की सेना सहित विजय प्राप्त कर आना ही चाहते हैं!

[गद्‌गद होकर]

भरत – ओह बटु! तुम धन्य! मेरे हृदय से लग जाओ *[बटु को कसकर हृदय से लगाते हैं।]* ओह मेरे राम आ रहे हैं। माण्डवी माण्डवी माण्डवी देवी....राम; मेरे राम ... *[मूछित हो जाते हैं।]*

[माण्डवी का प्रवेश]

माण्डवी – *[उद्विग्नता से]* आपने मुझे पुकारा?..........आह आर्य! ये मूर्छित कैसे हो गए बटु....?

बटु – महादेवी! मैंने रघुकुल तिलक भगवान् राम के आगमन की सूचना दी। ये हर्षातिरेक से.......

माण्डवी – *[बीच ही में]* महाप्रभु! आ रहे हैं?

बटु – हाँ देवी!

माण्डवी – *[प्रसन्नता से]* ओह! धन्य हो बटु! तुम यह सुखसंवाद लाए हो। हर्षातिरेक में ही आर्य मूर्छित हो गए! [अंचल से हवा करते हुए जगाने की चेष्टा] आर्य, स्वामी, नाथ! भगवान रघुकुल तिलक..... भगवान रघुकुल तिलक.....

भरत – *[मूर्छा से जागते हुए]* रघुकुल तिलक! किसने इस नाम का उच्चारण किया! *[माण्डवी को देखकर उमंग से]* ओह माण्डवी! महाप्रभु आ रहे हैं!

माण्डवी – आर्य, स्वस्थ हो जाइए, महाप्रभु! अवश्य आ रहे हैं!

भरत – माण्डवी! माता कौशल्या को जाकर यह शुभ समाचार दो। मेरे प्रभु आ गए। माता सुमित्रा से कहो कि महाप्रभु राम भगवती सीता और भाई लक्ष्मण सहित आ रहे हैं। जाओ शीघ्र जाओ।

माण्डवी – जो आज्ञा आर्य *[शीघ्रता से प्रस्थान]*

भरत – ओह, मेरे राम आ रहे हैं *[बटु को झकझोर कर]* बटु! तुम कौन हो! तुमने मुझपर कितना उपकार किया है। तुम अपना पूरा परिचय दो।

बटु – प्रभु! मैं मारुतसुत हनुमान हूँ।

भरत — ओह हनुमान! प्रभु के सच्चे सेवक! आओ, मेरे हृदय को शीतल करो *[फिर से आलिंगन]* तुमने मेरे समस्त क्लेशों का नाश कर दिया। मेरे सब दुःख समाप्त हो गए! कहो, तुम तो अच्छी तरह हो? बोलो, मैं तुम्हें क्या दूँ। इस संवाद से बढ़कर मेरे लिए कुछ भी मूल्यवान नहीं है। मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ, हनुमान! प्रभु के चरित्रों का वर्णन करो। कुशलपूर्वक तो हैं? माता सीता और भाई लक्ष्मण?

हनुमान — स्वामी! प्रभु अपने माता-पिता की आज्ञा पालन कर सीता और भाई लक्ष्मण सहित अत्यन्त कुशलपूर्वक हैं। समस्त दक्षिण उनके प्रताप की ज्योति से जगमगा रहा है। कैलास पर्वत की तरह ऊँचे त्रिकूट पर्वत पर विश्वकर्मा द्वारा बनाई गई लंकापुरी में भी उनके यश के गीत गूँज रहे हैं।

उन्होंने असंख्य वानरों को साथ लेकर राक्षसराज रावण का परिवार सहित वध किया। इन्द्र, यम, वरुण, महादेव, ब्रह्मा आदि ने उनकी स्तुति की। देवर्षियों से मिलकर और कुबेर के पुष्पक विमान पर बैठकर महाराज श्री रामचन्द्र जी गंगा तट पर भरद्वाज मुनि के आश्रम पर आ गए हैं। कल पुष्य नक्षत्र में आपकी उनसे भेंट होगी।

भरत — हनुमान! कल वे मुझे दर्शन देंगे। ओह! मैं इस समाचार से कृतार्थ हो गया, हनुमान्! क्या कभी प्रभु राम मेरा स्मरण करते हैं— मुझ दास का स्मरण?

हनुमान — प्रभु! वे तो आपके गुणों का वर्णन श्री मुख से करते हुए कभी थकते नहीं। वे कभी-कभी आपकी बात कहते हुए अपनी सुधि भी भूल जाते हैं। अच्छा! प्रभु! अब आज्ञा दीजिए कल प्रभु के साथ आपके दर्शन फिर करूँगा।

भरत — जाओ हनुमान, प्रभु को शीघ्र लाओ! आज तुमने मुझ पर अनंत उपकार किये हैं। मैं किस भाँति तुम्हारे उपकारों का प्रतिदान दूँ।

हनुमान — प्रभु! आपकी केवल कृपा चाहिए। प्रणाम, पूज्य पादुकाओं की श्री-सेवा में प्रणाम। *[हाथ जोड़ते हैं]*

भरत — महाप्रभु की कृपा प्राप्त हो! *[हनुमान का प्रस्थान]*

भरत — *[उमंग से]* मेरे प्रभु आ रहे हैं! महाप्रभु राम आ रहे हैं! शत्रुघ्न - शत्रुघ्न! भाई राम आ रहे हैं। भाई राम आ रहे हैं! उनके स्वागत की तैयारी करो..... तैयारी करो!....

[शीघ्रता से जाते हैं।] ['तैयारी करो' की ध्वनि धीरे-धीरे दूर होती जा रही है।]

दृश्य - 2

स्थान—गुरु वशिष्ठ का आश्रम

भरत — गुरुवर के चरणों में प्रणाम!

वशिष्ठ — यशस्वी बनो वत्स। बड़े प्रसन्न हो आज तुम!

भरत – गुरुवर आज्ञा हो तो एक संवाद निवेदन करूँ!

वशिष्ठ – अवश्य! रघुकुल तिलक राम–

भरत – *[बीच ही में]* आ रहे हैं प्रभु! हनुमान यह संवाद लाए थे। कल पुष्य नक्षत्र में वे साकेत को पुनः सौभाग्य प्रदान करेंगे।

वशिष्ठ – मैं यह संवाद सुनकर आनन्दित हुआ। राम के स्वभाव को जानता हूँ। वे अपने प्रतिज्ञानुसार ठीक चौदह वर्ष पूरा कर तुम्हारे पास अवश्य पहुँच जाएँगे।

भरत – तो गुरुवर! उनके स्वागत का प्रबन्ध करने की आज्ञा......

वशिष्ठ – अवश्य उनके स्वागत का पूर्ण प्रबन्ध हो। तुम्हें भी यह काषाय वस्त्र और कृष्ण मृगचर्म का परित्याग करना चाहिए।

भरत – वह प्रभु राम के हाथों ही होगा गुरुदेव! आपके आशीर्वाद का बल चाहिए।

वशिष्ठ – तथास्तु! समस्त नगर-निवासियों को सूचना दे दो कि वे राजा राम का स्वागत करें। सब नगर निवासी तुम्हारे आश्रम नन्दिग्राम में एकत्रित हों।

भरत – जो आज्ञा!

वशिष्ठ – मैं भी नन्दिग्राम आ रहा हूँ। रघुकुल तिलक राम चिरकाल तक साकेत का शासन करें।

भरत – गुरुवर का आशीर्वाद सत्य का साक्षी है। प्रणाम!

वशिष्ठ – राम के प्रेम के चिर प्रतीक बनो।

दृश्य - 3

स्थान–माता कौशल्या का महल

[पृष्ठ संगीत]

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे लाल कुँवर वर कहहु काग फुरि बाता।।

दूध-भात की दौनी दैहों सोने चोंच मढ़ैहों।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहों।।

कौशल्या – मेरे लाल! अभी तक नहीं आए! तुम कहाँ हो! इसी, स्थान पर तुम छोटे से बड़े हुए!

मणिखम्भों में अपना प्रतिबिम्ब देख कर न जाने तुम कितनी बार नाचे हो, कितनी बार हँसे हो और कितनी बार रूठे हो! ये मणिखम्भ मेरे राम के प्रतिबिम्बों को सदैव के लिए सुरक्षित रखते! राम! तुम्हारा, माँ कह कर बुलाना आज भी कहीं से आता हुआ जान पड़ता है। किन्तु न जाने तुम्हारी मधुरवाणी वायु में कहाँ खो जाती है। यदि वह मंजूषा में बन्द हो सकती! आज सारा घर सूना है। *[सिसकियाँ]*

किसे सामने बिठला कर प्रेम से खिलाऊँ! प्रातःकाल तुम भोजन माँगते थे– मणिखम्भों में अपने प्रतिबिम्ब को खिलाते थे। जब वह प्रतिबिम्ब नहीं खाता था तो तुम मचल उठते थे। तुम बड़े हुए तुम्हारा वनवास हुआ! राम! तुम बड़े ही क्यों हुए! वनवास जाते समय तुम्हारा मुख भी जी भर कर नहीं देख पाई। आँसुओं ने आँखें धुँधली कर दी थीं। तुम्हारा स्पर्श आज भी हाथों को नहीं भूलता। मेरी राजरानी सीता भी नहीं रुक सकीं जिनसे कुछ अवलम्ब मिलता।

हाय! राम और लक्ष्मण दोनों भाई कब साथ आकर मुझे माँ कहकर पुकारेंगे! *[सिसकी]*

[नेपथ्य से] माँ..... माँ..........

कौशल्या – *[चौंककर]* भरत।

भरत – *[हर्षोल्लास से]* - माँ, माँ, भाई राम, भगवती सीता और भाई लक्ष्मण.......।

कौशल्या – *[व्यग्रता से]* हाँ, हाँ, कहो कहाँ हैं।

भरत – तीनों.... ये तीनों ही आ रहे हैं!

कौशल्या – कहाँ है मेरे राम! कहाँ है लक्ष्मण, कहाँ है सीता?

भरत – पुष्पक विमान पर बैठकर आ रहे हैं। उन्होंने रावण का वध कर डाला। वे असंख्य वानरों के साथ आ रहे हैं। गुरु वशिष्ठ ने उनके स्वागत की अनुमति दे दी है।

कौशल्या – ओह मेरे भरत! तुम मेरे लिए राम से कम नहीं हो! पर भरत! मेरे लाल स्वागत के लिए न रुकें, उन्हें शीघ्र ही मेरे पास चले आने दो! वे नन्दिग्राम में ही आवेंगे।

भरत – माँ, तुम्हारे लिए शिविका तैयार है! माता सुमित्रा कहाँ हैं?

कौशल्या – यहीं होंगी। मैं उन्हें अभी यह शुभ समाचार दूँगी!

भरत – गुरुवर वशिष्ठ का आदेश है कि हम सब नन्दिग्राम चलकर ही उनका स्वागत करें! सब माताएँ शिविकाओं में बैठकर, वहीं चलें!

कौशल्या – लाल! तुम शत्रुघ्न को साथ ले जाओ, मैं बहिन सुमित्रा के पास जाती हूँ। *[पुकार कर]* बहिन सुमित्रा...... बहिन सुमित्रा.... ऊर्मिला देवी कहाँ हैं? कहाँ हैं?

[नेपथ्य में ध्वनि क्षीण होती जाती है]

दृश्य - 4

स्थान—शत्रुघ्न का कक्ष

शत्रुघ्न — भैया, यह समाचार हनुमान ने दिया! किन्तु वानर स्वभाव से ही चंचल होते हैं। कहीं अपनी स्वाभाविक चंचलतावश तो महाराज रामचन्द्र के आगमन का संवाद सुनाने के लिए नहीं चले आए?

भरत — नहीं शत्रुघ्न! मुझे हनुमान पर विश्वास है। वे महाप्रभु के सच्चे भक्त हैं। महाप्रभु ने ही उन्हें भेजा था। और जब उन्होंने मुझे संवाद दिया तो वे मेरी मुखमुद्रा बड़े ध्यान से देख रहे थे।

शत्रुघ्न — क्या ऐसा आदेश भी महाप्रभु ने हनुमान को दिया था?

भरत — किस विचार से वे ऐसा आदेश देते?

शत्रुघ्न — इस विचार से कि यदि बहुत दिनों तक राज्य करने से श्रीमान् भरत जी अब स्वयं राज्य करने के अभिलाषी हों, तो वे समस्त पृथ्वी का पालन करें।

भरत — शत्रुघ्न! तुम यह क्या कहते हो। जब चित्रकूट में महाप्रभु राम को मेरे सम्बन्ध में भ्रान्त धारणा नहीं हुई तो अब कैसे होगी? तुम राजनीति के बहाने अर्थ का अनर्थ कर रहे हो!

शत्रुघ्न — मैं क्षमा चाहता हूँ, किन्तु महाप्रभु राम मर्यादा का पालन करते हैं, वे आप की इच्छा को भी मान्यता देंगे।

भरत — तो शत्रुघ्न! राज्य के सम्बन्ध में मेरी क्या इच्छा है यह महाप्रभु जानते हैं। और तुम भी मेरी इच्छा जानते हो। महाप्रभु राम के न आने पर जब भरत नहीं रहेगा तो साकेत का शासन ये प्रभु की पादुकाएँ ही करेंगी। और सुनो शत्रुघ्न! प्रभु राम के आने का चाहे संवाद चपल वानर द्वारा ही दिया गया हो, चाहे राम के आने का संवाद सत्य न हो— फिर भी मैं उनके स्वागत का समारोह सजाऊँगा। नागरिकों से कह दो कि नगर के समस्त कुल देवताओं के मन्दिर में संगीत, पुष्पहार और सुगन्धादि से पूजन हो!

शत्रुघ्न — जो आज्ञा।

भरत — सूत, पुराणज्ञ, बैतालिक और कुशल वादित्र एकत्रित होकर महाराज राम का स्वागत करते हुए वन्दना करें।

शत्रुघ्न — जो आज्ञा।

भरत — नन्दिग्राम से अयोध्या तक का मार्ग सम कर दिया जाय, उस पर शीतल जल से छिड़काव हो, फिर उस पर फूलों की राशि और लाजा के समूह बिखेर दिये जावें। नगरी के समस्त भवन फूल मालाओं और मोतियों के गुच्छों से सुसज्जित किए जायँ। और प्रत्येक भवन पर पताकाएँ फहराई जायँ।

शत्रुघ्न – जो आज्ञा।

भरत – राजमार्ग पर रंग-बिरंगे चौक पूरे जायँ। और दोनों ओर नागरिक पंक्तिबद्ध खड़े हों। तथा मेरे आठों मंत्री धृष्ट, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थ साधक, अशोक, मंत्रपाल और सुमंत ऐसी व्यवस्था करें कि माताएँ और ऋषि पत्नियाँ नन्दिग्राम तक सावधानी के साथ आवें।

शत्रुघ्न – जो आज्ञा।

भरत – सोने के गहनों से अलंकृत हज़ारों मदमाते हाथियों, रथों और घोड़ों पर नगर के सभी प्रतिष्ठित नागरिक नन्दिग्राम में उपस्थित हों।

शत्रुघ्न – जो आज्ञा।

भरत – और शत्रुघ्न! मैं यह अधम भरत अपने शीश पर आर्य महाराज रामचन्द्र जी की पादुकाएँ लेकर चलूँगा। श्वेत पुष्प - मालाओं से सुशोभित श्वेत छत्र और स्वर्ण भूषित श्वेत चँवर मेरे हाथ में होगा।

शत्रुघ्न – जो आज्ञा।

भरत – शत्रुघ्न! इन सब की व्यवस्था शीघ्र ही होनी चाहिए!

शत्रुघ्न – मंत्रिगण और अन्य कार्यकर्ता बाहर उपस्थित हैं। यह सब प्रबन्ध शीघ्र ही होगा।

भरत – तथास्तु!

दृश्य - 5

स्थान – नन्दिग्राम

[समस्त साकेत के नागरिक व्यवस्था के साथ उपस्थित हैं। घोड़ों की टापों और रथों के पहियों की घरघराहट, शंखों और तुरहियों के बजने का कोलाहल हो रहा है।]

भरत – शत्रुघ्न! माताएँ अपने अपने स्थानों पर हैं?

शत्रुघ्न – हाँ भैया, व्यवस्था में कोई अन्तर नहीं है।

भरत – गुरुवर तथा अन्य ऋषिगण?

शत्रुघ्न – सब यथास्थान हैं भैया, किन्तु अभी तक महाराज राम का पुष्पक विमान नहीं दिखलाई पड़ा। पुष्य नक्षत्र भी समीप आ गया।

भरत – संभव है, महामुनि भरद्वाज के आश्रम में उन्हें कुछ विलम्ब लग गया हो! *[पुष्पक विमान का शब्द होता है।]* वह देखो..... वह देखो भाई शत्रुघ्न! वह आ रहा है, वह है पुष्पक विमान!

शत्रुघ्न – हाँ, पुष्पक विमान ही तो है।

भरत – भाई शत्रुघ्न, वह मध्याह्न कालीन सूर्य की भाँति चमक रहा है। इसी पर महाप्रभु रामचन्द्र जी हैं। बन्धु बान्धव सहित रावण को मारकर प्रभु राम ने इसे प्राप्त किया है।

शत्रुघ्न – प्रभु राम रघुकुलतिलक हैं।

भरत – अपनी वन-यात्रा का चौदहवाँ वर्ष पूरा कर भगवान राम अपने प्रतिज्ञानुसार ठीक दिन पर लौट आए। भाई शत्रुघ्न रघुकुल में दिए हुए बचन के पालन करने की परम्परा जो है।

शत्रुघ्न – सत्य है, प्रभो!

भरत – *[उल्लास से]* देखो, देखो शत्रुघ्न, वे भगवान राम हैं, मध्य में भगवती सीता, और दूसरी ओर लक्ष्मण हैं। *[ऊँचे स्वर में राजाधिराज राम की जय हो!]*

[जनता से महाध्वनि - राजाधिराज! राम की जय! भगवती सीता की जय, महाराज लक्ष्मण की जय!]

[विमान के उतरने का शब्द]

भरत – *[दौड़कर]* महाप्रभु राम! रघुकुलतिलक राम, मेरे भाई राम *[चरणों में गिरते हैं।]* *[स्तब्धता।]*

राम – भैय्या भरत, उठो! उठो! मेरे प्यारे भरत! *[वाष्पकंठ स्तब्धता]*

भरत – बहुत दिनों बाद ये चरण पा सका हूँ!

राम – किन्तु, भरत! तुम्हारा स्थान मेरे हृदय में है, चरणों में नहीं। उठो! मेरे अश्रु भूमि पर गिर रहे हैं, इन्हें अपने हृदय पर स्थान दो! ओह, तुम्हारा शरीर कितना कृश हो रहा है। मेरे भाई भरत!

भरत – प्रभु! ये पादुकाएँ आपके चरणों की प्रतीक्षा कर रही थीं। मैंने इन्हें आप के चरणों से हटाकर एक अपराध और किया! इन्हें अपने चरणों में स्थान दीजिए! *[पादुकाएँ चरणों में पहिनाते हैं।]*

राम – भरत! तुमने लोक वेद की मर्यादा रक्खी! तुम्हारा नाम संसार में अमर हो! भक्तों की मर्यादा तुम्हीं ने स्थिर की है। आज से तुम्हारे प्रेम की स्मृति में-तुम्हारे प्रेम की विजय की स्मृति में यह दिन चिरस्मरणीय हो!

समवेत स्वर में – महाराज रामचन्द्र जी की जय हो।

[शंखों और तुरहियों के बजने का कोलाहल]

❋ ❋ ❋ ❋

शब्दार्थ :–

अनर्थ - बुरा, अशुभ; अलगाव - अलग होने की अवस्था, दरार; आगमन - आना; आत्मीयता - मैत्री, अपनापन; कपटी - बुरे विचार वाला; कशमकश - दुविधा, आंतरिक संघर्ष; काषाय वस्त्र - गेरुआ रँग का वस्त्र जो सन्यासी पहनते हैं; कुटिल - दुष्ट; ग्लानि - पश्चाताप, खेद; चंचलता - शरारत; चिंतित - सोच में पड़ा हुआ, बेचैन; चिरस्मरणीय - जिसे भुलाया नहीं जा सकता; दुःस्वप्न - बुरा स्वप्न; दृढ़तापूर्वक - निश्चय; धिक्कार - तिरस्कार, डाँटना; पादुका - चप्पल; भ्रातृप्रेम - भाई का प्रेम; मानसिक - मन की कल्पना से उत्पन्न, आंतरिक; मूर्च्छित - बेहोश; याचना - प्रार्थना; राज्याभिषेक - राज गद्दी पर नए राजा को बिठाना; वनगमन/वनवास - वन जाना; वियोग - विरह, दुख; व्याकुल - दुख; शंका - संदेह; संवाद - बातचीत; स्नेहपूर्ण - प्रेमपूर्ण; स्मृति - स्मरण शक्ति; हर्षातिरेक - अत्यंत खुशी।

अभ्यास

I. प्रश्नों का उत्तर एक या दो वाक्यों में दीजिए :–

1. भरत श्रीराम से कहाँ मिलता है?

भरत श्रीराम से चित्रकूट में मिलता है।

2. किसे श्रीराम मानकर सिंहासन पर रखकर भरत शासन करता है?

पादुकाओं को ही श्रीराम मानकर सिंहासन पर रखकर भरत शासन करता है।

3. भरत को श्रीराम के वनवास से वापस आने का समाचार किसने दिया?

भरत को श्रीराम के वनवास से वापस आने का समाचार मारुति पुत्र हनुमान ने दिया।

4. श्रीराम पुष्पक विमान में बैठकर कहाँ पहुँचे?

श्रीराम पुष्पक विमान में बैठकर भरद्वाज मुनि के आश्रम पहुँचे।

5. भरत वशिष्ठ मुनि को श्रीराम के आगमन का समाचार सुनाकर क्या आज्ञा माँगता है?

भरत वशिष्ठ मुनि को श्रीराम के आगमन का समाचार सुनाकर उनके स्वागत के प्रबंध की आज्ञा मांगता है।

6. यदि श्रीराम वापस नहीं लौटेंगे तो भरत ने क्या करने का निश्चय किया?

भरत ने कहा, यदि श्रीराम वापस लौटकर नहीं आएँगे तो भरत नहीं रहेगा और शासन श्रीराम की पादुकाएँ ही करेंगी।

II. पात्र का चरित्र-चित्रण दीजिए :-

1. भरत

दशरथ पुत्र भरत श्रीराम के अनुज-छोटा भाई हैं। उसके मन में अपार भ्रातृस्नेह है। भरत वनवास में श्रीराम के साथ नहीं रहता लेकिन चौदह वर्षों तक ऐश्वर्य त्यागकर काषाय वस्त्र पहनकर तपस्या में लीन रहता है।

भरत के बाह्य व्यक्तित्व का चित्रण इन वाक्यों से व्यक्त होता है – काषाय वस्त्र और कृष्ण मृग चर्म धारण कर शरीर से कृश और मन से उदास है। इंद्रियों को अपने वश में रखते हुए तप में रत है। धर्माचरण में लीन है। भरत सूर्य के समान तेजस्वी है। इन वाक्यों से भरत की निस्पृहता, वैराग्य तथा श्रद्धा भाव स्पष्ट होते हैं।

आत्मग्लानी से परेशान :

भरत अपने मंत्रीगणों को याद दिलाता है कि श्रीराम का वनवास अगले दिन समाप्त हो रहा है। उनके लौटने के बाद राजकोष उन्हें सौंपना है। मंत्रीगण के जाने के बाद अपने आपको धिक्कारता है कि उन्हीं के कारण श्रीराम को कष्ट भोगना पड़ा। जो पादुकाएँ उनके पैरों को जंगल में काँटों से बचा रही थीं, वे भी उन्हीं के कारण श्रीराम से दूर हो गईं। इस प्रकार सोचकर वह आत्मग्लानी से परेशान हो रहा था तब उनकी पत्नी माण्डवी उन्हें समझाकर सांत्वना देती है।

आशावादी :

माण्डवी ने एक स्वप्न देखा। उसके बारे में भरत से बताती है। उसके स्वप्न में चारों ओर बिखरी हुई शिलाएँ राक्षसों के मुख की भांति खुलकर धीरे-धीरे आकाश में अदृश्य होने लगीं। उसके स्वप्न को सुनने के बाद भरत कहता है कि वनवास के चौदह वर्ष राक्षसों की तरह अदृश्य होने लगे। श्रीराम के आगमन का समाचार सुनकर जब शत्रुघ्न शंका व्यक्त करता तो भरत दृढ़तापूर्वक कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता। इससे हमें ज्ञात होता है कि भरत आशावादी है।

भावुक :

हनुमान आकर भरत को यह संदेश देता है कि श्रीराम रावण को मारकर सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट रहे हैं। यह सुनकर भरत भावुक होकर मूर्छित हो जाता है। होश में आने के बाद सभी माताओं को यह शुभ समाचार पहुँचाने की आज्ञा देता है।

भ्रातृस्नेह :

नंदिग्राम में भरत, परिजनों के साथ श्रीराम के स्वागत की तैयारी में है। पुष्पक विमान से श्रीराम, सीता और लक्ष्मण उतरकर आते हैं। भरत राम के चरणों में गिर पड़ता है। भरत को उठाते हुए श्रीराम कहते हैं कि भरत का शरीर शुष्क हो गया है और उसने लोक वेद की मर्यादा का पालन किया। राम कहते हैं कि आज से भरत के प्रेम की विजय की स्मृति में वह दिन चिरस्मरणीय होगा। इस तरह भरत का भ्रातृस्नेह मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र के मुँह से ही ज्ञात होता है।

इसप्रकार भरत को रामकुमार वर्मा ने सर्वशुभगुण संपन्न पात्र के रूप में चित्रित किया है।

2. माण्डवी

माण्डवी भरत की पत्नी है। वह हर समय भरत के साथ रहकर उनको सांत्वना एवं प्रोत्साहन देती रहती है।

मनोवैज्ञानिकः

भरत अपने आपको धिक्कारता है कि श्रीराम की पादुकाएँ उन्हीं के कारण श्रीराम से दूर हो गई हैं। तब माण्डवी मनोवैज्ञानिक ढंग से कहती है कि पादुकाएँ महाप्रभु के चरणों में रहते हुए महाप्रभुमय हो गई थीं। यह सुनकर भरत की आत्मग्लानी दूर होती है। भरत मन ही मन यह निश्चय कर लेता है कि श्रीराम वनवास पूरा करके वापस लौट नहीं आएँगे तो वह अपना जीवन समाप्त कर लेगा। लेकिन माण्डवी उन्हें सांत्वना देती है और समझाती है कि वे भी प्रभु के साथ मानसिक रूप से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार माण्डवी के मनोवैज्ञानिक गुण उभरता आ रहा है।

आदर्श पत्नी :

भरत श्रीराम के आने की सूचना न मिलने के कारण चिंतित हो जाता है। तब माण्डवी भरत से रात को देखे स्वप्न के बारे में बताती है। उसके स्वप्न में चारों ओर बिखरी शिलाएँ राक्षसों के मुख की भांति खुलकर धीरे-धीरे आकाश में अदृश्य होने लगतीं। भरत को यह स्वप्न सांत्वना देता है। माण्डवी उन्हें धीरज बंधाकर कहती है कि श्रीराम अवश्य लौटकर आएँगे। यहाँ एकांकीकार माण्डवी को सशक्त स्त्री, आदर्श पत्नी के रूप में दिखाते हैं जो समय आने पर अपने पति को सही सलाह दे सकती है।

इसप्रकार अपने पति के मनोभावों को समझकर सूझ-बूझ से कार्य करनेवाली एक आदर्श पत्नी के रूप में माण्डवी के चरित्र का चित्रण हुआ है।

III. एकांकी का सारांश लिखिए :–

एकांकीकार का परिचय :

डॉ. रामकुमार वर्मा का जन्म मध्य प्रदेश के सागर जिले में 15 सितंबर, 1905 में हुआ। इनके पिता लक्ष्मी प्रसाद वर्मा डिप्टी कलैक्टर (उपसमाहर्ता) थे।

रामकुमार वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि, एकांकीकार और आलोचक हैं। आधुनिक हिन्दी एकांकी के जनक रामकुमार वर्मा ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर 150 से अधिक एकांकी लिखीं हैं। 1921 तक आते-आते युवक रामकुमार गांधी जी के असहयोग आंदोलन में सम्मिलित हो गए। उनके प्रमुख एकांकी संग्रह हैं - पृथ्वीराज की आँखें, रेशमी टाई, चार ऐतिहासिक एकांकी, रूपरंग आदि। 1963 में भारत सरकार ने आपको 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया।

सारांशः

चौदह साल का वनवास पूरा हो जाने के बाद राम सबके साथ अयोध्या लौटनेवाले थे। इससे भरत अत्यंत भावुक और आनंदमय रहता है। भरत अपने मंत्रीगण सुमंत, जयंत और सिद्धार्थ को याद दिलाते हैं कि श्रीराम की

वन यात्रा कल समाप्त हो रही है। उनके लौटने के बाद उनके राज-कोष में वृद्धि करके उन्हें सौंपनी होगी। मंत्रीगण के जाने के बाद भरत अपने आपको धिक्कारता है कि उन्हीं के कारण श्रीराम को कष्ट भोगना पड़ा। जो पादुकाएँ राम के पैरों को जंगल में काँटों से बचा रही थीं, वे भी अपने कारण श्रीराम से दूर हो गयीं। जब वह आत्मग्लानि से परेशान हो रहा था, तब उनकी पत्नी माण्डवी उन्हें समझाती है।

भरत श्रीराम के आने की सूचना न मिलने के कारण चिंतित रहता है। उनकी चिंता को देखकर माण्डवी भरत से रात को देखे स्वप्न के बारे में बताती है। स्वप्न को सुनने के बाद भरत कहता है कि उस स्वप्न श्रीराम के आने की बात को सूचित करता है। यह सुनकर माण्डवी कहती है कि श्रीराम अवश्य लौटकर आएँगे। भरत मन ही मन यह निश्चय कर लेता है कि श्रीराम वनवास पूरा करके वापस लौट नहीं आएँगे तो वह अपने जीवन को समाप्त कर लेगा।

श्री हनुमान दूत बनकर आता है और भरत को यह संदेश देता है कि श्रीराम रावण को मारकर भगवती सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट रहे हैं। यह सुनकर भरत आनंद विभोर होकर मूर्च्छित हो जाता हैं। होश में आने के बाद भरत माण्डवी से कहता है कि सभी माताओं को यह शुभ समाचार देना है कि श्रीराम चौदह वर्ष की वन यात्रा समाप्त करके लौट रहे हैं। हनुमान के जाने के बाद भरत, शत्रुघ्न को बुलाकर श्रीराम के स्वागत की तैयारी करने के लिए कहता है।

भरत वशिष्ठ मुनि का आश्रम पहुँचता है। गुरु को श्रीराम के आने का शुभ समाचार सुनाता है और उनके स्वागत के प्रबंध की आज्ञा माँगता है। साथ ही गुरुवर भरत से वल्कल वस्त्रों से मुक्त होने की सलाह देते हैं।

भरत शत्रुघ्न के कक्ष में पहुँचकर यह शुभ-संदेश देता है। आगे कहता है कि यदि श्रीराम वापस लौटकर नहीं आएँगे तो भरत नहीं रहेगा और शासन श्रीराम की पादुकाएँ ही करेंगी। फिर शत्रुघ्न को मार्गदर्शन देता है कि श्रीराम का स्वागत किस तरह से किया जाना चाहिए।

नंदिग्राम में भरत, शत्रुघ्न तथा सभी जन अपने-अपने स्थान पर बैठे हैं। तब पुष्पक विमान की आवाज सुनाई पड़ती है। विमान से श्रीराम, सीता और लक्ष्मण उतरकर आते हैं। भरत राम के चरणों में गिर पड़ता है। भरत ऊपर उठाते हुए श्रीराम कहते हैं कि उसका शरीर शुष्क हो गया है। भरत पादुकाओं को श्रीराम के चरणों में समर्पित करता है। श्रीराम भरत से यह कहते हैं कि भरत ने लोक वेद की मर्यादा रखी है। आगे राम कहते हैं, भरत के प्रेम की विजय की स्मृति में यह दिन चिरस्मरणीय होगा। 'महाराज रामचंद्र जी की जय हो' - शंखों की ध्वनी और तुरहियों के बजने के कोलाहल के साथ पर्दा गिरता है।

IV. टिप्पणी लिखिए :-

1. राम

श्रीराम कृपालु हैं। भरत के संवादों से राम के व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। राम इतना कृपालु हैं कि वे पर-दुख को भी अपना दुख मानते हैं। वे अपने वचन का पालन सदा करते हैं। पिता के दिए हुए वचन का

मान रखने के लिए चौदह वर्ष वनवास करते हैं। वे अपने भाइयों से अत्यंत प्रेम करते हैं। आज्ञाकारी, स्नेही, विनम्र स्वभाव, दयालु, संवेदनशील और कृपालु हैं। उनकी कृपा मात्र से ही सब खुश हो जाते हैं। माण्डवी भरत से कहती है कि महाप्रभु (श्रीराम) की कृपा ही हमारे संतोष का बल है।

2. माण्डवी

माण्डवी भरत की पत्नी है। वह हर समय भरत को सांत्वना एवं प्रोत्साहन देती है। जब भरत राम का संदेश न पाकर अधीर हो जाता है तो माण्डवी उसकी हिम्मत बढ़ाती है और मन की ग्लानि को दूर करने के लिए कहती है। माण्डवी सूझ-बूझ से कार्य करनेवाली स्त्री है। यहाँ एकांकीकार ने माण्डवी को सशक्त स्त्री के रूप में दिखाया है जो समय आने पर अपने पति को सही सलाह दे सकती है, और उसे सही रास्ता दिखा सकती है। माण्डवी अपने पति के मनोभावों को समझकर उसके साथ चलनेवाली है।

V. निम्नलिखित वाक्यांशों का संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए :-

1. चित्रकूट में मैंने निवेदन किया था कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न को अयोध्या भेज दीजिए और मुझे अपने साथ ले लीजिए किंतु वह प्रार्थना भी निष्फल रही।

संदर्भः यह प्रसंग 'भरत का भाग्य' शीर्षक एकांकी से लिया गया है। इसके लेखक हैं रामकुमार वर्मा।

प्रसंगः प्रस्तुत वाक्य भरत माण्डवी से कहता है।

व्याख्याः भरत श्रीराम की पादुकाओं को ही श्रीराम मानकर, उन्हें सिंहासन पर रखकर शासन चलाता है। रह-रहकर वह चिंता में डूब जाता है। तब भरत माण्डवी से कहता है कि चित्रकूट में मैंने श्रीराम से विनती की कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न को अयोध्या भेजकर, मुझे अपने साथ ले जाइए। तो राम ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया था। अतः वह कहता है कि मेरी यह प्रार्थना भी निष्फल हो गई।

विशेष : इससे राम के प्रति भरत का भ्रातृभाव और भाई के साथ रहने की उनकी इच्छा प्रकट होती है।

2. अवश्य उनके स्वागत का पूर्ण प्रबंध हो। तुम्हें भी यह काषाय वस्त्र और कृष्ण मृगचरम का परित्याग करना चाहिए।

संदर्भः यह प्रसंग 'भरत का भाग्य' शीर्षक एकांकी से लिया गया है। इसके लेखक हैं रामकुमार वर्मा।

प्रसंगः प्रस्तुत वाक्य गुरु वशिष्ठ भरत से कहते हैं।

व्याख्याः मारुति पुत्र हनुमान आकर भरत को यह संदेश देता है कि श्रीराम रावण को मारकर सीता और लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट रहे हैं। भरत यह शुभ समाचार गुरु वशिष्ठ को सुनाता है और राम के स्वागत के प्रबंध की आज्ञा मांगता है। तब गुरु वशिष्ठ, भरत से कहते हैं कि स्वागत का पूर्ण प्रबंध के साथ-साथ भरत को भी काषाय वस्त्र और कृष्ण मृगचर्म आदि त्यागना अवश्य है।

विशेष : इससे भरत के प्रति गुरु वशिष्ठ का वात्सल्य प्रकट होता है और भरत की गुरु भक्ति का भी परिचय हमें मिलता है।

3. आप परम सौभाग्यशाली हैं। आप को तो यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि आप महाप्रभु के प्रेम को संसार में सूर्य की भाँति प्रकाशित कर दें। आपके बिना यह किसी से भी संभव नहीं था।

संदर्भः यह प्रसंग 'भरत का भाग्य' शीर्षक एकांकी से लिया गया है। इसके लेखक हैं रामकुमार वर्मा।

प्रसंगः प्रस्तुत वाक्य माण्डवी भरत से कहती है।

व्याख्याः भरत श्रीराम की पादुकाओं को ही श्रीराम मानकर उन्हें सिंहासन पर रखकर शासन चलाता है। भरत अपने आपको धिक्कारते हुए कहता है कि उसी के कारण श्रीराम को कष्ट भोगना पड़ा। पादुकाएँ भी उसी के कारण श्रीराम के चरणों से दूर हो गयीं। वह आत्मग्लानी से परेशान होता है, तब उसके मन की वेदनाओं को दूर करने के लिए माण्डवी भरत को इस प्रकार समझाती है।

विशेष : माण्डवी अपने पति के मनोभावों को समझकर, भरत को सांत्वना एवं प्रोत्साहन देती है। माण्डवी की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति इससे प्रकट होती है।

❊ ❊ ❊ ❊

2. भीम और राक्षस

विष्णु प्रभाकर

पात्र-परिचय

ब्राह्मणी	:	गरीब ब्राह्मण की पत्नी
ब्राह्मण	:	गरीब ब्राह्मण
ब्राह्मण की लड़की	:	सात-आठ वर्ष की बालिका
कुन्ती	:	भीम की माँ
भीम	:	कुन्ती का पुत्र
बकासुर	:	परपीडक राक्षस
		अन्य एक-दो राक्षस आदि

दृश्य - 1

[एक गरीब ब्राह्मण का घर। पीछे की ओर बाहर दहलीज से आने का मार्ग। एक ओर ओसारा जिसका खंभा पकडे हुए एक लड़की खड़ी है। दूसरी ओर कमरा है, जिसके द्वार पर एक प्रौढ़ा एक बच्चे को लिये बैठी रो रही है। आगे आँगन में एक प्रौढ़ ब्राह्मण खड़ा है। वह भी रो रहा है। चारों ओर उदासी है। ओसारे में एक चक्की है, अरगनी पर कुछ कपड़े हैं, एक ओर खाट पड़ी है। सब लोग रोते-रोते बात कर रहे हैं। परदा उठता है।]

ब्राह्मणी — *[रोकर]* मैं कहती हूँ तुम मुझे जाने दो। बच्चे तो अब बड़े हो गये हैं। इन्हें संभालने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

ब्राह्मण — नहीं, नहीं। तू कैसे जा सकती है? तू चली जाएगी तो घर में क्या रहेगा? बच्चे इतने बड़े कहाँ है? फिर बेटी का विवाह भी करना है। नहीं, नहीं, मैं ही जाऊँगा।

ब्राह्मणी — अजी तुम कैसे जाओगे? तुम चले गये तो घर का सहारा ही चला जाएगा। नहीं, मैं ही जाऊँगी।

लड़की — माँ, न तुम जाओ और न पिताजी को जाने दो। मैं जाऊँगी।

ब्राह्मणी — हरे, हरे! तू कैसे जाएगी! तू क्या कहती है?

ब्राह्मण — तू जाएगी? बस, यही सुनना तो बाकी रहा था। हाय रे, दुनिया क्या कहेगी?

ब्राह्मणी — मेरे रहते मेरे बच्चे मरने की बात कहें। भगवान! मैंने ऐसा क्या पाप किया है? *[ज़ोर से रोती है, सब रो पड़ते हैं। तभी सहसा बाहर से कुन्ती और भीम का प्रवेश।]*

कुन्ती — क्या बात है? तुम सब क्यों रो रहे हो?

भीम — कहाँ जाना है? तुम पर क्या विपद आ पड़ी?

कुन्ती — अरे भाई हुआ क्या, कुछ तो बताओ। *[कोई नहीं बोलता, उसी तरह रोते रहते हैं।]*

भीम — हाँ, हाँ, रोना बंद करके बात बताओ। कुछ समझ में तो आये। बहुत देर से सुन रहा हूँ, रोये जा रहे हो।

ब्राह्मण — बात क्या है, मेरा भाग्य फूट गया। इससे कहता रहा; चल इस एकचक्रा नगरी को छोड़कर कहीं और चलें; पर यह तो यहाँ की मिट्टी में ऐसी रम गयी कि जाने का नाम नहीं लिया। अब भुगतेगी, मेरा तो बुलावा आ गया।

कुन्ती — कहाँ से बुलावा आ गया? कुछ तो बताओ। तुम्हें क्या दुःख है? हमें बताओ तो हम कुछ-न-कुछ जरूर करेंगे।

ब्राह्मणी — हाय बहन! कहते तो मेरा कलेजा और फटता है। तुम हमारी अतिथि हो। अतिथि को अपने दुख से दुखी नहीं करना चाहिए।

कुन्ती — अच्छा, तुम न बताओ। मैं अपनी बेटी से पूछती हूँ। *[बेटी से]* बेटी, तुम मेरे पास आओ। हाँ, तो बताओ क्या बात है?

ब्राह्मण — अजी, बता क्यों नहीं देती? ये परदेशी हैं, उस राक्षस की कहानी का इन्हें क्या पता?

भीम — राक्षस! कैसा राक्षस? क्या यहाँ भी कोई राक्षस रहता है?

कुन्ती — अरे, बताते क्यों नहीं? कौन राक्षस है वह?

ब्राह्मण — उसका नाम है बक।

भीम — क्या नाम बताया? बक?

ब्राह्मण — हाँ, हम लोग उसे बक कहते हैं। यों तो उसका नाम बकासुर है।

भीम — ओहो, बकासुर! हाँ, फिर वह क्या करता है?

ब्राह्मण — करता क्या? इस नगरी की रक्षा करता है।

कुन्ती — राक्षस रक्षा करता है! रक्षा करता है तो तुम रोते क्यों हो? क्या अब वह जा रहा है? या तुमसे कुछ अपराध हो गया है?

ब्राह्मण — ना बहन, कुछ अपराध नहीं हुआ।

भीम — तो वह जा रहा है क्या?

ब्राह्मण — नहीं।

भीम — तुम पहेलियाँ बुझा रहे हो। अरे, साफ़-साफ़ बात क्यों नहीं कहते? ऐसा कौन राक्षस है जो इस नगरी की रक्षा करता है? क्या यहाँ कोई राजा नहीं है?

ब्राह्मण — बेटा, मैं तुम्हें सब कहानी बताता हूँ। इस नगरी का राजा बड़ा दुर्बल है। बस, गद्दी पर बैठना जानता है। उसको दबाकर बक असली राजा बन बैठा है। वही अब हमारी रक्षा करता है।

कुन्ती — तो फिर?

भीम — फिर क्या माँ? वह इनसे कुछ बदले में माँगता होगा।

ब्राह्मण — हाँ बेटा! बकासुर हम सब लोगों की रखवाली करता है, और उसके बदले में हमसे एक गाड़ी अन्न, दो भैंसे और एक मनुष्य लेता है।

भीम — रोज़?

ब्राह्मण — हाँ बेटा, रोज़ लेता है। नगर के लोगों ने मिलकर बारी बाँध ली है। जब जिसकी बारी आती है तब वही यह सब सामान भेज़ता है।

भीम — हूँ, तो अब समझ में आया। आज तुम्हारी बारी है? अरे पहले ही क्यों नहीं बता दिया?

कुन्ती — लेकिन, क्या सब लोग अपनी-अपनी बारी भुगताते हैं?

ब्राह्मण — ज़रूर भुगताते हैं। न भुगताएँ तो वह राक्षस सारे नगर को उजाड़ दे। हज़ारों मनुष्यों को एक साथ खा जाए।

भीम — और जो कोई अपनी जगह दूसरा आदमी भेज दे?

ब्राह्मण — हाँ, भेज सकता है, उसे तो आदमी चाहिए। बहुत-से लोग ऐसा करते हैं।

कुन्ती — तो क्या यहाँ आदमी बिकते भी हैं?

ब्राह्मण — हाँ, बहुत बिकते हैं। मेरे पास धन नहीं है। होता तो मैं भी एक आदमी खरीदकर भेज देता।

भीम — बड़ी अजीब जगह है यह! यहाँ आदमी बिकते हैं? मालूम होता है, यहाँ के आदमियों में आपस में प्रेम और एकता नहीं है।

ब्राह्मण — होता तो क्यों हम राक्षस के अधीन होते? कुछ दिन रहोगे तो सब कुछ देख लोगे।

कुन्ती — लेकिन ऐसे तुम कब तक उस राक्षस का पेट भरते रहोगे?

ब्राह्मण – यह तो कोई सोचता ही नहीं। जब किसीकी बारी आती है तभी उसे ध्यान आता है। बस, रो-पीटकर कुछ दिन में वह भी सब्र कर लेता है।

भीम – कब से ऐसा होता आ रहा है?

ब्राह्मण – पिछले चालीस वर्ष से।

भीम – *[हँसकर]* बड़े बहादुर हो तुम लोग। अरे, चालीस वर्ष में कोई एक भी आदमी ऐसा नहीं हुआ जो उस राक्षस को पाठ पढ़ा सकता? अगर तुम हिम्मत करो तो उसे मार सकते हो।

ब्राह्मण – क्या कहते हो बेटा? तब हमारी रक्षा कौन करेगा?

भीम – *[ज़ोर से हँसकर]* अजीब डरपोक हो। अरे, क्या वह राक्षस अमर है? हटो जी, बन्द करो सब कुछ भेजना।

ब्राह्मण – ना, ना, बेटा! तुम क्या कहते हो! वह सबको मार डालेगा।

भीम – तो फिर, एक बार ऐसा आदमी भेजो, जो उसे छल से या बल से मार डाले।

ब्राह्मण – अरे बेटा, वह करके देख लिया। एक बार एक योगी आये थे। तुम्हारी तरह बातें करते थे। गाँववालों ने कहा – महाराज, आप कोशिश कर देखिये।

कुन्ती – बहुत खूब, जो बोले सो ताला खोले।

भीम – हाँ, हाँ, तो फिर क्या हुआ?

ब्राह्मण – फिर वह योगी महाराज बक के पास गये। राक्षस उन्हें निगल गया, पर वे तो योगी थे। योग से गले में जा अटके। न नीचे जावें, न बाहर निकलें।

भीम – खूब, खूब, फिर क्या हुआ?

ब्राह्मण – फिर बेटा, बकासुर के साथी गाँव में आये। बोले, उस साधु से कहो कि गले से निकल आये। वरना हम अभी सबको मारते हैं।

कुन्ती – तो गाँववालों ने क्या किया?

भीम – करते क्या? बेचारे योगी से निकल आने को कहा होगा।

ब्राह्मण – हाँ, बेटा, यही हुआ।

भीम – *[क्रुद्ध होकर]* यही हुआ। निकम्मे, कायर, मिट्टी के पुतले! अच्छा तो यही है कि वह राक्षस तुम सबको एकबारगी खा जाए। अब भुगतो अपनी बारी। रोते क्यों हो?

कुन्ती – *[भीम से]* अरे, अरे बेटा! इन ब्राह्मण देवता पर क्यों क्रोध करता है? इन्होंने तो हमको शरण दी है। *[ब्राह्मण से]* सुनो भाई, तुम चिन्ता मत करो। उठो, खाओ-पिओ। जाओ बहन, तुम रसोई में जाओ। और बेटी, तुम अपना काम देखो। कल तुममें से कोई नहीं जाएगा।

ब्राह्मण – क्या? क्या कहा तुमने बहन? हममें से कोई नहीं जाएगा?

कुन्ती – हाँ, तुममें से कोई नहीं जाएगा।

ब्राह्मण – तो कौन जाएगा?

कुन्ती – मेरा यह बेटा। मेरे तो पाँच बेटे हैं न?

ब्राह्मण – पाँच बेटे हैं तो क्या राक्षस को खिलाने के लिए हैं? नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। हमारी बारी हो और तुम्हारा बेटा जाए? हम बचें और अतिथि को आग में झोंक दें? भगवान, तू मुझे उठा क्यों नहीं लेता?

लड़की – पिताजी, आप मेरी बात क्यों नहीं मान लेते? मुझे जाने दीजिये। सब झगड़ा निबट जाएगा।

कुन्ती – हाय हाय, मेरी बच्ची, तू कैसी बात कहती है! खबरदार, जो फिर ऐसा कहा। जा-जा, घर का काम देख। उठो तुम सब लोग। कल मेरा बेटा जाएगा।

ब्राह्मण – पर बहन...

कुन्ती – अब तुम चुप भी रहो.....क्यों बेटा, तुम तैयार हो न?

भीम – तैयार! माँ, जब से बकासुर का नाम सुना है, मेरी भुजाएँ तभी से फड़क रही हैं। मेरे नेत्र उसे देखने को उतावल हो रहे हैं। वाह माँ, जहाँ हम रहें वहाँ बकासुर किसीको सता सकेगा?

कुन्ती – तुझसे यही आशा थी बेटा। *[ब्राह्मणी से]* सुना बहन, अब तुम रोना छोड़कर खुशी-खुशी काम में लगो।

ब्राह्मणी – नहीं नहीं, बहन। यह कैसे हो सकता है? यह तो पाप है, तुम हमें........

कुन्ती – ओहो...... सुनती हो, मेरे बेटे की बात सुनी? वह बड़ा वीर है, क्या पता राक्षस को मार डाले।

ब्राह्मण – राक्षस को मार डाले!

कुन्ती – हाँ, देखते नहीं, कितना भारी है? खाता क्या कम है? आधे में यह अकेला और आधे में हम पाँच, फिर भी भूखा रहता है। बस, बस, तुम डरो मत।

ब्राह्मण — बात तो तुम्हारी बहन, दिल लगती है।

ब्राह्मणी — पर.........

कुन्ती — अब पर वर कुछ नहीं, खाना बनाओ। हम सब साथ-साथ खाएँगे।

ब्राह्मण — अच्छा बहन, तुम्हारी जो आज्ञा।

ब्राह्मणी — तुम्हारा दिल बहुत बड़ा है बहन। भगवान तुम्हारे बेटे की रक्षा करेगा।

लड़की — बुआ, बुआ, तुम कितनी अच्छी हो!

कुन्ती — *[हँसती हुई]* पगली, जा रसोई में जाकर माँ की मदद कर। और भीम, तू जा, कल की तैयारी कर।

भीम — चलो माँ।

[वे चारों एक ओर अन्दर तथा भीम और कुन्ती दूसरी ओर बाहर जाते हैं। परदा गिरता है।]

दृश्य - 2

[जंगल का दृश्य। बकासुर का मकान दिखायी देता है, क़िले मस्ती में इधर-उधर देखता है। पास अन्न के कुछ बोरे पड़े हैं। भीम चिल्ला रहा है और बीच-बीच में अन्न के मुट्ठे भर-भर फाँकता है।]

भीम — हो -हो- हो -हहहा हो *[हँसना]* हहहा हो, हहहा ओ, हो हो हो हो, हहहा, भइया, हो हो हो हो हो........

[दो क्षण के बाद बकासुर मकान से झाँकता है।]

बकासुर — हूँ, किस आदमी ने शोर मचाया है। बड़ा अजीब आदमी है! डरने के बजाय हँसता है। देखता हूँ कौन है वह....

भीम — *[अन्न खाकर]* ए हा हा हा हा, लालला ला ला, खाना खा, गाना गा।

बकासुर — ए...ए, तू कौन है? *[कोई जवाब नहीं देता तो वह सामने आता है।]* ए गधे, मैं तुझसे ही पूछता हूँ। तू कौन है? *[कोई उत्तर नहीं।]* अरे दुष्ट, तू सुनता नहीं? *[भीम उसी तरह चिल्लाता हुआ घूमता रहता है।]* अरे बदमाश, क्या तूने बकासुर का नाम नहीं सुना?

भीम — *[एकदम]* बकासुर! कहाँ है बकासुर?

बकासुर — मैं हूँ बकासुर। अब बता, मेरा अन्न तू क्यों खा रहा है?

भीम — तो तू है बकासुर? बड़ा झूठा है बे तू, मुझे बहकाता है। अबे तू तो भैंसे जैसा है!

बकासुर — ज़बान सँभालकर बोल। तू बकासुर से बातें कर रहा है। मेरी भैंसें कहाँ हैं?

भीम — *[ज़ोर से हँसते हुए]* एक तो तू ही है। एक मुझे समझ ले।

बकासुर – ओहो, बड़ा बदज़ात है तू। ठहर, अभी एक घूँसा लगाता हूँ। *[तेज़ी से आकर घूँसा लगाता है।]*

भीम – *[हँसकर]* वाह, देखने में तो भैंसे-से लगते हो। पर हाथ ऐसे कोमल हैं जैसे किसी लड़की के। अच्छा, अब नाचना छोड़कर पानी ले आ। प्यास लगी है। थोड़ा-बहुत अन्न लेना हो तो ले लेना। ज्यादा शोर न करना।

बकासुर – ओ दुष्ट, तू ऐसे नहीं मानेगा। मैं अभी तुझे पानी पिलाता हूँ। साबुत न चबा गया तो बकासुर न कहना। आ तो......

भीम – आने को क्या रखा है? ले आ, कुश्ती लड़ेगा? आ, लड़ ले बच्चा। बच्चा, बाँह अभी रगड़ता हूँ। *[भीम बकासुर को गले से पकड़कर कहता है।]* देखा, आ गया न, फँस गया न पंजे में। कह रहा था, शोर मत कर। अब बोल, दबाऊँ गला। *[बकासुर चीखता है]* चीखता क्यों है बे? चालीस साल से एक आदमी, दो भैंसें, एक गाड़ी अन्न रोज़ खा रखा है। कहाँ हैं सब? निकाल। *[मारता है]* अबे सुनता है? *[बकासुर चीखता है। भीम अट्टहास करता है]* अबे, चीखता क्यों है? चुप रह, मैं कहता हूँ, चुप रह। अबे, सुनता नहीं? *[बकासुर चीखता है। भीम बड़ा ज़ोर लगाता है और बकासुर की आँखें फट जाती हैं।]* तो ले। *[ज़ोर से धरती पर पटकता है।]* अभी तेरे दो टुकड़े किये देता हूँ। *[चीर देता है। एक भयंकर चीख के साथ राक्षस मर जाता है। भीम अट्टहास करता है।]* हा-हा-हा! मर गया। चींटी की तरह मर गया। वाह बेटा.......

[उसी समय बड़े जोर का शोर उठता है। राक्षस लोग भागकर आते हैं। काँपते-काँपते भीम को देखते हैं।]

भीम – ओ, तुम बकासुर के सिपाही हो? खबरदार, जो अब शरारत की! रहना हो तो रहो, पर गाँववालों को तंग न करना, समझे? जाओ, भागो, ले जाओ इस लाश को। *[किसी की बोली नहीं निकलती। भयातुर-से सभी खड़े रहते हैं।]* अबे, सुनते नहीं? लाश को उठाकर नगर के दरवाज़े पर रख दो, जिससे सब गाँववाले देख लें।

एक राक्षस – *[हकलाते हुए]* जी.......जी........ अच्छा........

भीम – और आदमियों को मत खाना।

राक्षस – जी.....जी......नहीं।

भीम – चलो, ले चलो उठाकर!

[डरते-डरते लाश उठाकर जाते हैं। भीम अन्न के फाँके मारता हुआ उनके पीछे-पीछे जाता है।]

[परदा गिरता है।]

❁ ❁ ❁ ❁

शब्दार्थ :-

ओसारा - बरामदा; अरगनी - वस्त्र टांगने की रस्सी, बांस आदि; आग बबूला होना - गुस्सा करना; क्रोध - गुस्सा; चुनौती - ललकारना; दानव - राक्षस; दुर्बल - बलहीन; भाग्य फूटना - दुर्भाग्य; भिक्षाटन - भीख माँगकर खाना; भुगतना - सहना; विपदा - मुसीबत; शरण - आश्रय।

अभ्यास

I. प्रश्नों का उत्तर एक या दो वाक्यों में दीजिए :-

1. ब्राह्मण के घर सब लोग क्यों रो रहे थे?

राक्षस बकासुर का भोज बनने की बारी उस दिन ब्राह्मण के परिवार का था। इसलिए घर के सब लोग रो रहे थे।

2. बकासुर क्या करता था?

बकासुर राजा को दबाकर खुद सब की रक्षा करता था।

3. कितने वर्षों से बकासुर आदमियों को खा रहा था?

चालीस वर्षों से बकासुर आदमियों को खा रहा था।

4. भीम बकासुर को क्या करता है?

भीम बकासुर का अंत करता है।

5. बकासुर गाँव वालों के लिए क्या काम करता था और बदले में उनसे क्या लेता था?

बकासुर गाँव वालों की रक्षा करता था। बदले में गाँववालों से एक गाड़ी भर अन्न, दो भैंस और एक मनुष्य उसे खाने के लिए लेता था।

6. भीम ने बकासुर की लाश कहाँ रखने के लिए कहा?

भीम ने बकासुर की लाश को ले जाकर नगर के दरवाजे पर रख देने के लिए कहा।

II. पात्र का चरित्र-चित्रण दीजिए :-

1. भीम

कुंती पुत्र भीम पाँच पांडवों में दूसरा था। वह युधिष्ठिर का छोटा भाई था। वह अत्यंत बलशाली था। उसने अनेक राक्षसों का वध किया है। इस एकांकी में लेखक ने भीम द्वारा बकासुर के वध हो जाने का वर्णन किया है।

असाधारण बलशाली:

कहा जाता है कि भीम में एक हज़ार हाथियों का बल समाहित था। कुंती ब्राह्मण से भीम के बारे में परिचय

देते समय कहती है, "देखते नहीं मेरा बेटा कितना भारी है"? घर का खाना तो आधा भाग भीम अकेला खाता है और शेष भाग हम पाँच लोग बांटकर खाते हैं। भीम, माँ के आदेश पर बकासुर के पास भोजन ले जाता है। भीम को बकासुर विशालकाय भैंस जैसा हैं। आदत वश सबकुछ खा लेता है तो बकासुर क्रुद्ध होकर लड़ता है बकासुर के साथ युद्ध करके उसका अंत कर देता है।

मानवतावादीः

कुंती और भीम के पूछने पर ब्राह्मण कहता है कि अपने स्थान पर किसी और आदमी को खरीदकर भेजा जा सकता है। तुरन्त भीम आश्चर्य प्रकट करते हुए कहता है "यहाँ आदमी बिकते हैं, मालूम होता है, यहाँ के आदमियों में आपस में प्रेम और एकता नहीं है।" इस कथन से भीम का मानवीय गुण प्रकट होता है। ब्राह्मण के बदले राक्षस के पास स्वयं जाता है।

आज्ञाकारी पुत्र और आत्म विश्वासी :

भीम अपने अज्ञातवास के समय ब्राह्मण का वेश धारण करके एक गरीब ब्राह्मण के यहाँ अतिथि के रूप में अपनी माँ और भाइयों के साथ रहता था। उसे पता चला कि गरीब ब्राह्मण परिवार के सदस्य को उस नगर के राक्षस का भोज बनना था। इस अवसर पर कुंती भीम से पूछती है – 'क्यों बेटा, तुम तैयार हो न?' तुरंत भीम उत्तर देता है, "तैयार! माँ। मेरे नेत्र उसे देखने को उतावले हो रहे हैं। हमारे रहते हुए बकासुर किसीको सता सकेगा?" इन वाक्यो से भीम का आत्म विश्वास का पता चलता है। साथ-साथ भीम अपने को आज्ञाकारी पुत्र साबित कर देता है।

साहसी :

राक्षस के बारे में हुई बात के दौरान भीम ब्राह्मण से कहता है कि एक बार ऐसा आदमी भेजो जो उसे छल से या बल से मार डाले। तुरंत ब्राह्मण कहता है कि एक बार एक योगी बकासुर के पास गया था। बकासुर उसे निगल गया था पर योगी अपने योग से गले में जा अटक गये। योगी की कहानी सुनने के बाद भीम खुद राक्षस के पास जाने के लिए तैयार हो गया।

इस प्रकार भीम को उपर्युक्त गुणों से संपन्न पात्र के रूप में एकांकीकार ने चित्रित किया है।

2. कुंती

महाभारत की कथा के अनुसार कुंती सहित पंच पांडव अपने वनवास के दौरान एक गरीब ब्राह्मण के घर में अतिथि के रूप में आश्रित रहे।

कुंती एक नम्र स्वभाव की स्त्री है :

वह अत्यंत नम्र स्वभाव की स्त्री थी। उसे दूसरों के दुख सहा नहीं जाता था। जब उसे पता चलता है कि जिस ब्राह्मण के घर वे अतिथि के रूप में रहते हैं, उनपर विपदा आई है तो तुरंत अपने पुत्र भीम को बकासुर के पास भेज देती है। उसे अपने पुत्र भीम पर संपूर्ण विश्वास था कि वह विजयी होकर लौटेगा।

अपनी बात पर अड़िग रहनेवाली :

ब्राह्मणी के रोना सुनकर खुद उनके यहाँ जाकर कारण पूछती है। पर ब्राह्मण व ब्राह्मणी विषय की जानकारी देने में हिचहिचाकट दिखाते हैं। कुंती फिर उनकी लड़की से भी पूछताछ करती है। बार-बार कुंती के पूछने पर ब्राह्मण बकासुर के बारे में पूरी जानकारी सुनाता है। इस प्रकार कुंती बहुत अडिग रहकर परिवार के लोगों से पूरे विषय की जानकारी प्राप्त कर लेती है।

परोपकारी :

कुंती के परोपकार स्वभाव को इस एकांकी में एकांकीकार अच्छी तरह चित्रित करते हैं। आश्रयदाताओं की मदद करना अपना परम कर्तव्य समझती है। इसीलिए ब्राह्मण, ब्राह्मणी, लड़की तीनों को सांत्वना देती है। फिर भीम को बकासुर के पास जाने की आज्ञा देती है।

III. एकांकी का सारांश लिखिए :–

लेखक परिचय :

विष्णु प्रभाकर हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जिले के मीरापुर गाँव में 21 जून, 1912 को हुआ। विष्णु प्रभाकर पर महात्मा गांधी के सिद्धांतों का गहरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं– (उपन्यास) ढलती रात, स्वप्नमयी, अर्धनारीश्वर, धरती अब भी घूम रही है, (नाटक) हत्या के बाद, नव प्रभात, डॉक्टर, प्रकाश और परछाइयाँ, अशोक। (कहानी संग्रह) संघर्ष के बाद, मेरा वतन। (जीवनी) आवारा मसीहा (कथाकार शरतचंद्र के जीवन पर आधारित)। (यात्रा वृत्तांत) ज्योतिपुन्ज हिमालय।

सारांश :

महाभारत की कथा के अनुसार कुंती सहित पंच पांडवों ने अपने वनवास के दौरान एक गरीब ब्राह्मण के घर में अतिथि के रूप में आश्रय पाये हैं। ब्राह्मण के वेश में वे वहाँ ठहरे और भिक्षाटन करके जीवन यापन करते थे। उस समय घटित एक घटना का चित्रण इस एकांकी में है।

गरीब ब्राह्मण का घर। एक दिन उस घर से जोर-जोर से रोने की आवाज आ रही थी। कुंती से यह सहा नहीं गया। वह उनके पास जाकर पूछने लगती है कि बात क्या है? लेकिन कोई कुछ नहीं बोलते, रोते ही रहते हैं। इतने में भीम उनसे सारा विवरण पूछता है। तब ब्राह्मण कहता है, उस नगरी का राजा बहुत दुर्बल था। उस राजा को दबाकर बक नामक राक्षस राजा बन गया। वही सब की रक्षा करने के बहाने आतंक करता है। बदले में उसे हर रोज एक गाड़ी भर अन्न, दो भैंस और एक मनुष्य को भोज के रूप में देना होता है। उस नगर के लोगों ने सब मिलकर बारी-बारी से उसको भोग चढ़ाने का निर्णय किया।

यह नियम चालीस सालों से चल रहा था। अब इस ब्राह्मण परिवार की बारी है। जब भीम पूछता है कि अपने स्थान पर किसी और को भी तो भेज सकते है? तो ब्राह्मण जवाब देता है कि ऐसा भी किया जा सकता है। पर आदमी खरीदने के लिए धन भी तो चाहिए।

कुंती इन बातों से दुखित होती है। भीम पूछता है कि क्या चालीस वर्षों में ऐसा कोई आदमी सामने नहीं आया जो उस राक्षस को पाठ पढ़ा सके? ब्राह्मण ने कहा, इसके लिए एक योगी ने प्रयास किया लेकिन सफल नहीं हुए। कुंती अपने पुत्र भीम को बकासुर के पास भेजती है। भीम राक्षस का वध करते ही सभी राक्षस दौड़ते हुए आते हैं। भीम को देखकर भयभीत हो उठते हैं। भीम उन्हें चेतावनी देता है कि आगे वे गाँव वालों को कभी तंग नहीं करें। उसकी लाश ले जाकर नगर के दरवाजे पर रख देने के लिए कहते हैं ताकि सब गाँव वालों की नजर पड़ जाए। इस तरह भीम बकासुर का अंत करता है।

इस एकांकी का संदेश यह है कि हमेशा दानवता पर मानवता की जीत होती है। अच्छाई के सामने बुराई झुक जाती है।

IV. टिप्पणी लिखिए :-

1. बकासुर

विशालकाय राक्षस बकासुर था। इसका वध पांडु पुत्र भीम ने किया था। एकचक्रा नगरी का राजा बहुत दुर्बल था। इसलिए राक्षस बकासुर उसे दबाकर राजा बन बैठा। वही गाँव वालों की रक्षा करता है। बदले में उसे एक गाड़ी भर अन्न, दो भैंस और एक मनुष्य खाने के लिए देना होता है। नहीं तो गुस्से में वह सब लोगों को सताने लग जाता है। उससे गाँव वाले त्रस्त थे। उसके आतंक के बारे में जानकार भीम उसका अंत करके गाँव वालों को उससे मुक्ति दिलाता है।

2. कुंती

महाराज पांडु की पत्नी और पंच पांडवों (युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) की माँ। वह अत्यंत नम्र स्वभाव की स्त्री थी। उसे दूसरों के दुख सहा नहीं जाता। जब उसे पता चलता है कि जिस ब्राह्मण के घर वे अतिथि के रूप में रहते हैं, उन पर विपदा आई है तो वह बिना कुछ सोचे अपने पुत्र भीम को इस विपत्ति से बचाने के लिए भेज देती हैं। उसे अपने पुत्र भीम पर संपूर्ण विश्वास था कि वह विजयी होकर लौटेगा।

II. निम्नलिखित वाक्यांशों का संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए :-

1. बड़ी अजीब जगह है यह। यहाँ आदमी बिकते हैं? मालूम होता है, यहाँ के आदमियों में आपस में प्रेम और एकता नहीं है।

प्रसंगः यह प्रसंग 'भीम और राक्षस' शीर्षक एकांकी से लिया गया है। इस नाटक का लेखक विष्णु प्रभाकर हैं।

संदर्भ : यह वाक्य भीम ब्राह्मण से कहता है।

व्याख्या : राक्षस को भोजन के रूप में जाने की बारी ब्राह्मण परिवार की है। भीम पूछता है कि अपने स्थान पर किसी और को भेज सकते हैं क्या, तो ब्राह्मण जवाब देता है कि ऐसा किया जा सकता है और यहाँ आदमी भी बिकते हैं। इस पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए भीम कहता है कि यह जगह तो बहुत विचित्र है। यहाँ आदमियों के बीच में आपसी प्रेम और एकता नहीं है।

विशेष : भीम के इस कथन से पता चलता है कि एक मनुष्य को सह मनुष्य से प्यार और इनसानियत नहीं है।

2. निकम्मे, कायर, मिट्टी के पुतले। अच्छा तो यही है कि वह राक्षस तुम सबको एकबारगी खा जाए।

प्रसंग : यह प्रसंग 'भीम और राक्षस' नामक एकांकी से लिया गया है। इस नाटक का लेखक विष्णु प्रभाकर है।

संदर्भ : यह वाक्य भीम, ब्राह्मण से कहता है।

व्याख्या : राक्षस को पाठ पढ़ाने आये एक योगी के बारे में बातचीत करते समय भीम नाराज़ होकर ब्राह्मण पर टूट पड़ता है। आप सब लोग कायर और निकम्मे है। अब रोने से क्या फायदा है कहकर चिल्लाता है।

विशेष : इससे हमें पता चलता है कि भीम अन्याय को नहीं सह सकता।

3. अरे, अरे बेटा। इन ब्राह्मण देवता पर क्यों क्रोध करता है? इन्होंने तो हमको शरण दी है।

प्रसंग : यह प्रसंग 'भीम और राक्षस' नामक एकांकी से लिया गया है। इस नाटक का लेखक विष्णु प्रभाकर हैं।

संदर्भ : यह वाक्य कुंती, भीम से कहती है।

व्याख्या : जब भीम कृद्ध होकर ब्राह्मण को डांटता है तब कुंती उससे पूछती है कि ब्राह्मण पर क्यों क्रोध करते हो? ये ब्राह्मण ने ही हमें शरण दी है और उनकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। वह ब्राह्मण से आगे का काम करने की सुझाव देती है।

विशेष : इससे कुंती का अच्छा स्वभाव हमें पता चलता है।

❀ ❀ ❀ ❀

3. न्याय की जीत

पात्र-परिचय

अनंत	-	एक व्यापारी
वसन्त, शिवेन्द्र	-	अनंत के मित्र
कृष्णदास	-	कंजूस सेठ
पद्मावती	-	वसंत की पत्नी
	-	जज

पहला दृश्य

[स्थान - एक बड़ा बंगला। चारों तरफ़ सुंदर बगीचा है। बंगले के बरामदे में एक मेज और उसके तीन तरफ़ तीन कुर्सियाँ रखी हैं। अनंत और उसके दोस्त शिवेन्द्र बैठे चाय पी रहे हैं।]

(वसंत का प्रवेश। अनंत उसको देखकर कुर्सी से उठकर खड़ा होता है और हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़ता है।)

अनंत - आओ भाई वसन्त, बहुत दिनों पर तुम इधर तशरीफ़ लाये। मैं तो तुमसे मिलने के लिए बेचैन हो रहा था।

शिवेन्द्र - कहो वसन्त, ख़ैरियत से हो न? मैं भी आज बहुत दिनों में तुमको देख रहा हूँ। आजकल तो तुम ईद के चांद हो गये हो!

वसन्त - बैठता हुआ) हाँ, भाई, भगवान की कृपा से सब कुशल है। कहो, तुम लोग अच्छे हो न?

शिवेन्द्र - हाँ, सब ठीक है। (कुछ रुककर) तुम लोग अब बातें करो। मुझे कुछ काम से अभी बाहर जाना है।

वसन्त - वाह, मेरे आते ही तुम उठ खड़े हुए!

शिवेन्द्र - ऐसा नहीं। सचमुच कुछ ज़रूरी काम है। एक दोस्त से ठीक पाँच बजे मिलने का वादा करके मैं यहाँ आया था। (घड़ी की तरफ़ देखकर) पाँच बजने ही वाले हैं। अच्छा, नमस्ते, फिर कभी मिलेंगे। (चला जाता है।)

अनंत - कहो भाई कोई नयी खबर है?

बसन्त - नहीं, कोई ख़ास ख़बर तो नहीं है।

अनंत - तो फिर इतने दिनों से तुम यहीं आये क्यों नहीं? याद आया, तुम तो शादी की फ़िक्र में थे। कहो, क्या शादी हो गयी?

वसन्त - फ़िक्र करने से ही किसीकी शादी थोड़े ही हो जाती है! शादी के लिए तो पहले लड़की चाहिए। उसके बाद काफ़ी रुपये चाहिए।

अनंत - भूमिका बाँधने की जरूरत नहीं। कहो, कोई लड़की पसंद आयी या नहीं?

वसन्त - लड़की तो मिली है, लेकिन...

अनंत - लेकिन क्या?-

वसन्त - लेकिन.... लेकिन, यही कि मेरी हालत तो तुम जानते ही हो। मैंने बिना सोचे-समझे अपना सारा धन बरबाद कर दिया। इस समय बुरी तरह कर्ज़े में फँसा हुआ हूँ। मुझे तो इसी बात की फ़िक्र है कि इस मुसीबत से कैसे छुटकारा पाऊँ?

अनंत - इसके लिए फिक्र करने की क्या ज़रूरत है? तुम्हें जिस चीज़ की ज़रूरत हो, मुझसे कहो। मेरे पास जो कुछ है, उसे तुम अपना ही समझो।

वसन्त - भाई अनंत, तुम्हारी मुहब्बत और मदद को जीवन-भर में भूल नहीं सकता। बार-बार तुमसे मदद माँगना अच्छा नहीं लगता। फिर भी अगर इस बार तुम मेरी मदद कर सको, तो तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा।

अनंत - हाँ-हाँ, ज़रूर करूँगा। कहो किस तरह की मदद चाहते हो? तुम तो मेरा स्वभाव जानते ही हो।

वसन्त - मेरी शादी एक खूबसूरत लड़की से तय हुई है। वह बड़ी शीलवती और गुणवती है। उसके पास काफ़ी जायदाद है; बड़ी दौलत है। अगर मेरा ब्याह उसके साथ हो जाएगा, तो मेरी सारी तकलीफें दूर हो जाएँगी।

अनंत - भाई वसन्त, मुझे यह सुनकर बड़ी खुशी होती है कि तुम एक खूबसूरत और गुणवती लड़की से शादी करना चाहते हो। लेकिन तुम जानते हो, मेरी नावें अभी तक वापस नहीं आयी हैं। मेरी सारी क़िस्मत उन नावों पर ही टंगी हुई है। इस वक्त मेरा हाथ ऐसा खाली है, जैसा पहले कभी न था। लेकिन ख़ैर, शहर में तो अब मेरी साख़ है। तुम्हें कितने रुपयों की ज़रूरत है?

वसन्त - दो हज़ार की।

अनंत - ठीक है, मैं एक ख़त लिख देता हूँ। उस ख़त को लेकर तुम सेठ कृष्णदास के यहाँ चले जाओ। मुझे यकीन है कि वह तुम्हें ज़रूर रुपये दे देगा।

वसन्त - लेकिन वह तो तुमसे जलता है। उससे रुपये कर्ज़ लेना उचित नहीं मालूम होता।

अनंत - क्या हर्ज़ है? दो महीनों के अन्दर जब मेरी नावें वापस आएँगी, तो उसके रुपये वापस कर दूँगा।

(अनंत पत्र लिखकर देता है और उसे लेकर वसन्त चला जाता है।)

दूसरा दृश्य

[कृष्णदास का मकान। फ़र्श पर एक मोटा गद्दा बिछा हुआ है। दीवार से लगे हुए तीन बड़े-बड़े तकिये रखे हैं। नीचेवाले तकिये से लगकर कृष्णदास बैठे हुए हैं। सामने एक लोहे की पेटी रखी है, जिसपर एक तरफ़ बड़ी-बड़ी बहियाँ हैं और दूसरी तरफ़ क़लम और दवात हैं। वसंत अंदर जाता है।]

वसन्त - नमस्ते, सेठजी!

सेठ - नमस्ते! आइये! कहिये, कैसे आना हुआ?

वसन्त - कुछ रुपयों की जरूरत है, इसलिए यहाँ आया हूँ।

सेठ - रुपयों की ज़रूरत है? अच्छा, कहिये, आपको कितने रुपये चाहिए?

वसन्त - दो हजार रुपये। दो महीनों में वापस कर दूँगा।

सेठ - (कुछ आश्चर्य - सा प्रकट करते हुए) दो हजार रुपये? आपके नाम पर?

वसन्त - जी नहीं, मेरे मित्र अनंत के नाम पर। वे ही इन रुपयों के लिए ज़िम्मेदार होंगे।

सेठ - (अपने मन में) दो हज़ार रुपये? अनंत के नाम पर?

वसन्त - कहिये, क्या सोच रहे हैं?

सेठ - नहीं, कुछ नहीं। यही सोच रहा था कि अनंत बहुत अच्छे आदमी हैं.....

वसन्त - उनके ऊपर आपका विश्वास है न?

सेठ - हाँ-हाँ, ज़रूर-जरूर। लेकिन उनकी नावें तो सब बाहर गयी हैं। आप जानते हैं, रास्ते में चोर-डाकू भी रहते हैं। कभी-कभी नौकर-चाकर धोखा दे देते हैं और समुद्र में आंधी और तूफ़ान का डर तो हमेशा बना ही रहता है। खैर तो भी कुछ परवाह नहीं। मैं उनके वादे पर तुम्हें जरूर रुपये दूँगा।

(अनंत अन्दर आता है।)

अनंत - कहो भाई, क्या हुआ, देर क्यों हुई?

वसन्त - अभी बातचीत हो रही है। सेठजी, देखिये, ये हैं मेरे दोस्त अनंत।

सेठ - हूँ। (आप ही आप) ओह, देखो, ऊपर से कैसे सीधा-सादा मालुम होता है? लेकिन भीतर से ऐसा बदमाश! मैं तो इससे दिल से नफ़रत करता हूँ। सारे शहर के लोगों को बिना ब्याज के रुपये देकर इसने मेरा सारा कारोबार चौपट कर दिया है। खुल्लम-खुल्ला मुझे सूदखोर कहकर बदनाम करता है और दूसरों के सामने मेरी बेइज्जती करने से नहीं चूकता। अगर किसी तरह यह मेरे पंजे में आ जाए, तो मैं सबका बदला एक ही बार में चुका लूँगा। मैं तो किसी भी हालत में इसे माफ़ नहीं करूँगा।

वसंत - सेठजी, क्या सोच रहे हैं?

सेठ - कुछ नहीं, यही सोच रहा था कि इस वक्त मेरे पास दो हज़ार रुपये हैं या नहीं। लेकिन कुछ परवाह नहीं। रुपये का इन्तजाम हो जाएगा। हाँ, कहियें, सूद किस दर से देंगे?

अनंत - आप जानते हैं हम सूद का कारबार कभी करते नहीं। मेरी समझ में तो सूद लेना और देना दोनों गुनाह हैं। लेकिन इस वक्त मेरे दोस्त को रुपयों की सख्त जरूरत है। इसलिए लाचार होकर आपके पास आना पड़ा। आप जो दर चाहें ले सकते हैं।

सेठ - हाँ-हाँ, आप शरीफ़ आदमी हैं; इसलिए सूद नहीं लेते। हम बेचारे ग़रीब सूद न ले, तो कैसे जिएँ? आज आपको रुपयों की ज़रूरत पड़ी है, तो मेरे पास दौड़ आये हैं। लेकिन कल आप ही सरे आम मुझे सूदखोर, बेईमान, और नीच कहकर पुकारते थे। अगर मैं आपकी नज़रों में इतना नीच, इतना बेईमान, इतना बेहया हूँ, तो फिर आपको मेरे पास आने की क्या जरूरत थी? किसी नीच, बेईमान और बेहया आदमी से आप मदद की उम्मीद रखते हैं?

अनंत - जी, मैं आपको अब भी वैसा ही समझता हूँ, जैसा पहले समझता था। मैं आपसे मदद माँगने नहीं आया हूँ आपसे कर्ज़ लेने आया हूँ। यह तो बिलकुल लेन-देन की बात है। आपको मुझपर दया दिखाने की ज़रूरत नहीं। मैं दो महीने में आपका रुपया वापस न करूँ, तो बाप जिस तरह से चाहें अपना रुपया वसूल कर लीजियेगा।

सेठ - नहीं, अनंत साहब, आप मेरे साथ जैसा भी व्यवहार करें, लेकिन मैं तो हमेशा आपके साथ अच्छे से अच्छा व्यवहार करने को तैयार हूँ। मैं हमेशा आपका दोस्त था, हूँ और रहूँगा भी। लीजिये, ये दो हजार रुपये हैं। (रुपयों की थैली सामने रखकर) बस एक ही शर्त है कि मियाद पूरी होते पर अगर आप रुपये वापस न करेंगे, तो उनके एवज़ में आपको अपने हृदय के पास से आधा सेर माँस काटने का हक़ मुझे देना होगा।

अनंत - (जोश में आकर) ठीक, मुझे मंजूर है।

वसन्त - नहीं, नहीं, मुझे मालूम होता है कि इस आदमी के दिल में दगा है। मैं आपको हरगिज इस शर्त पर रुपये लेने नहीं दूँगा। चलिये, उठिये, यहाँ से चलें!

अनंत - वसन्त, तुम चुप रहो। दो महीने के अन्दर तो मेरी नावे आ ही जाएँगी। फिर इसके रुपये चुका देना क्या मुश्किल की बात है?

सेठ - तुम लोग बड़े शक्की मालूम होते हो। मैंने यह शर्त सिर्फ़ इसलिए रखी है कि रुपये चुकाने में तुम बेपरवाह न हो जाओ। नहीं तो दो हज़ार रुपये के बदले में आधा सेर माँस लेकर कोई क्या करेगा? बकरी या किसी जानवर का माँस बिक भी सकता है। आदमी का माँस तो कौड़ी का भी नहीं होता। फिर आप ही बताइये, इस शर्त से घबराने की क्या जरूरत है?

अनंत - हाँ, सेठजी, कुछ परवाह नहीं। लाइये, मैं दस्तखत कर देता हूँ।

[सेठ शर्तनामा लिखते हैं। अनंत उसपर अपनी सही कर देता है। फिर दोनों मित्र रुपयों की थैली लेकर चले जाते हैं।]

तीसरा दृश्य

[स्थान - पद्मावती का महल; एक बड़े कमरे में कई कुर्सियाँ रखी हैं जिनपर रेशम के कपड़े बिछे हैं। नीचे फर्श पर बेशक़ीमत कालीन पड़ी हुई है। एक तरफ़ दीवार में क़दे-आदम आईना लगा हुआ है। दूसरी तरफ़ एक बड़ी अलमारी में चांदी और सोने के बेशक़ीमत सामान रखे हैं। आसपास दो कुर्सियों पर बैठे वसन्त और पद्मावती दोनों बातें कर रहे हैं।]

वसन्त - प्रिये, तुम्हें पाकर मुझे कितनी खुशी हुई, इसका बयान नहीं कर सकता।

पद्मावती - मुझे भी इस बात की कम खुशी नहीं है कि मुझे तुम जैसे सुशील पति मिले।

(एक नौकर आता है और वसन्त के हाथ में एक चिट्ठी देता है। वसन्त चिट्ठी पढ़कर बहुत उदास हो जाता है।)

पद्मावती - प्रियतम, यह ख़त कहाँ से आया है?

वसन्त- यह ख़त मेरे प्यारे दोस्त अनंत का है। मैंने कई बार तुमसे उसका जिक्र किया है, तुमको याद होगा।

पद्मावती - हाँ-हाँ, खूब याद है। लेकिन तुम इसको पढ़कर उदास क्यों हो गये? उस ख़त में क्या लिखा है?

वसन्त- मेरी प्यारी पद्मावती, तुमसे तो मेरी हालत छिपी नहीं है। मैंने तुमसे साफ़ कह दिया था कि मेरे पास धन-दौलत, जगह-जमीन कुछ नहीं है। मैंने एक मित्र से कर्ज लेकर तुमसे शादी की। उसके पास भी रुपये नहीं थे। उसने एक कंजूस से मेरी शादी के लिए दो हजार रुपये कर्ज के रूप में लिए थे। मुझे अफ़सोस है कि मैंने अपने फ़ायदे के वास्ते अपने एक प्यारे दोस्त की जान ख़तरे में डाली है।

पद्मावती - पढ़ो, चिट्ठी में क्या लिखा है?

वसन्त- सुनो। (पढ़ता है।)

प्रिय वसन्त, मेरी सब नावें डूब गयीं। मैं कृष्णदास के रुपये वादे के मुताबिक समय पर नहीं चुका सका। इसलिए वह मेरे शरीर से आधा से माँस काट लेगा। मैं मरने के पहले एक बार तुमसे मिलना चाहता हूँ। फिर मुझे मरने का दुख नहीं होगा।

तुम्हारा,
अनंत

पद्मावती – सेठ का कितना रुपया बाक़ी है।

वसन्त – उसने दो हजार रुपये दिये थे। मेरे मित्र की नावें वापस नहीं आयीं, जिससे वह रुपये न चुका सका। ओह! मैं अपने दोस्त के लिए बड़ी बेचैनी महसूस कर रहा हूँ। कुछ न कुछ मुझे ज़रूर करना है। तुम मुझे इजाजत दो, में अभी वाराणसी जाऊँगा। देखूँ, मैं उसकी जान बचा सकता हूँ या नहीं।

पद्मावती - हाँ-हाँ, जल्दी जाओ। दो हजार रुपये क्या चीज़ है? ये हैं दस हज़ार रुपये, और इन्हें देकर अपने दोस्त को छुडा लाओ। (रुपये देकर) अगर इतने पर भी न मानें, तो बीस हजार दे दो। लेकिन ऐसा हरगिज न होना चाहिए कि तुम्हारे दोस्त का एक बाल भी बांका हो। जाओ, देर बिलकुल न करो।

वसन्त- अच्छा, जाता हूँ।

पद्मावती - हाँ, अपने मित्र को यहाँ साथ लाना न भूलना।

(वसन्त चला जाता है।)

चौथा दृश्य

[स्थान - वाराणसी नगर का न्यायालय। एक ऊँची कुर्सी पर प्रधान न्यायाधीश बैठे हैं। नीचे एक मेज़ के पास क्लर्क बैठा कुछ लिख रहा है। सामने एक तरफ़ अनंत और दूसरी तरफ सेठ खड़े हैं।]

(वसन्त जल्दी अंदर आता है।)

जज - (कृष्णदास से) कहिये, आपका क्या दावा है?

सेठ - हुजूर, मैंने अनंत को दो हजार रुपये इस शर्त पर कर्ज दिये थे कि वह दो महीने में सूद के साथ वापस लौटा देंगे। अगर दो महीने के अन्दर रुपये न लौटा सके, तो मुझे यह हक होगा कि मैं अपनी मर्जी के मुताबिक उनके शरीर के किसी भी हिस्से से आधा सेर माँस काट लूँ। दो महीने की मियाद पूरी हो गयी है और दस्तावेज़ के मुताबिक़ अनंत की देह से आधा सेर माँस काटने का हुक्म चाहता हूँ। यह है दस्तावेज़ जिसपर अनंत की सही है। (दस्तावेज निकालकर देते हैं।)

जज – (दस्तावेज़ पढ़कर अनंत से) क्या यह दस्तावेज़ तुम्हारा लिखा हुआ है?

अनंत - जी हाँ।

जज- क्या इसमें लिखी सभी बातें सही हैं?

अनंत - जी हाँ।

जज - क्या तुम सेठ के रुपये अदा करने के लिए तैयार हो?

अनंत - हुजूर, मेरी नावें डूब गयी हैं। मेरा सारा कारोबार नष्ट हो गया है। इस वक़्त मेरे पास दो हजार क्या, दो सौ रुपये भी नहीं हैं, जिन्हें देकर छुटकारा पाऊँ।

जज - तो क्या शर्तनामे के मुताबिक अपने शरीर का आधा सेर माँस देने के लिए तैयार हो?

(वसन्त जल्दी अंदर आता है।)

वसन्त- हुजूर, मैं अपने दोस्त के रुपये चुकाने के लिए तैयार हूँ। मैं कृष्णदास को दो हजार के बदले चार हजार देने को तैयार हूँ।

जज - सेठजी, यह लीजिये आपके रुपये। दो हजार के बदले चार हज़ार मिल रहे हैं। रुपये लीजिये और अपना मुकदमा उठा लीजिये।

सेठ - मुझे रुपये से कोई मतलब नहीं। चार हजार क्या, चार लाख से भी मैं संतुष्ट नहीं हो सकता। मुझे दस्तावेज़ में जो लिखा है, वही चाहिए।

जज - भला, आप दूसरे पर दया नहीं करते, तो आपको दूसरों से क्या आशा होगी?

सेठ - हुजूर, जब मैंने कोई कसूर नहीं किया है, तो किस बात से डरूँ ? मैंने इससे आधा सेर माँस के वास्ते दो हज़ार रुपये दिये हैं। वह मेरा ख़रीदा माल है। मैं उसे ज़रूर लूँगा। अगर आप न दिलवाएँगे, तो मैं सारी दुनिया में यह प्रकट कर दूँगा कि यहाँ किसीको न्याय नहीं मिल सकता, कानून का गला घोंटा जाता है।

अनंत - हुजूर, इस आदमी को राह पर लाना ठीक वैसा ही है, जैसा कुत्ते की पूँछ को सीधा करना। इसके दिल पर कोई असर डालना असंभव है। इसलिए आप मुझे अपनी सजा भुगतने और कृष्णदास को अपनी इच्छा पूरी करने दीजिये।

[वकील के वेश में पदमावती आती है, पीछे क़ानून की किताबों का गट्ठा लेकर एक क्लर्क आता है।]

वकील - हुजूर, मैं अनंत की तरफ़ से इस मुक़दमे में बहस करना चाहता हूँ। मैं इसके लिए आपकी इजाज़त चाहता हूँ। क्या मैं वह दस्तावेज़ देख सकता हूँ जिसपर अनंत की सही है?

जज - हाँ-हाँ! आप ज़रूर अनंत की तरफ़ से बहस कर सकते हैं। (जज वकील के हाथ में दस्तावेज़ देते हैं।)

वकील - (दस्तावेज को पढ़कर) महाशय अनंत, क्या आपने यह दस्तावेज लिखी है?

अनंत - जी हाँ, मैंने यह दस्तावेज़ लिखी है।

वकील - कृष्णदासजी, अब आपको रुपये लेने में क्या उज्र है?

सेठ - रुपने लेने की मियाद पूरी हो गयी है। फिर आप ही कहिये कि मैं कैसे लूँ।

वकील - देखिये सेठजी, आप इस ग़रीब के ऊपर दया कीजिये। दया ऐसी चीज़ नहीं जिसके लिए आग्रह की ज़रूरत हो। वर्षा मीठी धारा की तरह आकाश से पृथ्वी पर गिरती है और जिसपर दया की जाती

है और जो दया करता है, उन दोनों को लाभ पहुँचाती है। दया बड़े लोगों का भूषण है। और राजाओं को तो वह उनके मुकुट से भी ज्यादा शोभा देती है। राजदण्ड केवल पशुबल का चिह्न है जिससे राजा का भय लोगों के दिलों पर छा जाता है। लेकिन दया का प्रभाव राजदण्ड से कहीं ज्यादा है। दया ईश्वरीय गुण है; इसलिए जब राजा लोग न्याय के साथ दया का भी बरताव करते हैं; तो वे देवता के समान मालूम होते हैं। कृष्णदासजी, मैं यह जानता हूँ कि क़ानून आपको अनंत की छाती से आधा सेच माँस काटने का हक़ देता है, तो भी अगर आप उसपर दया करेंगे, तो ईश्वर आपका भला करेगा। लेकिन अगर आप नहीं मानेंगे, तो लाचार होकर जज साहब को अपना फ़ैसला आपके पक्ष में देना होगा।

सेठ - वकील साहब, मैं जो कुछ करूँगा, उसका फल में खुद भोगूँगा। मैं जज साहब से प्रार्थना करता हूँ कि वे शर्तनामे के अनुसार मुझे मेरा हक दिला दें।

वकील - अनंत, क्या आप रुपये नहीं चुका सकते?

वसन्त - मैं अनंत की तरफ़ से कृष्णदासजी को दुगुने रुपये चुकाने के लिए तैयार हूँ। अगर उनसे भी उनका मन न भरे, तो चौगुना दूँगा। अगर इसपर भी वह न माने, तो साफ़ है कि शत्रुता के आगे धर्म की दाल नहीं गलती। (जज से) मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस दुष्ट को बुराई करने से रोकें।

वकील- नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। कानून तोड़ने का अधिकार किसीको नहीं है।

सेठ - वाह, वाह! धन्य वकील साहब की बुद्धि! साक्षात् विक्रमादित्य तो यहाँ आये हैं? ऐसा न्यायकर्ता हमने कभी नहीं देखा।

वकील - देखिये कृष्णदासजी, आपको अपने रुपये का चौगुना मिल रहा है।

सेठ - लेकिन वकील साहब, मैं तो कसम खा चुका हूँ। क्या मैं झूठी कसम खाने का पाप अपने माथे पर लूँ? ऐसा हरगिज़ नहीं हो सकता। यदि मुझे इसके बदले में एक बड़ा राज्य भी मिले, तो भी मैं अपनी शपथ न तोड़ूँगा।

वकील - (दस्तावेज़ को और एक बार पढ़कर) इसकी मियाद तो पूरी हो चुकी है। इसलिए इस दस्तावेज़ के मुताबिक कृष्णदास को पूरा अधिकार है कि इस सौदागर के हृदय के पास से आधा सेर माँस काट लें। क्यों अनंत, आप इसके लिए तैयार हैं न?

अनंत — जी हाँ, मैं भी यही चाहता हूँ कि जज साहब फैसला जल्दी सुना दें।

वकील - तो आप अपनी छाती खोल दीजिये।

सेठ - जी हाँ, छातो ही। यही दस्तावेज़ में लिखा है। "हृदय के पास से" यही दस्तावेज़ में लिखा है न?

वकील - हाँ, ऐसा हो लिखा है। अच्छा, माँस तोलने के लिए बाट और तराजू लाये हैं?

सेठ - जी हाँ, लाया हूँ।

वकोल - किसी डाक्टर को बुला लिया है इनकी दवा करने के लिए?

सेठ - क्या यह दस्तावेज में लिखा है?

वकील - नहीं लिखा तो नहीं। लेकिन इससे क्या? यदि इतनी भलाई आप इनके साथ करेंगे, तो लोग आपकी ही तारीफ़ करेंगे।

सेठ - जी नहीं, जो दस्तावेज़ में नहीं लिखा है, वह नहीं करूँगा।

जज - अनंत साहब, अगर आपको किसीसे कुछ कहना- सुनना हो, तो कह-सुन लीजिये।

अनंत - मुझे कुछ नहीं कहना है। लाओ, भाई वसन्त, मुझे अपना हाथ दो। मैं तुमसे बिदा लेता हूँ। तुम इस बात के लिए बिलकुल अफ़सोस न करना कि मुझपर आफत आयी। अपनी स्त्री से मेरा नमस्कार कहना और उनसे मेरे मरने का हाल कह देना।

वसन्त- भाई अनंत, मैं अपनी स्त्री को प्राणों से भी ज्यादा प्यार करता हूँ। लेकिन मेरे प्राण, मेरी स्त्री और सारा संसार तुम्हारे सामने तुच्छ है। इस दुष्ट कृष्णदास के पंजे से तुम्हें छुड़ाने के लिए मैं इन सबको न्योछावर करने के लिए तैयार हूँ।

वकील - यदि तुम्हारी स्त्री यहाँ पर होती, तो तुम्हारी बातें सुनकर ज़रूर नाखुश होती। (कृष्णदास से) अच्छा, सेठजी, दस्तावेज के मुताबिक आप अनंत की छाती से आधा सेर माँस काट सकते हैं।

सेठ - वाह, कैसा न्यायी वकील है! (अनंत से) आओ, तैयार हो जाओ।

वकील- - ज़रा ठहरिये। दस्तावेज़ आपको अनंत के खून का एक भी बूँद नहीं देती। सिर्फ़ आधा सेर माँस ही आप ले सकते हैं। इसलिए काटने के वक्त एक बूँद खून भी न गिरे। अगर एक बूँद खून भी गिराया, तो कानून के मुताबिक आप दंड के भागी बनेंगे।

वसन्त- वाह रे न्यायी!

सेठ – यह कैसे हो सकता है? काटते वक्त खून तो गिरेगा ही।

वकील - खून गिरेगा, तो सजा मिलेगी।

सेठ - अच्छा, मैं वसन्त की प्रार्थना मान लेता हूँ। मुझे चार हज़ार रुपये दीजिये।

वसन्त– लो, ये रुपये हैं। दस्तावेज से चौगुना रुपया लेकर घर की राह लो।

वकील - ठहरो! इस सेठ के साथ पूरा न्याय किया जाएगा। जल्दी करने की जरूरत नहीं। इनको दंड के सिवाय और कुछ नहीं दिया जाएगा। (कृष्णदास से) सेठजी, माँस काटने के लिए तैयार हो जाइये।

लेकिन ख़बरदार, खून का एक बूँद भी उसमें न रहे और आधा सेर से ज्यादा या कम माँस न कटे! अगर आपने रत्ती भर भी कम या ज्यादा काटा, तो आपको अपने प्राण खोने पड़ेंगे और आपकी सारी जायदाद भी जब्त कर ली जाएगी।

वसन्त- वाह-वाह! कैसा न्याय किया, मानों महाराज विक्रमादित्य ही न्याय करने आ गये।

वकील– सेठजी, क्या सोच रहे हैं? जल्दी कीजिये।

सेठ - नहीं भाई, मेरा मूलधन दे दो। मैं अपने घर जाऊँगा।

वसन्त - यह लो रुपये।

वकील - (जज से) यह अदालत के सामने रुपये लेने से इनकार कर चुके हैं। अब इन्हें न्याय के अनुसार दंड के सिवाय और कुछ नहीं मिलना चाहिए।

जज - हाँ, अब इन्हें दंड ही मिलेगा।

सेठ - क्या, मुझे मेरा मूलधन भी न मिलेगा?

जज - आपको दंड के सिवा और कुछ नहीं मिलेगा।

सेठ - रुपया जाए जहन्नुम में! हुजूर मैं अपना दावा उठा लेता हूँ, मुझे घर जाने की आज्ञा दीजिये।

[नेपथ्य 'में' धिक्कार! धिक्कार!! की ध्वनि उठती है। पर्दा गिरता है।]

❊ ❊ ❊ ❊

शब्दार्थ :–

तशरीफ़ लाये - पधारे, आये; वेचैन - उतावला, अशांत; खैरियत - अच्छा, स्वस्थ; ख़ास - विशिष्ट, मुख्य; फ़िक्र - चिंता; कर्ज़ - ऋण; किस्मत - भाग्य; खुल्लम-खुल्ला - खुले रूप में प्रकट; सूद - ब्याज; शरीफ़ आदमी - गौरव पूर्ण व्यक्ति; सरे आम - सबके सामने; बेहया - लज्जाहीन; दगा - धोखा; दस्तख़त - हस्ताक्षर; बयान - वर्णन; मुताबिक - अनुसार; कारोबार - धंधा, व्यापार; कसूर - गलती; मियाद - अवधि, समय; शर्तनामे - वह कागज़, जिसपर शर्त लिखा है; खबरदार - सावधान।

अभ्यास

I. प्रश्नों का उत्तर एक या दो वाक्यों में दीजिए :–

1. 'न्याय की जीत' एकाँकी किस नाटक पर आधारित है?

'न्याय की जीत', अँग्रेजी के महान नाटककार 'विलियम शेक्सपियर' के प्रसिद्ध नाटक "मर्चंट ऑफ वेनिस" पर आधारित है।

2. अनंत कौन है?

अनंत वाराणासी का एक व्यापारी है। वह बड़ा ही नेक स्वभाव का था और हमेशा दूसरों की सहायता के लिए तैयार रहता था।

3. कृष्णदास कैसा आदमी था?

कृष्णदास वाराणसी का एक कंजूस, सूदखोर, लालची एवं स्वार्थी सेठ था।

4. कृष्णदास ने अनंत को किस शर्त पर ऋण दिया?

उसने अनंत को इस शर्त पर ऋण दिया है कि अगर अनंत दो महीने के अंदर रुपए वापस नहीं करता तो वह अनंत के छाती के निकट भाग से आधा सेर माँस काट लेगा।

5. पद्मावती कृष्णदास सेठ को किस शर्त पर माँस काटने की अनुमति देती है?

पद्मावती इस शर्त पर अनुमति देती है कि मात्र माँस काटना है, और काटते समय एक बूँद भी खून नहीं निकलना है। अगर एक बूँद खून भी निकाला तो, कृष्णदास को दण्ड दिया जाएगा।

II. पात्र का चरित्र-चित्रण दीजिए :–

1. अनंत

अनंत 'न्याय की जीत' शीर्षक एकाँकी का प्रमुख पात्र हैं। यह एकाँकी अँग्रेजी के महान नाटककार 'विलियम शेक्सपियर' के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' पर आधारित है। 'अनंत' वाराणसी का एक व्यापारी था। वह बड़ा ही नेक स्वभाव का था। हमेशा दूसरों की सहायता के लिए तैयार रहता था। जिसकी ज़रूरत होती उसको बिना सूद के रुपए दिया करता था। उसके विचार में सूद लेना और देना दोनों पाप है। उसका मित्र वसंत है। दोनों अत्यंत घनिष्ठ मित्र हैं।

वसंत पद्मावती नामक गुणवति एवं धनवान लड़की से प्यार करता है और उससे विवाह करना चाहता है। विवाह खर्च के लिए उन्हे रुपयों की ज़रूरत पड़ती है। अनंत के पास उस समय पर्याप्त धन नहीं था, इसलिए वह कृष्णदास सेठ नामक एक लालची, सूदखोर एवं स्वार्थी सौदागर के पास ऋण लेने जाता है। कृष्णदास सेठ पहले से ही अनंत से ईर्ष्या करता था, उसे हानी पहुँचाने के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में था। अब अनंत स्वयं उनके पास आ गया तो वह इस मौके का फायदा उठाना चाहता है। वह अनंत को इस शर्त पर ऋण देता है कि अगर अनंत दो महीनों के अंदर रुपए वापस नहीं करता तो वह अनंत के छाती के निकट भाग से आधा सेर माँस काट लेगा।

दुर्भाग्यवश अनंत निर्धारित समय पर ऋण वापस नहीं कर पाता है। तो कृष्णदास सेठ अदालत में मामला दर्ज करता है। वसंत अपने मित्र के लिए ऋण के चौगुना राशि भी देने को तैयार रहता है। लेकिन कृष्णदास इस बात पर हठ करता है कि अवधि पूरी हो जाने के कारण वह पैसा वापस नहीं लेगा, बल्कि अनंत के शरीर से आधा सेर माँस काट लेगा। इससे अनंत ज़रा भी घबरा नहीं जाता। अपने शरीर से आधा सेर माँस काट लेने के लिए कहता है। लेकिन वसंत की पत्नी पद्मावती एक वकील के रूप में अदालत में पेश होती है और अपनी वाकचतुराई से सेठ के पक्ष को कमजोर बना देती है और अनंत मामले से मुक्त हो जाता है।

इस एकाँकी में अनंत के पात्र को एकांकीकार ने एक नेकदिल इंसान, परोपकारी, सच्चे मित्र आदि अनेक सद्‌गुणों से सम्पन्न आदमी के रूप में चित्रित किया है।

2. पद्मावती

पद्मावती 'न्याय की जीत' शीर्षक एकाँकी का प्रमुख नारी पात्र है। यह एकाँकी अँग्रेजी के महान नाटककार 'विलियम शेक्सपियर' के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' पर आधारित है। पद्मावती अनंत के प्रिय दोस्त वसंत की प्रेयसी है और बाद में वसंत से विवाह करती है। उनको यह पता चलता है कि वसंत के विवाह के लिए अनंत ने कृष्णदास सेठ से सूद पर ऋण लेकर दिया और उस ऋण को निश्चित समय पर वापस न कर पाने के कारण सेठ ने उसपर न्यायालय में मामला दर्ज कर दिया। तो वह तुरंत अनंत की सहायता करने के लिए अपने पति को भेजती है। वह ऋण के चार गुना रुपये भी देकर अनंत को ऋण से मुक्त करवाना चाहती है। लेकिन कृष्णदास सेठ जोकि एक सूदखोर, लालची आदमी है, धन वापस लेना नहीं चाहता। वह अनंत के शरीर से आधा सेर माँस काट लेने के अपने शर्त पर अडिग रहा। तो पद्मावती स्वयं वकील बनकर न्यायालय जाती है। अनंत के पक्ष में वह वाद करती है।

वह दया और करुणा के संबंधी अनेक बातें कहकर सेठ को अनंत पर दया दिखाने के लिए अनुनय करती है। वह जिस तरह सेठ कृष्णदास से वाद विवाद करती है उसे देखकर पाठकों को लगता है कि पद्मावती अत्यंत निपुण एवं अनुभवी वकील है। जब वह कहती है कि शर्तनामे पर जो उल्लिखित है उसका अनुपालन करना ज़रूरी है, तो सेठ सोचता है कि वह अपने पक्ष में बोलती है, और खुश होकर उसकी तारीफ करता है। आखिर वह कहती है कि शर्तनामे पर मात्र माँस का उल्लेख है, रक्त का उल्लेख नहीं है। अतः माँस काटते समय एक बूँद रक्त भी नहीं निकलना है, तो सेठ पीछे हट जाता है।

इस तरह अपने वाद विवाद क्षमता से अनंत को मामले से मुक्त करा देती है। इस एकांकी में पद्मावती का चित्रण एक आदर्श, धीरज और बुद्धिमान औरत के रूप में हुआ है।

3. सेठ कृष्णदास

सेठ कृष्णदास 'न्याय की जीत' शीर्षक एकाँकी का खलनायक (villain) पात्र है। यह एकाँकी अँग्रेजी के महान नाटककार 'विलियम शेक्सपियर' के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' पर आधारित है। कृष्णदास वाराणसी का एक कंजूस, सूदखोर, लालची एवं स्वार्थी सेठ था। अनंत से वह ईर्ष्या करता था और उसे हानी पहुँचाने के लिए उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में था। अब अनंत स्वयं उनके पास ऋण मांगकर आया तो वह मौके का फायदा उठाना चाहता है। वह अनंत को इस शर्त पर ऋण देता है कि अगर अनंत दो महीनों के अंदर रुपये वापस नहीं करता तो वह अनंत के छाती के निकट भाग से आधा सेर माँस काट लेगा। दुर्भाग्यवश अनंत निर्धारित समय पर ऋण वापस नहीं कर पाता है। अतः कृष्णदास सेठ अदालत में मामला दर्ज करता है। वसंत अपने मित्र के लिए ऋण के चौगुना राशि भी देने को तैयार रहता है। लेकिन कृष्णदास इस बात पर हठ करता है कि अवधि पूरी हो जाने

के कारण वह पैसा वापस नहीं लेगा, बल्कि अनंत के शरीर से आधा सेर माँस काट लेगा। इससे हमें पता चलता है कि कृष्णदास कितना घटिया आदमी है। पद्मावती वकील के रूप में आती है और कृष्णदास से दया और करुणा के महत्व के बारे में कहकर, अनंत को मुक्त करने की अनुनय करती है। लेकिन कृष्णदास शर्तनामे पर अडिग रहता है और कहता है कि शर्त पर जो लिखा है उसका उल्लंघन करना नहीं चाहिए। आखिर वह अपनी ही बात में फंस जाता है। पद्मावती भी कहती है कि शर्तनामे के अनुसार ही करना चाहिए; अतः मात्र माँस काटना है, और काटते समय एक बूँद भी खून नहीं निकालना है। आगे कहती है कि अगर एक बूँद खून भी निकाला तो, कृष्णदास को दण्ड दिया जाएगा। इसपर कृष्णदास रुपए वापस लेने के लिए मंजूर हो जाता है। लेकिन पद्मावती कहती है कि उसे दंड ही मिलेगा। आखिर कृष्णदास को अपने किए पर पछताना पड़ता है।

इस तरह कृष्णदास का चित्रण इस एकांकी में एक स्वार्थी, लालची , अदूरदर्शी के रूप में हुआ है।

III. एकांकी का सारांश लिखिए :–

वाराणसी में एक व्यापारी रहता था, जिसका नाम था अनंत। वह बड़ा ही नेक स्वभाव का था। हमेशा दूसरों की सहायता के लिए तैयार रहता था। जिसको जरूरत होती, उसको बिना सूद के रुपये दिया करता था। उसके विचार में सूद लेना और देना दोनों गुनाह थे। उसी नगर में कृष्णदास नामक एक कंजूस सेठ रहता था। अनंत के कारण उसका सूदखोरी का कारोबार चौपट हो गया, इसलिए वह उससे जलता था।

एक बार अनंत के एक मित्र वसन्त को अपने विवाह के सिलसिले में दो हज़ार रुपयों की जरूरत पड़ी। वह अनंत के यहाँ उधार मांगने की इच्छा से गया, परन्तु उसका हाथ उस वक्त बिलकुल खाली था। फिर भी उसने कृष्णदास सेठ से अपने नाम रुपये दिलवा दिये। कृष्णदास ने रुपये देते वक्त शर्त यह रखी थी कि अगर दो मास के अन्दर रुपये वापस नहीं मिले, तो यह अनंत के शरीर से आधा सेर माँस काट लेगा। अनंत ने स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसे आशा थी कि जल्दी ही उसकी नावें लौट आएँगी और उसके पास रुपयों की कमी नहीं रहेगी।

दुर्भाग्यवश अनंत की सारी नावें तूफान के कारण डूब गयीं। उसका सारा व्यापार चौपट हो गया। वह रुपये वापस नहीं कर पाया, तो कृष्णदास ने उसपर अदालत में दावा दायर कर दिया। वसन्त को इस बात का पता लगा और वह अनंत को बचाने की कोशिश में लग गया। उसके पास अब दौलत की कमी नहीं थी, किन्तु जब तक वसन्त अदालत में पहुँचा, तब तक अनंत ने अपना दोष क़बूल कर लिया था। अनंत ने दो हज़ार के बदले चार हज़ार देकर अपने मित्र को छुडाने की कोशिश की किन्तु सेठ ने नहीं माना। वह शर्त नामे के अनुसार आधा सेर माँस काट ही लेना चाहता था। ठीक उसी वक्त अचानक वसन्त की पत्नी पद्मावती ने वकील के वेश में प्रवेश किया। उसने कहा – 'सेठ को माँस काटने का अधिकार तो है, किन्तु खून एक बूँद भी नहीं गिरे अगर खून गिराया माँस के वजन में जरा भी कमी-बेशी हुई, तो सेठ को अपने प्राण देने होंगे।' सेठ कृष्णदास यह सुनते ही डर गया, उसने बिना रुपये लिए ही अपना दावा उठा लिया। यह एकांकी शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट आफ वेनिस' पर आधारित है।

IV. **टिप्पणी लिखिए :–**

1. वसंत

वसंत 'न्याय की जीत' शीर्षक एकाँकी का एक पात्र है। यह एकाँकी अँग्रेजी के महान नाटककार 'विलियम शेक्सपियर' के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' पर आधारित है। वसंत के पात्र को लेखक ने एक सीधे सादे नेक दिल इंसान के रूप में चित्रित किया है। वह पद्मावती नामक गुणवति एवं धनवान लड़की से प्यार करता है और उससे विवाह भी कर लेता है। जब उसे पता चलता है कि अपने कारण अपने मित्र को कष्ट भुगतना पड़ रहा है तो अपने मित्र को किसी भी तरह बचाने का प्रयास करता है। कृष्णदास सेठ को जो रकम वापस देनी है, उसके चार गुना देकर भी अपने मित्र को मुक्त करवाना चाहता है। इस प्रकार वसंत का चित्रण आदेश मित्र के रूप में हुआ है।

II. **निम्नलिखित वाक्यांशों का संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए :–**

1. **लेकिन ऐसा हरगिज़ न होना चाहिए, कि तुम्हारे दोस्त का एक बाल भी बाँक हो। जाओ, देर बिलकुल न करे।**

प्रसंग :– यह कथन 'न्याय की जीत' शीर्षक एकांकी से दिया गया है। यह एकांकी अंग्रेज़ी के महान नाटककार 'विलियम शेक्सपियर' के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' पर आधारित है।

व्याख्या :– वसन्त के विवाह के सिलसिले में, उसका मित्र अनंत कृष्णदास नामक लालची, कंजूस सेठ से रुपये माँगने गया। सेठ ने इस शर्त पर रूपये दिये कि अगर दो महीनों में रुपये वापस नहीं किया तो उसके छाती के निकट भाग से माँस काट लेंगे। अनंत निर्धारित समय के अंदर रुपया नहीं दे सका। तो, सेठ न्यायालय गया। वसंत की पत्नी पद्मावती को जब इसका पता चलता है तो वह वसंत से इस प्रकार कहती है। पद्मावती अनंत को किसी भी तरह बचाना चाहती है।

2. **यदि इतनी भलाई आप इनके साथ करेंगे तो लोग आपकी ही तारीफ़ करेंगे।**

प्रसंग :– यह कथन 'न्याय की जीत' शीर्षक एकांकी से दिया गया है। यह एकांकी अंग्रेज़ी के महान नाटककार 'विलियम शेक्सपियर' के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' पर आधारित है।

व्याख्या :– वसन्त के विवाह के सिलसिले में, उसका मित्र अनंत कृष्णदास नामक लालची, कंजूस सेठ से रुपये माँगने गया। सेठ ने इस शर्त पर रूपये दिये कि अगर दो महीनों में रुपये वापस नहीं किया तो उसके शरीर के निकट भाग से माँस काट लेंगे। अनंत निर्धारित समय के अंदर रुपया नहीं दे सका। तो, सेठ न्यायालय गया। न्यायालय में वसंत की पत्नी पद्मावती वकील के रूप में आती है। वह कृष्णदास सेठ से इस प्रकार कहती है।

3. राजदण्ड केवल पशुबल का चिह्न है जिससे राजा का भय लोगों के दिलों पर छा जाता है। लेकिन दया का प्रभाव राजदण्ड से कहीं ज़्यादा है।

प्रसंग :– ये वाक्य 'न्याय की जीत' शीर्षक एकांकी से उद्धृत हैं। यह एकांकी अंग्रेज़ी के महान नाटककार 'विलियम शेक्सपियर' के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' पर आधारित है। अनंत अपने दोस्त वसंत की शादी के खर्च के लिए सेठ कृष्णदास से सूद पर ऋण लेता है। कृष्णदास सेठ एक लालची, सूदखोर आदमी है। वह अनंत को इस शर्त पर ऋण देता है कि अगर अनंत दो महीनों के अंदर रुपए वापस नहीं करता तो वह अनंत के छाती के निकट भाग से आधा सेर माँस काट लेगा। दुर्भाग्यवश अनंत निर्धारित समय पर ऋण वापस नहीं कर पाता है। तो कृष्णदास सेठ अदालत में मामला दर्ज करता है। अदालत में वसंत की पत्नी पद्मावती वकील के रूप में आती है और अनंत के पक्ष में वाद करती है। इस अवसर पर पद्मावती ये वाक्य कहती हैं।

व्याख्या :– पद्मावती सेठ से अनुनय करती हैं कि वह अनंत पर दया करे। ऋण की राशी के चार गुना भी लेकर अनंत को छोड़ देने के लिए कहती है। लेकिन सेठ हठ करता है कि अब उसे पैसा नहीं चाहिए, मात्र अनंत के शरीर से आधा सेर माँस चाहिए। तो पद्मावती दया और करुणा के महत्व पर व्याख्यान देती है। कहती है कि राजदण्ड हिंसा का प्रतीक है; यह भय दिखाकर लोगों को नियंत्रण पर रखने के लिए प्रयोग किया जाता है। लेकिन दया ईश्वरीय गुण है और इसका प्रभाव राजदण्ड से अधिक है।

❊ ❊ ❊ ❊

4. राजपूतनी का बदला

द्विजेन्द्रलाल राय

पात्र - परिचय

रानी	:	मारवाड़ के स्वर्गीय राणा जसवन्तसिंह की पत्नी महामाया
गुलनार	:	औरंगजेब की बेगम
राजसिंह	:	मेवाड़ के राणा
दुर्गादास	:	मारवाड़ के सेनापति
कासिम	:	एक ईमानदार मुसलमान

दृश्य - 1

स्थान – मेवाड़ के राणा राजसिंह के महल का बाहरी हिस्सा।

समय-तीसरा पहर।

[ऊँचे आसन पर राणा राजसिंह बैठे हैं। सामने बच्चे को गोद में लिये जसवंतसिंह की रानी महामाया घुटने टेक बैठी हैं। दाहिनी ओर मारवाड़ के सेनापति दुर्गादास और कासिम खड़े हैं।]

रानी – राणा! मेरे इस बच्चे को अपने गढ़ में स्थान दीजिये। बहुत दिनों के लिए नहीं, राणा! थोड़े ही दिनों के लिए।

राजसिंह – महामाया, तुम्हारा लड़का मेरा गैर नहीं है। उसकी रक्षा के लिए यों गिड़गिड़ाने की क्या ज़रूरत है? दुर्गादास! औरंगज़ेब क्या इस बच्चे के भी प्राण लेना चाहता है?

दुर्गादास – नहीं तो इसको पकड़ने का और क्या उद्देश्य हो सकता है, महाराणा?

रानी – एक लड़का और एक लड़की, केवल यही संपत्ति लेकर उस दिन दिल्ली से निकली थी। राह में लड़की मर गयी। अब मेरी संपत्ति में केवल यही दूध पीता बच्चा बचा है। मेरे सर्वस्व इस पुत्र की रक्षा कीजिये महाराणा! ईश्वर आपका भला करेंगे।

राजसिंह – पुत्र के लिए कुछ भी चिन्ता न करो महामाया! मैं अपने प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा।

रानी – राणा की जय हो!

राजसिंह — दुर्गादास! औरंगज़ेब के अत्याचार की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती चली जा रही है। उन्होंने हिन्दुओं के ऊपर फिर से 'जज़िया' लगाया है। उसके ऊपर मारवाड़-पति जसवन्तसिंह के परिवार पर ऐसा दारुण अन्याय! देखें, पत्र लिखकर शायद औरंगज़ेब को ठीक राह पर ला सकूँ।

रानी — पत्र लिखकर? अनुनय-विनय करके? घुटने टेककर? भीख माँगकर? नहीं महाराणा! इस तरह ढीले पड़कर नहीं। अब की इस बादशाहत को जड़ से उखाड़े बिना मेरे कलेजे में ठंडक नहीं पडेगी।

राजसिंह — नहीं महामाया! रक्त की नदियाँ बहाये बिना यह काम नहीं हो सकता? जब एक राज्य स्थापित हो गया है, तब उसे जड़ से उखाड़ने की चेष्टा करना अन्याय है। इसमें सहस्त्रों मनुष्यों की हत्या होगी और देश की प्रजा को कष्ट मिलेगा।

रानी — अपने देश में दूसरी जाति के राज्य की रक्षा! यही क्या क्षत्रियों का धर्म है?

राजसिंह — क्षत्रियों का धर्म केवल मार-काट करना ही नहीं है। मरने-मारने की विद्या ऊँचे दर्ज की विद्या नहीं है। किसी आर्त की रक्षा या अपनी रक्षा के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य से मार-काट करने का नाम हत्या है। *[इसके बाद कासिम की ओर देखकर]* यह कौन है?

दुर्गादास — यह कासिम उल्ला है, मेरा पुराना मित्र है। इसने अपनी जान की परवाह न करके हमारे राजकुँवर की रक्षा की है।

कासिम — राणा साहब! मैं इन लोगों का पुराना नमक- ख्वार हूँ। सरदार *[दुर्गादास]* ने एक दफ़ा बड़ी आफ़त से मुझको बचाया था। तब से मैं इन्हीं की गुलामी में हूँ।

राजसिंह — दुर्गादास! कासिम भी तो मुसलमान है!

कासिम — महाराणा, मेरी जात को बुरा न कहें। हमारी जात खराब नहीं है। हम सब कुछ हो सकते हैं, पर नमकहराम नहीं।

राजसिंह — नहीं कासिम! मैं तुम्हारी जाति की निन्दा नहीं करता, बादशाह के साथ तुम्हारी तुलना करता हूँ। बादशाह इस छोटे बच्चे की जान लेना चाहते हैं, और तुम....

कासिम — अहा, कैसा भोला-भाला सुन्दर बच्चा है! देखने से जी चाहता है, गोद में लेकर प्यार कर लूँ!

राजसिंह — औरंगज़ेब! तुम दिल्ली के सिंहासन पर बैठे एक निरीह बालक की हत्या करने के लिए व्यग्र हो रहे हो, और तुम्हारी ही जाति का यह कासिम उसे प्राण देकर भी बचाने के लिए तैयार है। ईश्वर की दृष्टि में कौन बड़ा है, औरंगज़ेब?

रानी – राणा! मैं इस भारी अत्याचार का बदला लूँगी। इसका बदला चुकाने के लिए ही मैं उस दिन और स्त्रियों के साथ नहीं जल मरी। इसीके लिए अब तक ज़िन्दा हूँ। आप केवल इस बच्चे की रक्षा कीजिये।

राजसिंह – मैं कह चुका हूँ, इसके लिए कोई चिन्ता नहीं है महामाया, तुम अपने लड़के को लेकर यहाँ बेखटके रहो।

रानी – नहीं राणा! मैं यहाँ नहीं रहूँगी। अब यह मेरा घर नहीं है। मैं अपने स्वर्गवासी स्वामी के राज्य को लौट जाऊँगी। संपत्ति और विपत्ति में, सुख और दुख में, शांति और अशांति में, जीवन-मरण में स्वामी का घर ही स्त्री का घर है। मैं मारवाड़ चली जाऊँगी।

राजसिंह – किन्तु अभी तो वहाँ तुम बेखटके नहीं रह सकती बहन।

रानी – बेखटके? मैं क्या यहाँ अपने लिए बेखटके जगह खोजने आयी हूँ? नहीं राणा, मैं उसे नहीं खोजती। मैं अब आपत्ति को खोजती हूँ। आपत्ति की गोद में मैं पली हूँ, भूकम्प में मेरा जन्म हुआ है, तूफ़ान में मेरा घर है, प्रलय के बादलों में मेरी सेज है। विपत्ति! विपत्ति को तो मैंने अपनी सखी बना ली है, राणा! मुझे अब और क्या विपत्ति होगी? पति मारा गया, पुत्र मारा गया। सर्वस्व लुट गया– अब और क्या विपत्ति होगी? राणा, मेरे लिए अब एक ही विपत्ति और हो सकती है, इस बच्चे की हत्या। इसकी रक्षा कीजिये राणा! और कुछ न चाहिए, इसकी रक्षा कीजिये। मैं मारवाड़ जाऊँगी। आग सुलगाऊँगी, ऐसी आग सुलगाऊँगी जिसमें औरंगज़ेब क्या चीज़ है, सारा मुगलों का राज जलकर खाक में मिल जाएगा।

[पर्दा गिरता है।]

दृश्य - 2

स्थान – राजपूतों की छावनी। समय-तीसरा पहर।

[राणा राजसिंह और महामाया दोनों बैठे हैं। सामने मुग़लों के झंडे लिये दुर्गादास और अन्य सामन्त खड़े हैं।]

राजसिंह – धन्य हो दुर्गादास! तुमने मुग़लों को मेवाड़ से निकाल बाहर कर दिया।

रानी – धन्य हो दुर्गादास! तुम बेगम को क़ैद कर लाये! आज मैं बदला चुकाऊँगी।

राजसिंह – क्या? दुर्गादास! तुम बादशाह की बेगम को क़ैद कर लाये हो? कौन बेगम?

दुर्गादास – काश्मीरी बेगम गुलनार।

राजसिंह – उन्हें क़ैद कर लाये? उसी घड़ी छोड़ नहीं दिया?

दुर्गादास – राजा साहब! मैं केवल सेनापति था। युद्ध में शत्रु के आदमियों को क़ैद करने मात्र का मुझे अधिकार था। क़ैदियों को छोड़ने का अधिकार राजा को होता है।

राजसिंह – जाओ दुर्गादास! बेगम साहबा को इसी दम छुटकारा देकर इज्जत के साथ बादशाह के पास भेज दो।

रानी – क्या महाराणा!

राजसिंह – स्त्री के साथ हम लोगों का कुछ झगड़ा नहीं है।

रानी – स्त्री के साथ झगड़ा नहीं है? तो फिर मैंने क्यों आकर आपका आश्रय लिया महाराणा? मुझे पकड़ने के लिए क्या यह भारी चढ़ाई नहीं हुई है? मैं यदि इस युद्ध में पकड़ ली जाती, तो बेगम मेरे साथ क्या सलूक करती?

राजसिंह – हम मुगलों की नीति का अनुकरण करने नहीं बैठे हैं।

रानी – नहीं महाराणा, मैं इस बेगम को इस तरह न छोड़ूँगी। मैं बदला चुकाऊँगी।

राजसिंह – बदला? किसका बदला महामाया?

रानी – किसका? यह पूछिये कि उसकी किस-किस हरकत का बदला न लूँगी। इस काश्मीरी बेगम ने ही मेरे पति और पुत्र की हत्या की है। यह काश्मीरी बेगम ही मेरे यों जंगली जानवरों की तरह एक जगह से दूसरी जगह भागने फिरने का कारण है। इसका बदला लूँगी राणा! मैं उसे अपनी मुट्ठी में पाकर न छोड़ूँगी, बदला लूँगी।

राजसिंह – क्या बदला लोगी?

रानी – इस बारे में मैंने अभी कुछ नहीं सोचा है राणा! लेकिन सोचूँगी। सोचकर ठीक करूँगी। उसे तिल-तिल करके जलाना भी यथेष्ट न होगा। उसके शरीर में सुइयाँ चुभाना भी यथेष्ट न होगा। नये प्रकार की यन्त्रणा के लिए यन्त्र का आविष्कार करूँगी। स्त्री के योग्य दंड स्त्री ही सोच सकती है।

राजसिंह – महामाया, तुमको पाप का दंड देने का क्या अधिकार है? जिनका यह अधिकार है वे ही .....

रानी – *[उठकर]* वे? कहाँ हैं वे? वे कहाँ हैं? वे हाथ समेट बैठे हैं। आकाश का वज्र सदा पापी के सिर पर ही नहीं गिरता महाराज! पुण्यात्मा के सिर पर भी गिरता है। भूकंप से पापी का ही घर-बार नहीं नष्ट होता, बेचारे निरीह लोगों के झोंपड़े भी मिट्टी में मिल जाते हैं। प्रबल बहिया में क्षुद्र घास-फूस ही डूबते हैं, बड़े-बड़े पेड वैसे ही सिर ऊँचा किये खड़े रहते हैं। ईश्वर का नियम धर्म-अधर्म का विचार नहीं करता, जहाँ जिसे दुर्बल, जीर्ण, पुराना पाता है उसीकी गर्दन पहले दबाता है।

राजसिंह – *[शान्त भाव से]* महामाया! जोश में आकर ईश्वर का विचार करने के लिए तैयार न होओ! निश्चय करो, ईश्वर के नियम से अन्त को अधर्म का अवश्य पतन होगा।

रानी – कब होगा? मैंने तो आज तक नहीं देखा राणा! मैंने तो सदा यही देखा कि सरलता सदा से चालाकी के पैरों पड़कर भीख माँगती आती है, चालाकी ने एक बार उसकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। सत्य सदा से झूठ की गुलामी करता है-अपने मस्तक को ऊँचा नहीं कर सकता। मैं सदा से न्याय की जगह पर अन्याय की विजय पताका फहराती हुई देख रही हूँ। मैं सदा से धर्म के टूटे मंदिर में अधर्म की विजयध्वनि सुनती आ रही हूँ। पुण्य के हरे-भरे राज्य के ऊपर से भयानक पाप की रक्तरंजित बहिया लहराती देख रही हूँ। घूस, अत्याचार, झूठ, विश्वासघात आदि से पृथ्वी परिपूर्ण हो रही है। तब भी तुम कहते हो अन्त में धर्म की जय होगी। कब होगी? बतलाओ कब होगी?

राजसिंह – शान्त होओ महामाया! अपने को सँभालो, धैर्य धारण करो!

रानी – धैर्य! राणा, यदि तुम स्त्री होते और तुम्हारा पति परदेश में विश्वासघातक के हाथों विष देकर मारा जाता, यदि बेदर्दी के साथ तुम्हारे सरल उदार पुत्र की हत्या की जाती, यदि मेरी तरह नन्हे से निस्सहाय निरीह बच्चे को लेकर एक देश से दूसरे देश में आकर भिक्षुक की तरह द्वार-द्वार मारे-मारे फिरना पड़ता, तो आप समझते......मैं उस पापिन को यों न छोड़ूँगी!

राजसिंह – दुर्गादास! जीते जी मैं अबला के ऊपर अत्याचार होते न देख सकूँगा। जाओ, तुम सम्मान के साथ बेगम को बादशाह के पास पहुँचा दो।

दुर्गादास – क्षमा कीजिये महारानी! इस युद्ध में हम सब राणा साहब के अनुचर हैं। बेगम आज मेवाड़ के राणा के यहाँ क़ैद हैं। मारवाड़ की रानी के यहाँ नहीं। महारानी! अपने को नहीं भूलिये। आप ही की रक्षा के लिए राणा ने यह युद्ध किया है। राणा आपके हितचिन्तक हैं। उनकी आज्ञा मानना आपका भी धर्म है।

रानी – *[कुछ देर चुप रहकर]* तुम सच कहते हो दुर्गादास! *[फिर राणा के सामने घुटने टेककर]* राणा! क्षमा कीजिये। हृदय के शोक के वेग से अधीर होकर मैं पागल सी हो गयी-क्षमा कीजिये। किन्तु यदि आप इस तीव्र वेदना, इस दारुण ज्वाला, जी की इस गहरी जलन को जान सकते..... मैं पागल हो रही हूँ, क्षमा कीजिये।

राजसिंह – मैं पहले ही क्षमा कर चुका हूँ, महामाया! मैं चाहता हूँ कि जो क्षमा तुमने मुझसे माँगी है, यही क्षमा तुम बेगम को दिखलाओ! मैं न्याय-विचार के लिए बेगम को तुम्हारे पास छोड़ जाता हूँ। उसे क्षमा करो, अपना महत्व दिखलाओ। महामाया! स्नेह, दया भक्ति आदि गुणों से ही स्त्री जाति पूजनीय है। ये गुण ही अबला की शक्ति हैं। और यदि तुम दंड ही देना चाहती हो, तो सोच लो, तुमने अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले को यदि हँसते-हँसते क्षमा कर दिया, तो क्या यह उसके लिए कम दंड है?

रानी — ठीक है। बेगम को ले आओ दुर्गादास!

[दुर्गादास का प्रस्थान]

राजसिंह — अच्छा, तो मैं तुम्हारी दया के ऊपर बेगम को छोड़ जाता हूँ, महामाया!

[राणा का प्रस्थान]

रानी — यह ठीक है। इस न्याय के आसन पर बैठकर मैं उसका विचार करूँगी — इतना ही यथेष्ट है। भारत की सम्राज्ञी, औरंगज़ेब की बेगम, मेरे पति तथा पुत्र की हत्या करनेवाली डाइन आज मेरे सामने अपराधी क़ैदी की दशा में खड़ी होगी, मैं सिंहासन पर बैठे-बैठे उसके मुँह की ओर देखकर उसे प्राणों की भिक्षा दूँगी। यही क्या बुरा है..... वह आ रही है। इस समय भी मुँह पर वही ऐंठन, नज़र में वही घमण्ड, चाल में वही अहंकार है। जगदीश्वर! तुमने पाप को इतना उज्ज्वल और विचित्र बनाकर तैयार किया है!

[बेगम गुलनार के साथ दुर्गादास का प्रवेश]

रानी — सलाम बेगम साहबा!

गुलनार — जसवन्तसिंह की रानी?

रानी — हाँ, जिसे पकड़ने के लिए इतनी तैयारी से यह चढ़ाई हुई थी, मैं वही जसवन्तसिंह की रानी हूँ। तुमने मेरे पति और पुत्र को खा लिया। इससे भी तुम्हारा राक्षसी पेट नहीं भरा। अब मुझे और मेरे छोटे बच्चे को भी खाना चाहती हो! क्या इसी बीच में सब भूल गयी? इतनी भूल करने से काम कैसे चल सकता है, बेगम साहबा?

गुलनार — *[दुर्गादास से]* और तुम ही दुर्गादास हो?

दुर्गादास — हाँ, बेगम साहबा!

गुलनार — मुझे यहाँ क्यों लाये हो?

दुर्गादास — यहाँ आपका न्याय-विचार होगा।

गुलनार — कहाँ? किसके आगे?

रानी — मेरे यहाँ, मेरे आगे। बात ज़रा रूखी और बेढंगी जान पड़ती होगी, क्यों न? क्या कीजिएगा! चक्र घूम गया है बेगम! क्यों? दुर्गादास की ओर इतने ग़ौर से तुम क्यों देख रही हो? सोचती होगी, इस काफ़िर की इतनी मजाल कि तुमको क़ैद कर लावे! यही सोचती हो, क्यों न? अच्छा, अब तुम कौन सी सज़ा पसन्द करती हो?

गुलनार — मैं तुम्हारे यहाँ क़ैद हूँ, जो जी चाहे करो।

रानी — जो जी चाहे वही करूँ? बेगम साहबा, मेरे मन की सज़ा तो तुम्हारे लिए बहुत ही कठिन होगी। मेरी जो इच्छा है, वह दंड तुम्हारे लिए असह्य होगा। तुम उसे सह न सकोगी। वह बड़ी ही कड़ी सज़ा है। नरक की ज्वाला उसके आगे वसन्त-वायु के समान ठंडी है। सैकड़ों बिच्छुओं के काटने की जलन भी उसके आगे झरने के पानी के समान शीतल है। मेरा जो जी चाहे! मेरा क्या जी चाहता है, जानती हो बेगम? खैर, जाने दो। तुम मुझे यदि पकड़ मँगवाती, तो क्या करती, बेगम साहबा?

गुलनार — क्या करती? तुमको अपने पैरों का धोवन पिलाती। उसके बाद मरवा डालती।

रानी — अभी तक तेज़ नहीं गया! विष का दाँत उखड़ गया, परन्तु फुफकार कम नहीं हुई। बेगम साहबा, खेद है, तुम्हारी आशा पूरी नहीं हुई। आज तुम्हारे आगे मुझे इस तरह खड़ा होना चाहिए था, क्यों न? पर क्या किया जाए, तुमको ही मेरे आगे इस तरह खड़ा होना पड़ा। देखो, गुलनार! सुनो बादशाह की बेगम! आज तुम मेरी मुट्ठी में हो। चाहूँ तो मैं तुमको पैर का धोवन भी पिला सकती हूँ, तुम्हारी हत्या भी कर सकती हूँ। किन्तु मैं वह कुछ न करूँगी। मैं तुम्हें छोड़ देती हूँ। सेनापति! इनको बादशाह के पास पहुँचा आओ। *[गुलनार से]* खड़ी हुई हो! विस्मय हुआ? राजपूतों का यही बदला है।

[परदा गिरता है।]

❋ ❋ ❋ ❋

शब्दार्थ :–

गढ़ - किला; रक्त-रंजित - रक्त में डूबा हुआ; जज़िया - एक प्रकार का कर, मुस्लिम राज्य में रहने वाले गैर मुस्लिम लोगों से वसूल किया जाता है; अबला - निरीह स्त्री; विश्वासघात - धोखा; हितचिंतक - भला चाहने वाला; अत्याचार - हिंसा।

अभ्यास

I. प्रश्नों का उत्तर एक या दो वाक्यों में दीजिए :–

1. **रानी महामाया कौन है?**

   रानी महामाया मारवाड़ के स्वर्गीय राणा जसवंतसिंह की पत्नी है।

2. **गुलनार कौन है?**

   गुलनार औरंगज़ेब की बेगम (पत्नी) है।

3. **महामाया अपने बेटे की रक्षा के लिए किसके पास जाती है?**

   महामाया अपने बेटे की रक्षा के लिए मेवाड़ के राणा राजसिंह के पास जाती है।

4. कासिम उल्ला कौन है?

कासिम उल्ला, दुर्गादास का पुराना मित्र है। उसने अपनी जान की परवाह न करके राजकुंवर की रक्षा की है।

5. राजसिंह औरंगजेब की बेगम के साथ कौन सा व्यवहार करना चाहते हैं?

राजसिंह औरंगजब की बेगम को तुरंत छुटकारा देकर इज्ज़त के साथ बादशाह के पास भेजना चाहते हैं।

6. महामाया बेगम को क्या दंड देती है?

महामाया बेगम को कुछ नहीं करती, उसे क्षमा करके भेज देती है। यही राजपूतों का बदला है।

II. पात्र का चरित्र-चित्रण दीजिए :–

1. राजसिंह

राजसिंह मेवाड़ के राणा है। उनमें एक शासक से अपेक्षित सभी गुण विद्यमान है। अनाथ लोगों का आश्रय देना, सबका समान मानना, दूसरों की स्त्री के साथ बाइज्ज़त (इज्ज़त के साथ) पेश आना आदि सभी उत्तम गुण उनमें हैं। मारवाड़ के स्वर्गीय राणा जसवंतसिंह की पत्नी महामाया, अपने बेटे की रक्षा करने की प्रार्थना करती हुई राजसिंह के पास आती है। राजसिंह तुरंत इसे स्वीकार करते हैं। जसवंतसिंह औरंगज़ेब के विरोधी है, और उनके बेटे को आश्रय देना आफत को मोल लेने के बराबर है; फिर भी राजसिंह निडर होकर जसवंतसिंह के पुत्र का आश्रय देते हैं। राजसिंह सभी धर्म के लोगों के साथ आदरपूर्ण व्यवहार करते हैं। कासिम एक मुसलमान है। फिर भी उसको अपना समझकर उसके साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करते हैं। दुर्गादास मुगलों को मेवाड़ से निकालकर, औरंगज़ेब की बेगम गुलनार को कैद करके लाता है, तो राजसिंह गुलनार को मुक्त करके बादशाह के पास भेज देने के लिए कहते हैं। लेकिन रानी महामाया गुलनार को दंड देना चाहती है। तब रानी की संवेदना को समझकर गुलनार को दंड देने का उत्तरदायित्व उनको दे देते हैं। इस तरह राजसिंह एक उत्कृष्ट मानव एवं सक्षम राणा के रूप में 'राजपूतनी का बदला' शीर्षक नाटक में चित्रित हुआ है।

2. रानी महामाया

रानी महामाया मारवाड़ के स्वर्गीय राणा जसवंतसिंह की पत्नी है। उसके पति एवं बेटी को औरंगज़ेब ने मार दिया। आखिर अपने बेटे की रक्षा के लिए वह भटकती है। वह मेवाड़ के राणा के पास शरण मांगकर आती है। मेवाड़ के राणा उनको शरण देते हैं। रानी के मन में औरंगज़ेब का बदला लेने की आग धधक रही है। उसका पूरा जीवन कष्ट में ही गुज़रा। लेकिन वह आपत्तियों से नहीं डरती। वह कहती है, 'भूकंप में मेरा जन्म हुआ है, तूफान में मेरा घर है, प्रलय के बादलों में मेरी सेज है।' तथापि उसमें नारी सुलभ दया, करुणा और क्षमा भी है। जब दुर्गादास औरंगज़ेब की बेगम को कैद करके ले आता है तो, रानी उसे कठोर दंड देना चाहती है। लेकिन राजसिंह उनको समझाता है। आखिर बेगम गुलनार को क्षमा कर देती है। उसे मुक्त करके छोड़ देती है।

III. एकांकी का सारांश लिखिए :–

द्विजेन्द्र लाल राय द्वारा रचित एकांकी 'राजपूतनी का बदला' के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि राजपूत कभी भी किसी को धोखा नहीं देते। यह एकांकी एक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। मारवाड़ के राणा जसवंतसिंह को

बादशाह औरंगजेब धोखे से मार डालता है। वह उनके पूरे खानदान का नामोनिशान मिटाना चाहता है। उनकी रानी महामाया, उनकी बेटी और नन्हे दूध पीता पुत्र को भी मारने की साजिश (चालाकी) करता है। लेकिन स्वामी भक्त दुर्गादास अपनी सूझ-बूझ से महारानी और उनकी संतान को वहाँ से एक वफादार नौकर कासिम के साथ दिल्ली से बाहर भेजने में कामयाब होता है। मेवाड़ के राणा राजसिंह की शरण में रानी महामाया जाती है। रास्ते में उसकी पुत्री राजकुमारी की मृत्यु हो जाती है। वह अपने दूध पीते बालक को लेकर राणा से शरण देने की याचना करती है तो राणा उन्हें सांत्वना देते हैं। और आश्वासन देते हैं कि वे अपना प्राण देकर बच्चे की रक्षा करेंगे।

महामाया औरंगजेब की बेगम से बदला लेना चाहती है। वह आक्रोश भरे स्वर में कहती है कि बादशाहत को जड़ से उखाड़े बिना उसके कलेजे में ठंडक नहीं पड़ेगी। तब राणा उसे समझाने की कोशिश करते हैं कि ऐसा करने के लिए तो रक्त की नदियाँ बहानी पड़ेंगी। हजारों लोगों की हत्या होगी। देश की प्रजा को कष्ट होगा। लेकिन रानी यह प्रश्न करती है कि क्या दूसरी जाति के राज्य की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है, तो राणा समझाते है कि केवल मार-काट करना ही क्षत्रियों का धर्म नहीं है। यदि आत्मरक्षा या अपनों की रक्षा के लिए मार-काट करें तो कोई पाप नहीं है, लेकिन किसी और उद्देश्य से करना हत्या कहलाता है। रानी महामाया कहती है कि बदला लेने के लिए ही वह अभी तक जिंदा है।

दुर्गादास मुगलों को मेवाड़ से निकालकर, औरंगज़ेब की बेगम गुलनार को कैद करके लाता है, तो राजसिंह गुलनार को मुक्त करके बादशाह के पास भेज देने के लिए कहते हैं। लेकिन रानी महामाया गुलनार को दंड देना चाहती है। तब रानी की संवेदना को समझकर गुलनार को दंड देने का उत्तरदायित्व उनको ही दे देते हैं।

गुलनार से जब महामाया यह पूछती है कि यदि मैं तुम्हारी जगह होती और तुम मेरी जगह होती तो तुम किस तरह का व्यवहार करती? गुलनार उत्तर देती है कि वह अपने पैरों का धोवन पिलाती। लेकिन महामाया ऐसा कुछ नहीं करती। वह गुलनार को छोड़ देती है।

यही राजपूतों का बदला है। राजपूतनी महामाया ने अपनी शत्रु गुलनार को भी क्षमा कर दिया। गुलनार जब तक जिंदा होगी तब तक इसे भूल नहीं पाएगी। यही एक राजपूतनी का बदला है।

IV. टिप्पणी लिखिए :-

1. गुलनार

गुलनार औरंगज़ेब की बेगम है। घमंडी है। जब वह कैद होकर मेवाड़ में लायी जाती है, तब रानी महामाया के सम्मुख उपस्थित की जाती है। महामाया पूछती है कि अगर मैं तुम्हारी जगह रहूँगी तो तुम मुझे क्या दंड दोगी? गुलनार कहती है कि वह रानी को अपने पाँव का धोवन पिलाती और उसके बाद मरवा डालती। इससे गुलनार के कठोर स्वभाव का परिचय मिलता है।

2. दुर्गादास

दुर्गादास मारवाड़ के सेनापति है। अत्यंत योग्य एवं बहादुर है। अपने देश के लिए सब कुछ समर्पित करने सदा तैयार रहता है। वह मुगलों को मेवाड़ से निकालकर औरंगज़ेब की बेगम को कैद करके ले आता है। महान वीर होने पर भी सदा अपने राजा की आज्ञा का अनुपालन करता है। कहता है, 'मैं केवल सेनापति हूँ। युद्ध में शत्रु के

आदमियों को कैद करने मात्र का मुझे अधिकार है।'

II. निम्नलिखित वाक्यांशों का संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए :-

1. **महाराणा, मेरे जात को बुरा न कहें। हमारी जात खराब नहीं है। हम सबकुछ हो सकते हैं, पर नमक हराम नहीं।**

   प्रसंगः यह वाक्य 'राजपूतानी का बदला' शीर्षक नाटक से उद्धृत है। इस नाटक का लेखक द्विजेन्द्रलाल राय है।

   संदर्भ : यह वाक्य दुर्गादास का मित्र कासिम राजसिंह से कहता है।

   व्याख्याः राजसिंह कासिम के धर्म का उल्लेख करते हैं और उसे औरंगज़ेब के साथ तुलना करते हैं; तो कासिम कहता है कि उनसे सबकुछ हो सकता है, लेकिन, वह कृतघ्न नहीं हो सकते, नमक हराम नहीं बन सकता।

2. **मैं अब आपत्ति को खोजती हूँ। आपत्ति की गोद में मैं रीली हूँ, भूकंप में मेरा जन्म हुआ, तूफान में मेरा घर है, प्रलय के बादलों में मेरी सेज है। विपत्ति, विपत्ति को तो मैंने अपनी सखी बना ली है।**

   प्रसंगः यह वाक्य 'राजपूतानी का बदला' शीर्षक नाटक से उद्धृत है। इस नाटक का लेखक द्विजेन्द्रलाल राय है।

   संदर्भ : मारवाड़ के स्वर्गीय राणा जसवंतसिंह की पत्नी महामाया कहती है।

   व्याख्याः महामाया अपने बच्चे को राजसिंह के यहाँ छोड़कर अपने पति के राज्य वापस जाना चाहती है। राणा राजसिंह कहते हैं कि वहाँ उन्हें अनेक परेशानियाँ होंगी। तो महामाया इस प्रकार कहती है।

3. **सेनापति! इनको बादशाह के पास पहुँचा आओ। खड़ी हुई हो। विस्मय हुआ? राजपूतों का यही बदला है।**

   प्रसंगः यह वाक्य 'राजपूतानी का बदला' शीर्षक नाटक से उद्धृत है। इस नाटक का लेखक द्विजेन्द्रलाल राय है।

   संदर्भ : मारवाड़ के स्वर्गीय राणा जसवंतसिंह की पत्नी महामाया औरंगज़ेब की बेगम गुलनार से कहती है।

   व्याख्याः पहले महामाया गुलनार को अत्यंत कठिन दंड देना चाहती है। दंड देने के उत्तरदायित्व को राजसिंह महामाया को सौंप देते हैं। लेकिन महामाया गुलनार को मुक्त कर देती है और कहती है कि यही राजपूतों के दंड देने की प्रथा है।

❁ ❁ ❁ ❁

5. बन्दी

आरिगपुडि रमेश चौधरी

लेखक परिचय :

आरिगपुडि रमेश चौधरी दक्षिण भारत के हिन्दी लेखकों में अग्रगण्य माने जाते हैं। वे तेलुगु, हिन्दी, तमिल, अंग्रेजी भाषाओं के प्रकांड पंडित हैं। उन्होंने 'दक्षिण भारत', 'चंदामामा', 'हिन्दु' आदि पत्रिकाओं का संपादन भी किया है। उनकी एकांकी 'बंदी' अपने दिल से प्रेम की उपासना करनेवाले बादशाह शाहजहाँ की व्यथा प्रकट करती है। पात्र इसमें यों हैं,

पहला दृश्य - सारांश :

पात्र

शाहजहाँ - नसीम जहाँनारा - सिपाही, मजदूर

बादशाह शाहजहाँ का चौथा पुत्र औरंगजेब है। औरंगजेब अपने बड़े भाइयों को मारकर, भगाकर और अपने पिता को बंदी बनाकर खुद शासक बनता है। इस एकांकी के प्रथम दृश्य में बंदी शाहजहाँ और उनकी बेटी जहाँनारा के बीच का संवाद प्रस्तुत किया गया है। उनके संवाद से हमें पता चलता है कि औरंगजेब अपने भाइयों को चालाकी से भगाकर स्वयं सम्राट बन गया। शाहजहाँ के बंदीगृह के सामने ताजमहल था। उसे शाहजहाँ की नज़र से छिपाने के उद्देश्य से दीवार खड़ी करने की व्यवस्था हो रही थी। जब जहाँनारा इस संबंध में शाहजहाँ से कहती है तो अत्यंत दुखी होता है। इसके आगे क्या हुआ? आइए दूसरे दृश्य में देखेंगे।

दृश्य - 2

(कुछ दिनों बाद। एक सिरे पर दीवार ऊँची कर दी गयी है भद्दी, कच्ची दीवार। पर दूसरे सिरे से तो ताजमहल अब भी दीखता है। जमुना का एक ही किनारा नजर आता है; दूसरा किनारा दीवार की ओट में हैं। ताजमहल की ओर मुख किये शाहजहाँ संगमरमर बुर्ज पर बैठे हुए हैं। शाम का वक्त है। चेहरे पर गमी है। बगल हुक्का है। पासवाले खम्भे से सटकर जहाँनारा बैठी हुई है। सिपाही पहरे पर हैं। नीचे दीवार का बनाना भी पहिले की तरह जारी है। मज़दूर काम पर लगे हुए हैं।)

शाहजहाँ – *(हुक्का पीते हैं)* याद नहीं बेटी, तब तुम्हारी उम्र कितनी थी। तुम्हें भी शायद याद नहीं होगी। बहुत वक्त गुजर गया है। तुम्हारी माँ की नौकरानी से पुर्तगालियों ने सूबे बंगाल में कुछ छेड-छाड कर दी थी। मलिका को मालूम हुआ और मुझसे शिकायत की गयी। मैंने पुर्तगलियों की सारी की सारी बस्ती मिट्टी में

मिलवा दी। नामोंनिशान न रहा। अब ये लोग उसीके मकबरे की दीवारें बना-बनाकर मेरी आँखों के सामने से हटा देना चाहते हैं और मैं बेबस हूँ। मेरे हुकुम के बावजूद दीवार बनती जाती है। मैं अब एक छोटी-मोटी दीवार को नहीं तुडवा सकता, इतना नेस्तनाबूद कर दिया गया हूँ। चाहता हूँ, तोपें दगवा दूँ। मगर ..... मगर कोई ख़बर मिली दारा की?

जहाँनारा — उसकी कोशिश जारी है। देखें, क्या होता है?

शाहजहाँ — *(ताजमहल की ओर देखकर)* जाने दो। वह मजार भी क्या जिसको देखकर आदमी दो-चार आँसू न बहा सके? तब मैं सूबे दक्खन में दुश्मनों से लोहा ले रहा था, तुम्हारी माँ बीमार पडी थी। मैं ठीक तरह देख भी न पाया था कि मेरी रोशनी हमेशा के लिए गुल हो गयी। अंधेरा हो गया और अंधेरे में सिर्फ रोशनी की याद रह गयी। मेरी बहारे-उम्र उसके साथ खत्म हो गयी। उसके भाई की बदौलत मुझे तख्त मिला और उसकी वजह से मैं इनसान बना, इनसानों का बादशाह बना। वह जाते-जाते तुम बच्चों को अपनी शक्लों-सूरत देती गयी, याद छोडती गयी - जो पीढ़ी दर पीढी कुदरतन कम होती जाएगी। मगर उनकी याद मिट जानेवाली याद नहीं है। मोहब्बत की रोशनी बिना बत्ती के भी होती है और मर मिटनेवाले परवाने मरते ही रहते हैं। मैंने उसकी याद को एक ऐसी शक्ल में ग़ढवा दिया – जो न चन्दा की तरह घटे या बढे, न मौसमों की ही तरह बदले, बारहों महीने, चौबीसों घंटे मेरी आँखों के सामने रहे। जिसका जिस्म महलों में रहा, उसकी रूह ताजमहल में ही रह सकती है। उसकी मोहब्बत से मैंने एक मकबरा बनवाया, ताजमहल बनवाया और एक जवान महबूब की तरह उसे प्यार करने लगा।

जहाँनारा — ताजमहल आपकी आँखों के सामने रहेगा। ये दीवारें उसे ओझल नहीं कर सकतीं। यह भाई की करतूत ही है क्या? बादशाह का हुक्म, कहीं इस गुलाम का हुक्म तो नहीं?

शाहजहाँ — घबराओ मत, दीवार जिस हिसाब से बन रही है, उस हिसाब से हमारी जिंदगी के होते-होते यह पूरी नहीं होगी। घबराओ मत।

जहाँनारा — मगर क्या भाई की आँख बंद है? एक गुलाम के हाथ हमारी जिंदगी सौंपकर वह खुद दिल्ली चला गया है।

शाहजहाँ — करने दो दीवारें ऊँची। तुम्हारी माँ की रूह अगर ताजमहल में है, तो ताजमहल के हर पत्थर का नक्शा मेरे दिल में है। बनाने दो दीवार। देखें कब तक बनाते हैं। दीवारें बनायी जाती हैं, जिन्दों को अलग रखने के लिए - याद और मोहब्बत के सामने दीवार भी कोई अडचन है? अहमक है! *(हुक्का पीने लगते हैं; नजरें ताजमहल पर हैं। आँखें अंगारे हो गयी है।)*

जहाँनारा – हुक्के में तम्बाखू तो है न!

शाहजहाँ – हाँ बेटी।

जहाँनारा – शरबत वगैरह पीजिएगा?

शाहजहाँ – नहीं। *(वे हुक्के की नली लिये ताजमहल की ओर देखते रहते हैं।)*

जहाँनारा – (कुछ फ़िक्र में कि कहीं इसी गमी में शाहजहाँ अपनी सेहत न ख़राब कर लें, उनका ध्यान बदलने के लिए) सितारवाले को आपके हुक्म पर फिर किले में रख लिया गया, यहाँ हाजिर है। नाचनेवाली भी आ गयी है। उन्हें बुलाऊँ।

शाहजहाँ – नहीं। नाच वगैरह नहीं देखेंगे। हम नमाज पढ़ रहे हैं– वह नमाज जो कुरान में नहीं है, मगर दिल में है। *(धडाम से भीषण शब्द होता है। नीचे दीवार के पास भागदौड मच जाती है। महल में भी ख़लबली मच जाती है।)*

शाहजहाँ – *(शब्द सुन चौंककर)* क्या हुआ?

जहाँनारा – *(दीवार की तरफ देखकर)* दीवार टूट गयी है।

शाहजहाँ – क्या कहा? दीवार ढह गयी है? कहा था न हमने कि दीवार ढह जाएगी? कहीं भला, किले की दीवारें इस तरह बनती हैं? यह तुगलक का किला नहीं है, शाहजहाँ का किला है। यहाँ हरेक पत्थर नाप-तौलकर रखा गया है। पत्थर लुढक गये होंगे। *(झटके से उठकर, खम्भे का सहारा ले ख़डे हो जाते हैं और दीवार की तरफ देखने लगते हैं।)* सिपाही क्यों कारीगरों को मार रहे हैं? क्यों बेटी, क्यों मार रहे हैं? हमें बताओ।

जहाँनारा – उनका कहना है कि मज़दूरों ने जान-बूझकर दीवार कच्ची बनायी है, ताकि यह गिर जाए और काम जारी रहे।

शाहजहाँ – यह क्या इलजाम है? क्या ये गारे की दीवारें हैं कि गारा रखा और दीवारें चुन दीं? ये पत्थर ऐसे वैसे नहीं जुडते हैं। बगैर नींव की दीवार ढहेगी नहीं, तो और क्या होगी? वे बेकसूर हैं। सिपाहियों से कहो कि वे मज़दूरों को न मारें। *(आँखों पर हाथ धर गौर से देखने लगते हैं।)* अरे यह क्या? बेटी, देखो तो।

जहाँनारा – किसीकी पत्नी दीवार के नीचे पडकर मर गयी है। उसका पति पास ख़डा रो रहा है, चिल्ला रहा है। बच्चा बाप की टाँगे पकडे जोर-जोर से बिलख रहा है। एक आदमी भी दीवार के नीचे ढेर हो गया।

(शाहजहाँ उनका दर्द-भरा रोना सुनते-सुनते स्तब्ध-से, चिन्तित होकर ख़डे रह जाते हैं। पति रोता जाता है और मजदूर भी जोर से रोना शुरू कर देते हैं। हृदय विदारक दृश्य है। शाहजहाँ एक क्षण गौर से देखते हैं।

अपनी मसनद की ओर लौटने को ही होते हैं कि मजदूर उन्हें देखकर एक साथ चिल्ला उठते हैं, "जहाँपनाह, माफ़ करो!" जहाँपनाह, हम बेकसूर है! शाहजहाँ रुककर देखते हैं, फिर लड़खड़ाते हुए अपनी जगह चले जाते हैं।)

शाहजहाँ — क्यों बेटी, सिपाहियों से कहा कि नहीं, ख्वाहमख्वाह मजदूरों को न मारें?

जहाँनारा — आप बैठिये। सब हो जाएगा। आप आराम कीजिए।

शाहजहाँ — हमें तसल्ली नहीं होगी, जब तक उन्हें मदद नहीं दी जाती। किलेदार के पास लिखकर भेज दो - कहीं बादशाह का हुक्म है कि मजदूरों को उसके सामने मारा-पीटा न जाए।

(जहाँनारा लिखने का अभिनय करती है और शाहजहाँ दूर ताजमहल की ओर देखने लगते हैं। सूरज छिपने को है। अंधेरा बढ़ चला है। चेहरे से ऐसा मालूम होता है कि कोई चीज उनके मन उथल-पुथल कर रही है और वे उसे ज़ाहिर न होने देने की कोशिश कर रहे हैं। थोडी देर बाद)

शाहजहाँ — कितने मरे?

जहाँनारा — चार। पता लगा है, एक की पत्नी और दूसरी का पति, और हट्टे-कट्टे दो जवान मजदूर चल बसे।

शाहजहाँ — लोगों को लडाई में मरते देखा है, पर गरीब बेघरबारों को इस तरह मौत के मुँह में पिसते नहीं देखा। आखिर इस दीवार की जरूरत ही क्या थी? जब इतना सता ही रहा है तो हमारी आँखें निकलवा देता, तो क्या होता? कम से कम इन गरीबों की जान बचती।

जहाँनारा — *(शराब देते हुए)* अभी-अभी खबर आयी है कि भाई की मुखालफत के लिए राजपुताने में कुछ सरदार फौजें इकट्ठी कर रहे हैं।

शाहजहाँ — हम तो .... (नीचे से तुमुल ध्वनि आती है - "जहाँपनाह, जहाँपनाह!" क्या दीवार का दूसरा हिस्सा भी गिर गया है!" या सिपाही अब भी इन गरीबों को मार रहे हैं?

जहाँनारा — *(बुर्ज से बाहर झुककर)* वे लोग मदद चाहते हैं। दो-तीन भूखे-नंगे परिवार है। वे उनके रिश्तेदार है, जो दीवार के नीचे दबकर मर गये थे।

(आवाज आती है - "जहाँपनाह, मदद करो, जहाँपनाह!")

शाहजहाँ – बेटी, इन्हें कुछ रुपया-पैसा दे दो।

जहाँनारा – कहाँ है देने के लिए?

शाहजहाँ – चार-पाँच अशर्फियाँ भी नहीं! (जहाँनारा हिचकिचाती हुई वहीं बैठी रहती है।) क्यों बेटी, हैं कि नहीं? किसी सुराख में तुमने डाल रखे होंगे। देख आओ। बिचारे चिल्ला रहे हैं। बादशाह बन्दीखाने में भी कंगाल नहीं हो सकता। देख आओ!

(जहाँनारा उठती है और पासवाली संगमरमर की कोठरी में चली जाती है। और शाहजहाँ हुक्का गुडगुडाते रहते हैं। थोडी देर बाद जहाँनारा पाँच-दस अशर्फियाँ लाकर नीचे मजदूरों की तरफ फेंक देती है।)

शाहजहाँ – कौन हैं ये लोग बेटी? मामूली मजदूर नहीं लगते। उनको तो यहाँ खरात मांगने की मुमानियत है उनकी इतनी हिम्मत नहीं हो सकती कि बादशाह की हाज़िरी में हाथ पसारे।

जहाँनारा – हाँ, ये मामुली मजदूर नहीं है, ये कभी कारीगर थे – ये उन कारीगरों की औलाद है, जिन्हें ताजमहल बनाने में अपनी जान से हाथ धोना पडा था।

शाहजहाँ – हूँ, उनके बाप-दादों ने ताजमहल बनाया और ये ताजमहल को छिपाने के लिए दीवार बना रहे किसमत का खेल है!

(शाहजहाँ चुप हो, हाथ में शराब का गिलास थामे ताजमहल की तरफ देखते हैं। ताजमहल के गुम्बज के पीछे चाँद निकल रहा है। चांदनी में सफेद ताजमहल चांदी का सा लगता है। शाहजहाँ खिन्न है।)

शाहजहाँ – बेटी, देखा था, वह पति कैसे जोर-जोर से बिलख रहा था? मोहब्बत का दर्द ही ऐसा है, जो दिल को तेजाब की तरह जलाता है। बेचारा छटपटा रहा था।

जहाँनारा – हूँ, पत्नी की मौत सभी को सद्मा पहुँचाती है। गरीब हो या अमीर ....

शाहजहाँ – बादशाह हो या रिआया। तुम ठीक कहती हो बेटी! अगर वह बादशाह होता तो वह भी अपनी पत्नी के लिए मकबरा बनवाता। उसके दिल में भी शायद यह मुराद होती कि वह एक ताजमहल खडा करें और उसे खुद अपने ही हाथों से बनाये। खुदा का दिया हुआ दिल सभी आदमियों में एक सा है, चाहे वह बादशाह हो या मजदूर। क्यों बेटी हम ठीक कहते हैं न?

जहाँनारा – आपका कहना एकदम सही मालूम होता है।

शाहजहाँ – मेरी यही ख्वाहिश रही कि दुनिया में उसपर वैसा ही फख्र हो जैसा कि मुझे है। इसलिए मैंने कई

कारीगरों के हाथ कटवा दिये, कई कारिगरों को मौत के घाट उतरवा दिया, ताकि और कोई ताजमहल न बना सकें। यह बेरहमी का काम था। अब मेरी आँखें खुलीं। मुझे यह नहीं ख्याल आया कि हर आदमी में पत्नी की याद में ताजमहल बनाने की तमन्ना रहती है। अगर मैं अपनी पत्नी की याद में रो-रोकर मर सकता हूँ तो दूसरे की हालत भी मेरी जैसी ही होगी। मैंने कितनों का सुहाग बिगाडा, कितनों को यतीम बनाया, बेघरबार कर दिया, ताकि मेरा ताजमहल अनोखा बना रहे। करो, दीवारे ऊँची में! उस पाक जगह को देखने के काबिल भी नहीं। यहीं मुझे घुट-घुटकर मरने दो, जो मैंने किया उसे भोगने दो। मैं बंदी हूँ। हाँ, मुझे बंदी ही होना चाहिए।

❋ ❋ ❋ ❋

शब्दार्थ :–

बुर्ज - मीनार; गमी - दुख; मलिका - साम्राज्ञी, रानी; नामोनिशान - चिह्न, कोई शेष; बेबस - विवश, लाचार; नेस्तनाबूद - नष्ट; मज़ार - समाधि स्थल, दरगाह; सूबे- दक्खन - दक्षिण के सूबे (प्रांत); गुल - पुष्प; बहारे - उम्र - जवानी; कुदरतन - प्राकृतिक रूप में; परवाना - पतंग; गढ़वा देना - बनाना; जिस्म - शरीर; रूह - आत्मा, भावना; महबूब - प्रेमी; सीकरी - आगरा के पास एक नगर; खुरदरा - जो चिकना न हो, खरखरा; सदमा - दुख; पथरा जाना - पत्थर जैसे हो जाना; अहमक़ - नासमझ; पाक - पवित्र; ढह जाना - नष्ट हो जाना; इल्ज़ाम - दोष देना ,आरोप लगाना; गारा - मिट्टी एवं पानी आदि का मिश्रण जिससे ईंटें जोड़ जोड़कर दीवार खड़ी की जाती है।; बेकसूर - निरपराध; ख्वाहमखाह - बिना किसी कारण, अनावश्यक; तसल्ली - आराम, शांति; ज़ाहिर - प्रकट; मेहरबानी - करुणा; लिहाज - ध्यान, ख़याल, तवज्जोह; मुखालफत - विरोध; हिमायती - समर्थन, तरफदारी करनेवाला; तहखाना - ज़मीन के नीचे स्थापित कमरा; बगावत - विद्रोह; वहम - भ्रम; लियाकत - योग्यता, सामर्थ्य; काबिलियत - क्षमता; काबिले तारीफ - प्रशंसा करने योग्य; बरखिलाफ - विरोध में; सलूक - व्यवहार; तंग नज़री - संकीर्ण बुद्धि; सल्तनत - वंश; ख़ाक - धूल, मिट्टी; सुराख - मिट्टी के बर्तन; कंगाल - गरीब; बंदीखाना - जेल; खरात - दान; मुमानियत - मनाही; मुराद - इच्छा; फख्र - गर्व; बेरहमी - करुणा हीनता, निष्ठुर; सुहाग बिगाधा - अमंगल किया; यतीम - अनाथ; लागत - लज्जा; खुदगरजी - स्वार्थता; बेवालीद - पिता हीन (वालिद - पिता);

अभ्यास

I. प्रश्नों का उत्तर एक या दो वाक्यों में दीजिए :–

1. शाहजहाँ को किसने बंदी बनाया?

शाहजहाँ को उनका पुत्र औरंगज़ेब ने बंदी बनाया।

2. औरंगज़ेब कैसे बादशाह बना?

औरंगज़ेब अपने बड़े भाई दारा को चालाकी से हराकर, पिता को बंदी बनाकर खुद बादशाह बन गया।

3. औरंगज़ेब ने ताजमहल के सामने क्यों दीवार बनाने की आज्ञा दी?

शाहजहाँ की नज़र से ताजमहल को छिपाने के लिए, औरंगज़ेब ने दीवार बनाने की आज्ञा दी।

4. शाहजहाँ के अनुसार, दीवार बनाने का उद्देश्य क्या है?

शाहजहाँ के अनुसार, जिंदा रहनेवालों को अलग-अलग रखने के लिए दीवारें बनायी जाती हैं।

5. जहाँनारा कौन है?

शाहजहाँ और मुमताज की पहली संतान जहाँनारा है।

6. शाहजहाँ ने कारीगरों के हाथ क्यों कटवायें?

शाहजहाँ ने सोचा कि दुनिया में ताजमहल जैसा दूसरा महल बनाना नहीं चाहिए। इसलिए उन्होंने कारीगरों के हाथ कटवाए।

II. चरित्र-चित्रण दीजिए :–

1. शाहजहाँ

बंदी एक ऐतिहासिक एकांकी है। ताजमहल के निर्माता और प्रेम के लिए आदर्श मानेजानेवाले शाहजहाँ के जीवन से संबन्धित नाटक है 'बंदी'। इसके लेखक 'श्री आरिगपूडि' रमेश चौधरी है।

इस नाटक में दो प्रमुख पात्र हैं। शाहजहाँ और जहाँनारा। औरंगज़ेब, दारा, मुमताज़ आदि के नाम का उल्लेख होता है; शाहजहाँ इनके बारे में बहुत बातें सोचता है और याद करता है।

शाहजहाँ का असली नाम है मिर्ज़ा शिहाब उददीन मुहम्मद कुररम। वह अपने को दुनिया का सबसे बड़ा राजा मानता है और इसलिए अपना नाम शाहजहाँ बना लेता है।

शाहजहाँ का प्रेम: उसकी पत्नी का नाम मुमताज़ है। शाहजहाँ अपनी पत्नी को बहुत चाहता है। जब वह मर जाती है तब अधिक दुखित हो जाता है। कहता है, अंधेरा हो गया और अंधेरे में सिर्फ रोशनी की याद रह गई। मेरे बहारे-उम्र (जवानी) उसके साथ ख़त्म हो गई। शाहजहाँ ने अपनी बेगम की याद में ताजमहाल बनवाया।

शाहजहाँ की खुदगरजी: (स्वार्थ) जब शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया, तब उसने सोचा कि उस तरह का महल दूसरा नहीं होना चाहिए। इसलिए उसने सभी कारीगर के हाथ कटवा दिये और अनेक कारीगर को मारकर उनके परिवारवालों को अनाथ बना दिया। लेकिन इन सबके बारे में बाद में सोचकर पछताता है।

बंदी शाहजहाँ: उसका पुत्र पिता को बंदी बनाकर स्वयं बादशाह बन जाता है। बंदी के रूप में शाहजहाँ जीवन की सच्चाई को समझता है। उसे अपनी पुरानी बातें याद आती हैं।

शाहजहाँ के मन में करुणा: शाहजहाँ की नज़र से ताजमहल को छिपाने के लिए औरंगज़ेब दीवार खड़ा करने की व्यवस्था करता है। अनेक मजदूर और कारीगर इस काम में लगे रहे थे। लेकिन उनको ठीक से खाना आदि नहीं मिल रहा था। उनकी हालत देखकर शाहजहाँ अपनी बेटी जहाँनारा से उनके लिए कुछ अशर्फीयाँन देने के लिए कहता है।

शाहजहाँ पहले खुदगरजी था; लेकिन बाद में वह अपनी गलतियों को समझ लेता है और पछताता है। यह महसूस करने लगता है कि प्यार तो सबके लिए समान है, राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब सबके लिए अपना प्यार और मुहब्बत पवित्र और पाक है।

2. जहाँनारा

बंदी एक ऐतिहासिक एकांकी है। ताजमहल के निर्माता और प्रेम के लिए आदर्श मानेजानेवाले शाहजहाँ के जीवन से संबन्धित नाटक है 'बंदी'। इसके लेखक 'श्री आरिगपूडि' रमेश चौधरी है।

इस नाटक में दो प्रमुख पात्र हैं। शाहजहाँ और जहाँनारा। औरंगज़ेब, दारा, मुमताज़ आदि के नाम का उल्लेख होता है; शाहजहाँ इनके बारे में बहुत बातें सोचता है और याद करता है।

जहाँनारा', इस शब्द का अर्थ है संसार को संवारनेवाली। अपने नाम के अनुरूप जहाँनारा में सभी उत्कृष्ट गुण विद्यमान थे। जहाँनारा शाहजहाँ और मुमताज़ की सबसे बड़ी बेटी है। वह अपने पिता के साथ जेलखाने में रहती है। अपने पिता को शांत करने के लिए सदा प्रयास करती रहती है। उसकी बातों से पता चलता है कि वह अत्यंत विवेकी नारी है। शाहजहाँ उसके बारे में कहता है कि 'बेटी, तुम मान की कमी को थोड़ी बहुत पूरी कर रही हो'। जहाँनारा को भाई औरंगज़ेब के करतूत से बहुत बुरा लगता है। वह अपने बड़े भाई दारा और अन्य भाइयों के बारे में सोचकर बहुत दुखित होती है। इस नाटक में एकांकीकार ने जहाँनारा को अत्यंत संवेदन शील नारी के रूप में प्रस्तुत किया है।

III. एकांकी का सारांश लिखिए :–

'बंदी' एकांकी ऐतिहासिक एकांकी है। ताजमहल के निर्माता और प्रेम के लिए एक आदर्श रूप में मानेजानेवाले शाहजहाँ के जीवन से संबन्धित एकांकी है 'बंदी'। शाहजहाँ अपनी पत्नी मुमताज़ को बहुत प्यार करता था। मुमताज़ सदा उसके साथ रहती थी, उसके हर काम में साथ देती थी। जब वह मर जाती है तो उसकी याद में शाहजहाँ 'ताजमहल' का निर्माण करता है। ताजमहल जमुना नदी के किनारे स्थित वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है।

शाहजहाँ का बेटा औरंगज़ेब 'गद्दार' है। वह अपने भाइयों को भगाकर, अपने पिता को बंदी बनाकर स्वयं शासक बन जाता है। शाहजहाँ को और अधिक दुख देने के उद्देश्य से, उसकी नज़र से ताजमहल को छिपा देने की व्यवस्था करता है। शाहजहाँ के कैदखाने के सामने ही ताजमहल था। शाहजहाँ सदा ताजमहल का दर्शन करके गम को भूलने का प्रयास करता था। लेकिन औरंगजेब की आज्ञा से बंदीखाने और ताजमहल के बीच में दीवार बनाई जा रही थी। पहले शाहजहाँ सोचता है कि, कारीगर एवं मजदूरों को नौकरी देने के उद्देश्य से ही दीवार बनाई जा रही है। लेकिन उनकी बेटी 'जहाँनारा' के समझाने से वह समझ लेता है कि उनको अधिक दुख देने के लिए यह काम हो रहा है। यही नहीं, सिपाही लोग भी शाहजहाँ के साथ निरादरपूर्ण व्यवहार करते हैं। इससे शाहजहाँ को अधिक दुख होता है। शाहजहाँ को अपने पहला पुत्र दारा की याद आती है। दारा नेकदिल इंसान है। लेकिन दुर्भाग्य से उसे जंगलों में भटकने की नौबत हो जाती है। जहाँनारा भी अपने भाई दारा की बहुत याद करती है। शाहजहाँ अपनी पत्नी की मृत्यु की घटना को याद करके अपनी बेटी को बताता है। जहाँनारा अपने पिता को सात्वना देती है। शाहजहाँ सोचता है कि दीवार मात्र शरीर को अलग कर सकता है, जो जिंदा रहते हैं उनको अलग करने के लिए दीवार बना सकते हैं। लेकिन मन में जो याद हैं उन यादों को दीवार कैसे अलग कर सकती है।

दीवार की नींव ठीक नहीं थी और उसे बनाने के लिए प्रयुक्त सामग्रियाँ भी अच्छी नहीं थीं। इसलिए दीवार गिर जाती है। दीवार के गिरने से अनेक लोग नीचे दबकर मर जाते हैं। मरनेवालों में एक कारीगर की पत्नी भी थी। कारीगर

अपनी पत्नी की मृत्यु से अत्यंत दुखी होकर बहुत रोता है। तब शाहजहाँ को समझ में आता है कि मानव संवेदनाएँ सबके लिए बराबर है।

शाहजहाँ ने जब ताजमहल बनवाया तब उसने सोचा कि दुनिया में और कोई ताजमहल की तरह कोई महल नहीं बनाएँ। इस स्वार्थ भावना से उसने अनेक कारीगरों के हाथ को कटवा दिया और अनेक लोगों को मार भी दिया। अब जब शाहजहाँ जेल में कैदी बनकर रहता है, तब अपने किए कार्य पर उन्हें पछतावा आता है। अपनी बुरी करामातों के बारे में सोचकर पछताता है, दुखी होता है।

इस तरह नाटक का अंत होता है।

IV. टिप्पणी लिखिए :-

1. औरंगज़ेब

'बंदी' शीर्षक नाटक में औरंगज़ेब का पात्र प्रमुख है। लेकिन इस नाटक में औरंगज़ेब प्रत्यक्ष नहीं बोलते। शाहजहाँ और जहाँनारा के मुँह द्वारा उसका परिचय हमें मिलता है। औरंगज़ेब शाहजहाँ का चौथा पुत्र है। उसने अपने भाइयों को भगाकर, पिता को कैदी बनाकर खुद बादशाह बनता है। वह बेरहम, गद्दार, बदतमीज़ एवं खुदगर्ज़ है। पिता की नजरों से ताजमहल को छिपाने के लिए दीवार खड़ा करता है।

2. मुमताज

शाहजहाँ की बीबी का नाम मुमताज़ है। 'बंदी' नाटक में शाहजहाँ के मुँह से उसके बारे में जानने का अवसर मिलता है। शाहजहाँ मुमताज को बहुत चाहता था। मुमताज जब तक ज़िन्दा थी, तब तक पति के हर काम में हाथ बाँटती थी। उसकी मृत्यु के बाद, उसकी क़ब्र पर, उसकी याद में शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया।

V. निम्नलिखित वाक्यांशों का संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए :-

1. अंधेरा हो गया और अंधेरे में सिर्फ रोशनी की याद रह गई। मेरे बहारे- उम्र उसके साथ ख़त्म हो गई।

प्रसंग : ये पंक्तियाँ 'बंदी' शीर्षक नाटक से दी गई हैं। इसके लेखक श्री 'आरिगपूडि' रमेश चौधरी है।

संदर्भ : मुगल बादशाह शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताज़ की याद में ताजमहाल बनवाया। उसका पुत्र औरंगजेब ने चालाकी से अपने भाइयों को भगाकर अपने पिता को बंदी बनाकर शासन का डोर थाम लिया। शाहजहाँ अपने कमरे से ताजमहल को देखते हुए अपने मन को सांत्वना दे रहा था। लेकिन औरंगज़ेब शाहजहाँ के कैदखाने और ताजमहल के बीच में दीवार खड़ा कर रहा था। इससे दुखी होकर शाहजहाँ ने इस प्रकार कहा।

व्याख्या : कैदखाने में शाहजहाँ अपनी पुरानी यादों को ताजा कर रहा था। शाहजहाँ को दक्खिन के सूबे में दुश्मनों के खिलाफ जो लड़ाई हुई उसकी याद आती है। उस समय शाहजहाँ की बेगम की मृत्यु हो गई। शाहजहाँ के लिए मुमताज़ बेगम परेशान' थी। जब वह मरी तो उसकी रोशनी भी चली गई। तो उसको याद करते हुए शाहजहाँ कहता है कि मेरे जीवन में अब अंधेरा हो गया। मेरी जवानी भी उसके साथ समाप्त हो गई।

2. दीवारें बनाई जाती हैं, ज़िंदों को अलग रखने के लिए – याद और मोहब्बत के सामने दीवार भी कोई अड़चन है? अहमक़ है!!

प्रसंग : ये पंक्तियाँ 'बंदी' शीर्षक नाटक से दी गई हैं। इसके लेखक 'आरिगपूडि' रमेश चौधरी है।

संदर्भ : मुगल बादशाह शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताज़ की याद में ताजमहल बनवाया। उसका पुत्र 'औरंगजेब' ने चालाकी से अपने भाइयों को भगाकर अपने वालिद को बंदी बनाकर शासन का डोर थाम लिया। शाहजहाँ अपने कमरे से ताजमहल को देखते हुए अपने मन को सांत्वना दे रहा था। लेकिन औरंगज़ेब शाहजहाँ के कैदखाने और ताजमहल के बीच में दीवार खड़ा कर रहा था। इससे दुखी होकर शाहजहाँ ने इस प्रकार कहा।

व्याख्या : शाहजहां सदा अपनी बीबी की याद में रहता है। उसकी नज़र से ताजमहल को हटाने के लिए औरंगज़ेब दीवार बनाता है। लेकिन शाहजहाँ के विचार में दीवार मात्र शरीर को अलग कर सकती है, जो जिंदा रहते हैं उनको अलग करने के लिए दीवार बना सकते हैं। लेकिन मन में जो याद हैं उन यादों को दीवार कैसे अलग कर सकती हैं।

3. खुदा का दिया हुआ दिल सभी आदमियों में एक सा है, चाहे वह बादशाह हो या मजदूर।

प्रसंग : ये पंक्तियाँ 'बंदी' शीर्षक नाटक से दी गई हैं। इसके लेखक 'आरिगपूडि' रमेश चौधरी है।

संदर्भ : मुगल बादशाह शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताज़ की याद में ताजमहाल बनवाया। उसका पुत्र औरंगजेब ने चालाकी से अपने भाइयों को भगाकर अपने वालिद को बंदी बनाकर शासन का डोर थाम लिया। शाहजहाँ अपने कमरे से ताजमहल को देखते हुए अपने मन को सांत्वना दे रहा था। लेकिन औरंगज़ेब शाहजहाँ के कैदखाने और ताजमहल के बीच में दीवार खड़ा कर रहा था। लेकिन दीवार कच्चे होने के कारण गिर जाती है। दीवार के गिरने से अनेक लोग उसमें दबकर मर जाते हैं। मरनेवालों में एक कारीगर की पत्नी भी थी। पत्नी की मृत्यु से दुखी होकर कारीगर बहुत रोता है। तब शाहजहाँ इस प्रकार कहता है।

व्याख्या : मानव संवेदना तो सबके लिए समान है। राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब सबके मन होते हैं। उसमें सुख और दुख की अनुभूति समान होती हैं। जिस तरह उसकी बेगम की मृत्यु ने उसको दुखी बना दिया उसी प्रकार कारीगर की पत्नी की मृत्यु ने कारीगर को दुखी बना दिया। अतः शाहजहाँ इस प्रकार कहता है। शाहजहाँ जब सम्राट था, तब अपने प्रेम को ही उत्कृष्ट माना। लेकिन अब वह समझने लगा कि हर एक का प्रेम उत्कृष्ट है।

❊ ❊ ❊ ❊

प्रवेशिका पाठ्य पुस्तक-2

दूसरा भाग

सत्य का स्वर

(गाँधीजी की संक्षिप्त आत्म-कथा)

विषय–सूची

			पृष्ठ
1.	माँ-बाप और जन्म	.....	73
2.	लड़कपन	.....	76
3.	हाई स्कूल में	.....	79
4.	विवाह और मांस–भक्षण	.....	83
5.	आँखें खुलीं	.....	87
6.	चोरी और प्रायश्चित	.....	90
7.	धर्म की झलक	.....	94
8.	तीन प्रतिज्ञाएँ	.....	96
9.	पहला अनुभव	.....	99
10.	प्रतिज्ञा ने रक्षा की	.....	104
11.	सभ्य बनने के प्रयत्न में	.....	106
12.	सादगी की ओर	.....	110
13.	प्रलोभन से बचा	.....	113
14.	बैरिस्टर हुआ	.....	116
15.	दक्षिण अफ्रिका में	.....	119
16.	सेवा का श्रीगणेश	.....	125
17.	तूफ़ान के चिह्न	.....	128
18.	कसौटी	.....	131
19.	सेवा–भाव और सादगी	.....	138
20.	एक पुण्य–स्मरण और प्रायश्चित	.....	143

सत्य का स्वर

(गाँधीजी की संक्षिप्त आत्म-कथा)

1. माँ-बाप और जन्म

मेरे पिता करमचंद गाँधी को धन जोड़ने का लोभ न था। इससे हम भाइयों के लिए वह बहुत थोड़ी सम्पत्ति छोड़ गये थे।

पिताजी ने शिक्षा केवल अनुभव से प्राप्त की थी। स्कूली शिक्षा उन्होंने उतनी ही पायी रही होगी, जिसे आज हम अपर-प्राइमरी कहते हैं। अपने अन्तिम दिनों में एक विद्वान ब्राह्मण की सलाह से, जो कि हमारे कुटुम्ब के मित्र थे, उन्होंने गीता-पाठ शुरू किया था और वह नित्य पूजा के समय कुछ श्लोक ऊँचे स्वर से पाठ किया करते थे।

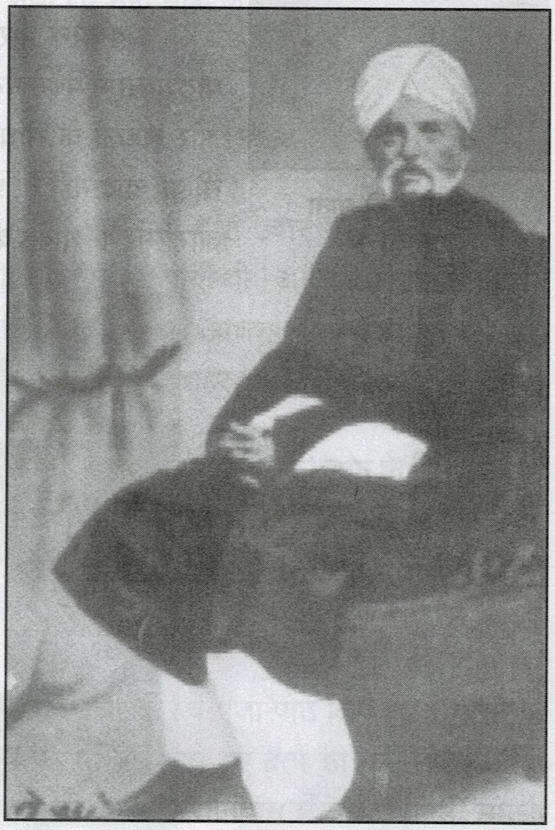

गाँधीजी के पिता करमचंद गाँधी

वह कुटुम्ब-प्रेमी, सत्य-प्रिय शूर और उदार, परन्तु क्रोधी थे। रिश्वत से सदा दूर भागते थे और इसी कारण अच्छा न्याय करते थे, उनकी ऐसी प्रसिद्धि हमारे कुटुम्ब में तथा बाहर भी थी। वह राजकोट में कुछ समय तक प्रधान-मंत्री रहे थे और राज्य के बड़े भक्त थे। एक बार जब असिस्टेंट पोलिटिकल एजेन्ट ने राजकोट के ठाकुर साहब की शान के खिलाफ़ कुछ शब्द कहे, तब उन्होंने उसका विरोध किया। साहब बिगड़ पड़े और मेरे पिताजी को माफ़ी माँगने का हुक्म दिया। माफ़ी माँगने से इन्कार कर देने पर मेरे पिताजी कुछ घंटें हवालात में भी रहे, वह डिगे नहीं, इससे अन्त में साहब ने उन्हें छोड़ देने की आज्ञा दी।

मेरे मन पर ऐसे संस्कार हैं कि मेरी माताजी साध्वी स्त्री थीं। वह बहुत भावुक थीं। पूजा-पाठ किये बिना कभी भोजन न करतीं, वैष्णव-मन्दिर रोज़ जातीं। मैंने जब से होश संभाला, याद नहीं पड़ता कि उन्होंने

गाँधीजी की माता
पुतली बा

चातुर्मास का व्रत कभी छोड़ा हो। कठिन–से–कठिन व्रत वह लेतीं और उन्हें पूरा करतीं। बीमार पड़ जाने पर भी वह लिये हुए व्रतों को न छोड़तीं। ऐसा एक समय मुझे याद है, जब उन्होंने चंद्रायण व्रत किया था। उसमें वह बीमार पड़ गयीं, पर व्रत न छोड़ा।

वह व्यवहार–कुशला भी थीं और राज–दरबार की सब बातें जानती थीं। रनिवास में वह बुद्धिमती समझी जाती थीं। बचपन में मैं माँ के साथ दरबार गढ़ जाया करता था।

इन माता-पिता के यहाँ आश्विन बदी 12, संवत् 1925 (अर्थात् 2 अक्तूबर 1869 ईस्वी को) पोरबन्दर अथवा सुदामा–पुरी में मेरा जन्म हुआ।

बचपन पोरबंन्दर में ही बीता। ऐसा याद पड़ता है कि मैं किसी पाठशाला में पढ़ने बैठाया गया था। मुश्किल से कुछ पाठ सीखे होंगे, बाकी तो और लड़कों के साथ गुरुजी को गाली देना सीखने के अतिरिक्त और कुछ सीखा, याद नहीं है; इससे यह अनुमान करता हूँ कि मेरी बुद्धि मन्द रही होगी और स्मरण–शक्ति कच्ची।

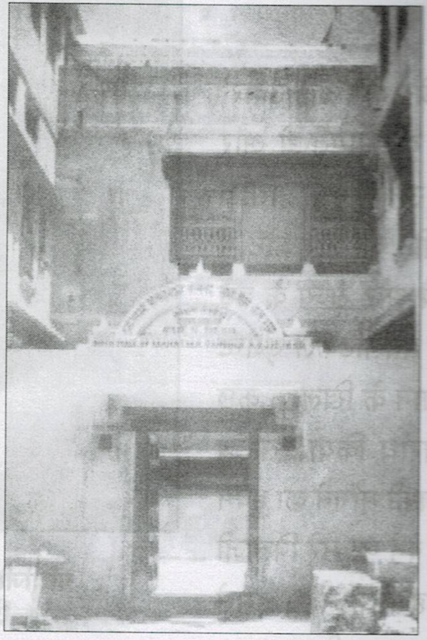

पोरबंदर में गाँधीजी का घर

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

माँ–बाप और जन्म

गाँधीजी का जन्म 2, अक्तूबर, 1869 को पोरबन्दर में हुआ। पिता का नाम कबा गाँधी एवं माता का नाम पुतली बाई था। गाँधीजी के पिता को अनुभव के आधार पर ही शिक्षा प्राप्त हुई। धन जोड़ने में उनको बिल्कुल इच्छा नहीं थी। गाँधीजी के परिवार को वैष्णव संप्रदाय में अटूट श्रद्धा थी। एक विद्वान ब्राह्मण की सलाह से जो उनके परिवार के मित्र थे, गीता पाठ–पठन होता था। गाँधीजी की माता साध्वी एवं भावुक स्त्री थी। गाँधीजी को एक प्रारंभिक पाठशाला में भर्ती किया गया। वे मन्द बुद्धि के छात्र रहे। इस प्रकार उनका प्रारंभिक जीवन पोरबन्दर में ही बीता।

II. सारांश लिखिए :–

गाँधीजी के पिता कबा गाँधी देश भक्त, कुटुंब-प्रेमी, सत्य-प्रिय तथा उदार थे। आजकल अपर-प्राइमरी में जो शिक्षा दी जाती है, उतनी ही शिक्षा गाँधीजी के पिताजी ने पायी थी। अनुभव के ज्ञान से उन्होंने बहुत-सी बातें सीख लीं। उनमें व्यावहारिक ज्ञान बहुत था। रिश्वत जैसे बुरे आचरण से वे कोसों दूर थे। इसी कारण वे अच्छा न्याय करते थे। उनकी न्याय-प्रियता की प्रसिद्धि शहर के बाहर भी फैली थी।

वे राजकोट में कुछ समय तक प्रधान-मंत्री थे। एक बार राजकोट के ठाकुर की शान के खिलाफ़ कुछ चर्चा हुई, तब कबा गाँधी ने विरोध किया। साहब ने बिगड़कर कबा गाँधी को माफ़ी माँगने का आदेश दिया, पर उन्होंने माफ़ी माँगने से इन्कार कर दिया। अतः कुछ घंटे हवालात में रहना पड़ा। अन्त में साहब ने उन्हें छोड़ने की आज्ञा दी।

गाँधीजी की माता पुतली बाई एक साध्वी तथा भावुक स्त्री थीं। वे पूजा-पाठ किये बिना भोजन न करती थीं। वैष्णव-मंदिर रोज़ जाती थीं। बीमार पड़ जाने पर भी वह लिये हुए व्रतों को नहीं छोड़तीं। वह व्यवहार-कुशला भी थीं और राज-दरबार की बहुत-सी बातें जानती थीं। रानिवास में वह बुद्धिमती समझी जाती थीं। इस प्रकार उनका परिवार राज्य-भक्ति, एवं सामाजिक नैतिकता के लिए आदर्श था।

ऐसे उत्तम परिवार में 2, अक्तूबर, 1869 को गाँधीजी का जन्म हुआ।

****

2. लड़कपन

सात साल की आयु में

पोरबन्दर से पिताजी 'राजस्थानिक कोर्ट' के सदस्य होकर जब राजकोट गये तब मेरी उम्र कोई सात साल की रही होगी। राजकोट की देहाती पाठशाला में भर्ती कराया गया। उन दिनों का मुझे भली-भांति स्मरण है। मास्टरों के नाम-धाम भी याद हैं। पोरबन्दर की तरह वहाँ की पढ़ाई के सम्बन्ध में कोई खास बात जानने लायक नहीं। मेरी गिनती साधारण श्रेणी के विद्यार्थियों में रही होगी। पाठशाला से ऊपर के स्कूल में और वहाँ से हाई स्कूल तक पहुँचने में मेरा बारहवाँ वर्ष बीत गया। तब तक मैं कभी शिक्षक आदि से झूठ बोला होऊँ, ऐसी याद नहीं पड़ती। न किसी को दोस्त बनाने का स्मरण है। मैं बहुत संकोची लड़का था, मदरसे में अपने काम से काम रखता था।

हाई स्कूल के पहले वर्ष की परीक्षा के समय की एक घटना उल्लेखनीय है। शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टर, ज़ाइल्स साहब जाँच के लिए आये। उन्होंने पहले दर्जे के विद्यार्थियों से पाँच शब्द लिखवाये। उनमें से एक शब्द था 'केटल' (Kettle)। उसके हिज्जे मैंने गलत लिखे। मास्टर ने मुझे अपने बूट से ठोकर देकर चेताया, पर मैं कहाँ समझनेवाला था! मेरे दिमाग में यह बात नहीं आयी कि मास्टर साहब मुझे सामने के लड़के की स्लेट देखकर हिज्जे दुरुस्त करने का संकेत कर रहे हैं। मैंने यह मान रक्खा था कि मास्टर तो इसके लिए तैनात है कि कोई लड़का दूसरे की नकल न कर सके। जब लड़कों के पाँचों शब्द सही निकले, अकेला मैं ही बेवकूफ़ बच गया। मेरी बेवकूफ़ी बाद को मास्टर ने बतलायी। पर मेरे मन पर उसका कोई असर न हुआ। मुझे दूसरे लड़कों से नकल करना कभी न आया।

ऐसा होते हुए भी मास्टर साहब के प्रति मेरा आदर कभी न घटा। बड़े-बूढ़ों के दोष न देखने का गुण मुझमें स्वाभाविक था। बाद को तो इन मास्टर साहब के दूसरे दोष भी मेरी नज़र में आये। फिर भी उनके प्रति मेरा आदर ज्यों-का-त्यों बना रहा। मैं इतना था कि बड़े-बूढ़ों की आज्ञा का पालन करना चाहिए, जो वे कहें, करना चाहिए; वे जो कुछ करें, उसका हमें काज़ी न बनना चाहिए।

इसी बीच दूसरी दो घटनाएँ हुईं, जो मुझे सदा याद रही हैं। मामूली तौर पर मुझे कोर्स की पुस्तकों के अलावा कुछ भी पढ़ने का शौक न था। एक बार पिताजी की ख़रीदी एक पुस्तक 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नाटक पर मेरी नज़र पड़ी। बड़े अनुराग और चाव से मैंने उसे पढ़ा। इन्हीं दिनों काठ के बक्स में शीशों से तस्वीर दिखानेवाले भी फिरा करते। उनमें मैंने श्रवण का अपने माता-पिता को कांबर में बैठाकर यात्रा के लिए ले

प्रारंभिक स्कूल

जानेवाला चित्र देखा। दोनों चीज़ों का मुझपर गहरा असर पड़ा। मन में श्रवण के समान होने के विचार उठने लगे। श्रवण की मृत्यु पर उसके माता-पिता का विलाप मुझे अब भी याद है। उस ललित छन्द को मैंने बजाना सीख लिया था। मुझे बाजा सीखने का शौक था और पिताजी ने एक बाजा ला भी दिया था।

इसी समय कोई नाटक-कम्पनी आयी और मुझे उसका नाटक देखने की छुट्टी मिली। इसमें हरिश्चन्द्र की कथा थी। यह नाटक देखने से मेरी तृप्ति नहीं होती थी। बार-बार उसे देखने को मन हुआ करता, पर बार-बार जाने कौन देता! पर अपने मन में मैंने हरिश्चन्द्र का नाटक सैकड़ों बार खेला होगा। हरिश्चन्द्र के सपने आया करते। यही धुन लगी रहती कि हरिश्चन्द्र की तरह सत्यवादी सब क्यों न हों? यही धारणा होती कि हरिश्चन्द्र के जैसे विपत्तियाँ भोगना और सत्य का पालन करना ही सच्चा सत्य है। मैंने तो यह मान रखा था कि नाटक में जैसी विपत्तियाँ हरिश्चन्द्र पर पड़ी हैं, वैसी ही वास्तव में उसपर पड़ी होंगी! हरिश्चन्द्र के दुःखों को देखकर और उन्हें याद करके मैं खूब रोया हूँ। आज मेरी बुद्धि कहती है कि संभव है, हरिश्चन्द्र कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न हों, पर मेरे हृदय में तो हरिश्चन्द्र और श्रवण आज भी जीवित हैं। मैं मानता हूँ कि आज भी यदि मैं उन नाटकों को पढ़ूँ तो आँसू आये बिना न रहेंगे।

❊❊❊❊❊❊

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

लड़कपन

गाँधीजी का परिवार पोरबन्दर से राजकोट आकर बस गया। तब गाँधी सात साल के बालक थे। वहीं की एक ग्रामीण पाठशाला में उनको भर्ती कराया गया। वे साधारण श्रेणी के छात्र ही थे। पढ़ाई के अलावा अन्य विषयों पर ध्यान नहीं देते थे।

वे बहुत संकोची स्वभाव के थे। पाठशाला से हाई स्कूल तक आने तक बारह वर्ष बीत गये, पर किसी भी दशा में वे झूठ नहीं बोले। सदा शिक्षकों का आदर करते थे। उनमें किसी पर दोषारोपण करने की प्रवृत्ति कभी नहीं थी। शिक्षकों के एकाध दोष नज़र में आने पर भी उनके प्रति गाँधीजी का आदर ज्यों-का-त्यों बना रहा। वे बड़े-बूढ़ों के आदेशों के पालन में अग्रणी रहे।

II. सारांश लिखिए :–

गाँधीजी के हाई स्कूल जीवन में अनेक प्रकार की घटनाएँ घटीं। एक बार शिक्षा-विभाग के इन्स्पेक्टर जाँच के लिए आये थे। उन्होंने सभी छात्रों से अंग्रेज़ी में पाँच-पाँच शब्द लिखने को कहा। गाँधीजी ने एक शब्द में हिज्जे की गलती की। शिक्षक ने दूसरों को देखकर नकल करने का संकेत किया। पर उन्होंने इनकार कर दिया। उनका विचार था कि शिक्षकों का धर्म है कि छात्रों को नकल करने से रोकें।

मास्टर ने उन्हें बेवकूफ़ बनाया। पर उनके मन पर कोई असर नहीं पड़ा। इस प्रकार की घटनाएँ होने पर भी मास्टर के प्रति उनका आदर-भाव कभी नहीं घटा। गाँधीजी को पाठ्य-पुस्तक के अलावा कोई अन्य किताब पढ़ने का शौक नहीं था। गाँधीजी के पिता ने एक बार 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नामक एक किताब खरीदकर दी। वह एक नाटक था। बालक गाँधी इसे चाव से पढ़ने लगे। श्रवण-पितृ-भक्ति संबंधी चित्र भी उन्हें आकर्षित करने लगे। उनके मन में श्रवण के समान होने के विचार उठने लगे।

इसी समय में उनके गाँव में हरिश्चंद्र नामक नाटक खेला गया, जिसने गाँधी को बहुत प्रभावित किया। नाटक को बार-बार देखने की अनुमति न मिलने पर भी मन में सैकड़ों बार खेलकर देखा। उनका दृढ विश्वास था कि हरिश्चन्द्र एवं श्रवण आज भी जीवित हैं। वे कहा करते थे कि हरिश्चन्द्र की तरह हम सब क्यों सत्यवादी न हों?

******

3. हाई स्कूल में

जब मेरा विवाह हुआ तब मैं हाई स्कूल में पढ़ता था। हाई स्कल में मैं मन्द-बुद्धि विद्यार्थी नहीं माना जाता था। शिक्षकों का प्रेम तो मैंने सदा प्राप्त किया था। हर साल माता-पिता को विद्यार्थी की पढ़ाई तथा चाल-चलन के संबंध में प्रमाण-पत्र भेजे जाते। इनमें किसी दिन मेरी पढ़ाई या चाल-चलन की शिकायत नहीं की गयी। दूसरे दर्जे के बाद मैंने इनाम भी पाये और पाँचवें तथा छठे दर्जे- में तो मुझे क्रमशः चार और दस रुपये की मासिक छात्रवृत्तियाँ भी मिली थीं। इस सफलता में मेरी योग्यताओं की अपेक्षा भाग्य का ज़्यादा ज़ोर था। ये छात्रवृत्तियाँ सब लड़कों के लिए नहीं, सौराष्ट्र प्रान्त के विद्यार्थियों के ही लिए थीं और उस समय चालीस-पचास विद्यार्थियों के दर्जे में सौराष्ट्र-काठियावाड़ के विद्यार्थी हो ही कितने सकते थे।

मेरी याद के अनुसार अपनी होशियारी पर मुझे गर्व न था। इनाम अथवा छात्रवृत्ति मिलती तो मुझे आश्चर्य होता, परन्तु हाँ, अपने चरित्र का मुझे बड़ा ख्याल रहता था। सदाचार में यदि चूक होती तो मुझे रुलाई आ जाती। यह मेरे लिए बरदाश्त से बाहर था कि मेरे हाथों कोई ऐसी बात हो कि शिक्षक को शिकायत का मौका मिले या वह मन में भी ऐसा सोचें। मुझे याद है कि एक बार मुझे मार खानी पड़ी थी। इस अवसर पर मार खाने का तो दुःख न था, पर इस बात का पछतावा था कि मैं दण्ड का पात्र समझा गया। मैं खूब रोया। यह घटना पहले या दूसरे दर्जे की है। दूसरा प्रसंग सातवें दर्जे का है। उस समय दोराबजी एदलजी गीमी हेडमास्टर थे। उनका अनुशासन कठोर था, फिर भी वह विद्यार्थियों में प्रिय थे। वह बाकायदा काम करते और काम लेते और पढ़ाते भी अच्छा थे। उन्होंने ऊँचे दर्जे के विद्यार्थियों के लिए कसरत, क्रिकेट अनिवार्य कर दी। मेरा मन उसमें न लगता था। अनिवार्य होने के पहले तो मैं कसरत, क्रिकेट या फुटबाल में कभी जाता ही न था। न जाने में मेरा संकोची स्वभाव भी एक कारण था। अब मैं देखता हूँ कि कसरत की यह अरुचि मेरी भूल थी। उस समय मेरे ऐसे गलत विचार थे कि व्यायाम का, शिक्षा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। बाद में मेरी समझ में आया कि विद्याभ्यास में व्यायाम का अर्थात् शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा के समान ही स्थान होना चाहिए।

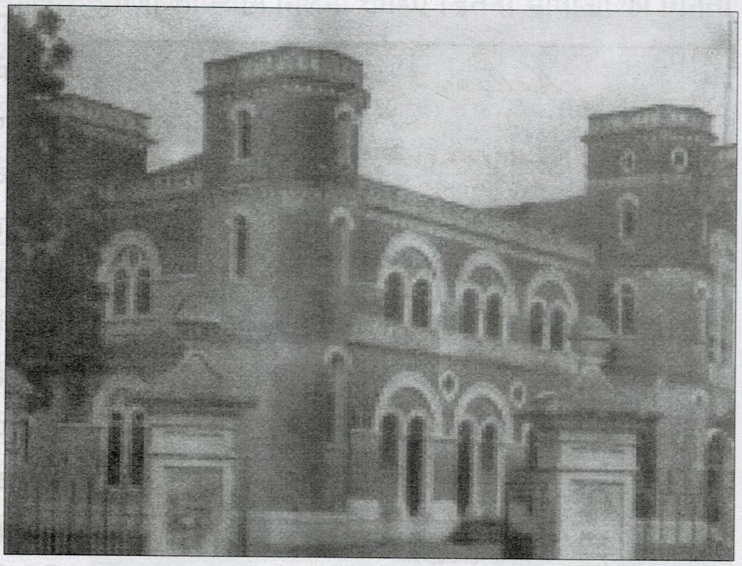

हाई स्कूल

फिर भी मैं कहना चाहता हूँ कि व्यायाम न करने से मुझे हानि नहीं हुई। कारण, मैंने पुस्तकों में

खुली हवा में घूमने के संबंध में पढ़ा था। यह बात मुझे पसन्द आयी और तभी से घूमने जाने की आदत मुझे पड़ गयी, जो अब तक है। घूमना भी व्यायाम तो है ही और इससे मेरा शरीर ठीक–ठीक गठीला हो गया।

व्यायाम की जगह घूमना जारी रखने की वजह से शरीर से व्यायाम न करने की भूल के लिए तो मुझे सज़ा नहीं भोगनी पड़ी, पर दूसरी एक भूल की सज़ा मैं आज तक भोग रहा हूँ। पता नहीं, कहाँ से यह गलत ख्याल मुझे मिल गया था कि पढ़ाई में सुलेख की आवश्यकता नहीं है। यह विलायत जाने तक बना रहा। बाद में तो मैं पछताया और शरमाया। मैंने समझा कि अक्षरों का खराब होना अधूरी शिक्षा की निशानी है। अतः हरेक नवयुवक या युवती मेरे इस उदाहरण से सबक लें और समझें कि सुन्दर अक्षर शिक्षा का आवश्यक अंग है।

इस समय के मेरे विद्यार्थी–जीवन की दो बातें उल्लेखनीय हैं। चौथे दर्जे से कुछ विषयों की शिक्षा अंग्रेज़ी में दी जाती थी, पर मैं कुछ समझ नहीं पाता था। रेखागणित में मैं यों भी पीछे था, और फिर अंग्रेज़ी में पढ़ाये जाने के कारण यह और भी समझ में न आता था। शिक्षक समझाते तो अच्छा थे, पर मेरी समझ में ही कुछ न आता था, मैं बहुत बार निराश हो जाता। परिश्रम करते–करते जब रेखागणित के तेरहवें प्रमेय पर पहुँचा तब मुझे, एकाएक लगा कि रेखागणित तो सबसे आसान विषय है। जिस बात में केवल बुद्धि का सीधा और सरल प्रयोग ही करना है, उसमें मुश्किल क्या है? इसके बाद से रेखागणित मेरे लिए सहज और रोचक विषय हो गया।

संस्कृत मुझे रेखागणित से भी अधिक कठिन मालूम पड़ी। रेखागणित में तो रटने की कोई बात न थी; परन्तु संस्कृत में मेरी दृष्टि से अधिक काम रटने का ही था। यह विषय भी चौथी कक्षा से शुरू होता था। छठी कक्षा में जाकर तो मेरा दिल बैठ गया। संस्कृत–शिक्षक बड़े सख्त थे। विद्यार्थियों को बहुतेरा पढ़ा देने का उन्हें लोभ था। संस्कृत और फारसी के दर्जे में एक प्रकार की होड़–सी लगी रहती थी। फारसी के मौलवी साहब नरम आदमी थे। विद्यार्थी आपस में बातें करते कि फारसी तो बहुत सरल है, फारसी के अध्यापक भी बड़े मुलायम हैं। विद्यार्थी जितना काम कर लाते हैं, उतने से ही वह निभा लेते हैं। सहज होने की बात से मैं भी ललचाया और एक दिन फारसी के दर्जे में जाकर बैठा। संस्कृत–शिक्षक को इससे दुःख हुआ और उन्होंने मुझे बुलाकर कहा– "तुम सोचो तो कि तुम किसके लड़के हो? अपनी धार्मिक भाषा न सीखोगे? अपनी कठिनाई मुझे बताओ। मेरी

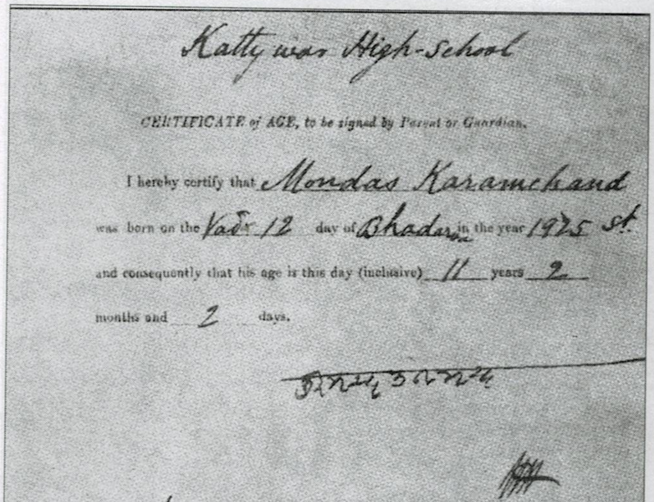
Katty war High-school

CERTIFICATE of AGE, to be signed by Parent or Guardian.

I hereby certify that Mondas Karamchand was born on the Vad 12 day of Bhadarva in the year 1925 St. and consequently that his age is this day (inclusive) 11 years 2 months and 2 days.

Date 1st December 1880

प्रमाण-पत्र

एक दोस्त के साथ

तो इच्छा रहती है कि सब विद्यार्थी अच्छी संस्कृत सीखें। आगे चलकर उसमें रस–ही–रस मिलेगा। तुमको इस तरह निराश न होना चाहिए। तुम फिर मेरे दर्जे में आ जाओ।"

मैं शरमाया। शिक्षक के प्रेम की अवहेलना न कर सका। आज मेरी आत्मा कृष्णशंकर पंड्या की कृतज्ञ है; क्योंकि जितनी संस्कृत मैंने उस समय पढ़ी थी, यदि उतनी भी न पढ़ा होता तो आज मैं संस्कृत–शास्त्रों का जो रसास्वादन कर पाता हूँ वह न कर पाता। बल्कि अधिक संस्कृत न पढ़ सका, इसका पछतावा होता है; क्योंकि आगे चलकर मैंने समझा कि किसी भी हिंदू बालक को संस्कृत के अध्ययन से वंचित नहीं रहना चाहिए।

अब तो मैं यह मानता हूँ कि भारतवर्ष के उच्च–शिक्षण–क्रम में अपनी भाषा के अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेज़ी को स्थान मिलना चाहिए। इतनी भाषाओं की गिनती से क़िसी को घबराने की ज़रूरत नहीं। यदि भाषाएँ ढंग से सिखायी जाएँ और सब विषय अंग्रेज़ी के द्वारा ही पढ़ने–समझने का बोझ हम पर न हो, तो उपर्युक्त भाषाओं की शिक्षा भार–रूप न होगी, बल्कि उसमें बड़ा रस आने लगेगा। फिर जो एक भाषा शास्त्रीय पद्धति से सीख लेता है, उसे दूसरी भाषाओं का ज्ञान सुलभ हो जाता है।

वास्तव में हिन्दी, गुजराती, संस्कृत को एक भाषा मानना चाहिए। यही बात फारसी और अरबी के लिए भी कह सकते हैं। फारसी यद्यपि संस्कृत–जैसी है, और अरबी हिब्रू जैसी, तथापि दोनों भाषाएँ इस्लाम के जन्म के पश्चात् फूली–फली हैं, इसलिए दोनों में निकट सम्बन्ध है। उर्दू को मैंने अलग भाषा नहीं माना, क्योंकि उसके व्याकरण का समावेश हिन्दी में होता है। उसके शब्द फारसी और अरबी के ही हैं। ऊँचे दर्जे की उर्दू जाननेवाले के लिए अरबी और फारसी जानना आवश्यक होता है, जैसा कि उच्चकोटि के गुजराती, हिन्दी, बंगला और मराठी जाननेवाले के लिए संस्कृत जानना ज़रूरी है।

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

हाई स्कूल में

जब गाँधीजी हाई स्कूल में पढ़ते थे, तब वे सदा शिक्षकों के प्रेम का पात्र थे। हर साल छात्रों की पढ़ाई तथा चाल-चलन संबंधी जो प्रमाण-पत्र माता-पिता को भेजा जाता था, उसमें गाँधी की शिकायत का कोई उल्लेख नहीं रहता था। हाई स्कूल की पढ़ाई में गाँधी कभी पिछड़े नहीं थे।

दूसरे दर्जे में इनाम मिला। पाँचवें तथा छठें दर्जे से छात्रवृत्तियाँ भी मिलती थी। वे इसे अपना भाग्य ही समझते थे। उनको अपनी होशियारी पर कभी गर्व नहीं हुआ। उन्होंने अपने सदाचार में कोई कमी या भूल-चूक आने नहीं दिया। दोराबाजी नामक हेडमास्टर अनुशासन पर ज़ोर देते थे। उनके आदेश से गाँधीजी कसरत एवं क्रिकेट में ध्यान देने लगे।

गाँधीजी का विचार था कि विद्याभ्यास में व्यायाम, अर्थात् शारीरिक शिक्षा का स्थान मानसिक शिक्षा के समान ही होना चाहिए।

II. सारांश लिखिए :–

गाँधीजी हाई स्कूल में मंद-बुद्धि के छात्र नहीं थे। उनको इनाम व छात्रवृत्ति मिलती थी। वे अपने चरित्र पर भी अधिक ख्याल रखते थे। पढ़ाई में जो सफलता मिली, उसमें गाँधीजी की योग्यता से भाग्य का ही ज़्यादा ज़ोर था। ऊँचे दर्जे के छात्रों के लिए कसरत एवं क्रिकेट को अनिवार्य करने के बाद ही गाँधी का ध्यान उस ओर गया।

गाँधीजी ने पढ़ाई में सुलेख की आवश्यकता को महसूस नहीं किया। विदेश जाने पर इसके लिए बहुत पछताये। बाद में वे कहा करते थे कि अक्षरों का खराब होना अधूरी शिक्षा की निशानी है।

चौथी कक्षा से कुछ विषयों की शिक्षा अंग्रेज़ी में दी जाती थी। रेखागणित भी अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ाते थे। इसे समझने में गाँधीजी असमर्थ थे। परिश्रम करने पर उनको लगा कि यह सबसे आसान विषय है। संस्कृत तो उनके लिए कठिन मालूम पड़ी, क्योंकि उसमें रटने का काम अधिक था।

छात्रों ने कहा कि संस्कृत से फारसी सरल है। शिक्षक भी नरम स्वभाव के थे। अतः गाँधीजी एक दिन फारसी के दर्जे में जा बैठे। इससे संस्कृत शिक्षक नाराज़ हो गये। शिक्षक की सलाह से गाँधीजी ने संस्कृत में ज़्यादा ध्यान दिया। उन्होंने कहा कि संस्कृत पढ़ने से ही वे संस्कृत-शास्त्रों का रसास्वादन कर सके।

उन्होंने ज़ोर दिया कि भारतवर्ष के उच्च-शिक्षण-क्रम में अपनी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी और अंग्रेज़ी को स्थान मिलना चाहिए। उनका विचार था कि यदि भाषा ढंग से सिखायी जाए तो पढ़ने-समझने में हमें बोझ का अनुभव नहीं होगा। अगर हम एक भाषा को शास्त्रीय पद्धति से सीख लेंगे तो दूसरी भाषा का ज्ञान सुलभ हो जाता है।

******

4. विवाह और मांस–भक्षण

यह लिखते हुए मेरे हृदय को बड़ी व्यथा होती है कि 13 वर्ष की उम्र में मेरा विवाह हुआ। आज मैं अपनी आँखों के सामने 12–13 वर्ष के बच्चों को देखता हूँ और जब मुझे अपने विवाह का स्मरण हो आता है तब मुझे अपने ऊपर तरस आता है, और उन बच्चों को इस बात के लिए बधाई देने की इच्छा होती है कि वे मेरी–सी हालत से बच गये। तेरह साल की उम्र में हुए विवाह के समर्थन में एक भी नैतिक दलील मुझे नहीं सूझती। यह मैं पहले कह आया हूँ कि जब मेरी शादी हुई तब मैं हाईस्कूल में ही पढ़ता था। हमारे वर्तमान हिन्दू–समाज में ही एक ओर पढ़ाई और दूसरी ओर शादी दोनों साथ–साथ चल सकते हैं।

युवावस्था में कस्तूर बा

एक और दुःखद प्रसंग यहाँ लिखना है और वह है मेरा एक बुरे आदमी की संगत में पड़ जाना। यह मेरे जीवन का एक दुःखद प्रकरण है। उस व्यक्ति की मित्रता पहले मेरे मंझले भाई के साथ थी। वह उनका सहपाठी था। मैं उसके कई दोषों को जानता था, परन्तु मैंने उसे अपना सच्चा साथी मान लिया था। मेरी माताजी, बड़े भाई और पत्नी तीनों को यह संगत बुरी लगती थी। पत्नी की चेतावनी की तो मुझ–जैसा अभिमानी पति परवा ही क्या करता! हाँ, माताजी की आज्ञा का उल्लंघन करना मेरे लिए कठिन था। बड़े भाई की बात भी टाल नहीं सकता था; परन्तु मैं उन्हें यों समझा देता कि आप जो उसकी बुराइयाँ बताते हैं, उन्हें तो मैं जानता हूँ। पर उसके गुणों को आप नहीं जानते। मुझे वह गलत रास्ते पर नहीं ले जा सकता, क्योंकि मैंने उसका साथ उसे सुधारने की नीयत से किया है। मेरा विश्वास है कि यदि वह सुधर जाए तो वह अच्छा आदमी साबित होगा! यह तो मैं नहीं मानता कि इन बातों से उन्हें संतोष हो जाता था, पर उन्होंने मुझपर विश्वास रखा और मुझे अपनी राह चलने दिया।

आगे चलकर मुझे यह मालूम हुआ कि मेरा यह अनुमान सही नहीं था। सुधार करने के लिए भी मनुष्यों को गहरे पानी में नहीं उतर जाना चाहिए। जिनका सुधार हमें करना हो, उनके साथ मित्रता संभव नहीं है। मित्रता में अद्वैत–भावना होती है। ऐसी मित्रता संसार में बहुत कम ही पायी जाती है। समान गुण और शीलवालों में ही मित्रता शोभती और निभती है। मित्र का एक-दूसरे पर असर पड़े बिना नहीं रह सकता, इसका कारण मित्रता में सुधार की गुंजायश बहुत कम होती है। मेरा मत यह है कि अन्तरंग मित्रता अनिष्टकारक है, क्योंकि मनुष्य दोष को बहुत जल्दी अपनाता है। गुण–ग्रहण करने में प्रयास की आवश्यकता है। आत्मा और ईश्वर की मित्रता चाहनेवाले को एकांकी रहना चाहिए, या फिर सारे जगत के साथ मैत्री करना उचित है। ये विचार सही हों या गलत, परन्तु इसमें शक नहीं कि मेरा अन्तरंग मित्रता का प्रयास निष्फल रहा।

जिन दिनों इस मित्र से मेरा संबंध हुआ था, राजकोट में 'सुधार' की लहर ऊँची उठ रही थी। इस मित्र ने खबर दी कि बहुतेरे हिन्दू शिक्षक छिपे-छिपे मद्य-मांस का सेवन करते हैं। राजकोट के दूसरे प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम भी उसने बताये। हाईस्कूल के कितने ही विद्यार्थियों के नाम भी मेरे पास आये। यह देखकर मुझे तो आश्चर्य हुआ और दुःख भी। जब मैंने इसका कारण पूछा तब यह बताया गया कि हम मांस नहीं खाते, इसलिए हमारा राष्ट्र कमज़ोर है। अंग्रेज़ जो हमपर हुकूमत कर रहे हैं, इसका कारण उनका मांसाहार है। मैं कितना हट्ठा-कट्ठा और मज़बूत हूँ और कितना दौड़ सकता हूँ, यह तो तुम्हें मालूम है ही। इसका कारण भी मेरा मांसाहार ही है। मांसाहारी को फोड़े-फुंसी नहीं होती, और हुए तो जल्दी अच्छे हो जाते हैं। हमारे अध्यापक मांस खाते हैं, इतने-इतने मशहूर आदमी खाते हैं, सो क्या सब बिना सोचे-समझे ही? तुम्हें भी ज़रूर खाना चाहिए। खाकर तो देखो कि तुम्हारे बदन में कितनी ताकत आ जाती है।

बड़े भाई के साथ

ये सारी दलीलें कोई एक दिन में ही सामने नहीं आयीं। अनेक उदाहरणों से सजाकर ये कई बार पेश की गयीं। मंझले भाई तो फिसल चुके थे। उन्होंने भी इन बातों का समर्थन किया। मित्र का अधिक गठीला और शरीर-बल मुझसे बहुत अधिक था। वे साहसी थे। इस मित्र के पराक्रम के काम मुझे मोह लेते थे। वह जितना चाहते दौड़ सकता था। चाल भी बहुत तेज़ थी, लंबी और ऊँची कुदान में उसे कमाल हासिल था। मार सहने की शक्ति भी वैसी ही थी। इस शक्ति का प्रदर्शन भी वह समय-समय पर करता था। अपने अन्दर जिस शक्ति का अभाव होता है, उसे दूसरे में देखकर मनुष्य का आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक है। यही मेरे विषय में हुआ। आश्चर्य से मोह पैदा हुआ। मुझमें दौड़ने की शक्ति नहीं के बराबर थी। मेरे मन ने कहा- "मैं भी इस मित्र के समान बलवान हो जाऊँ तो क्या ही अच्छा हो!'

दूसरे, मैं बड़ा डरपोक था, चोर, भूत, साँप आदि के भय से भयभीत बना रहता था। रात को अकेले कहीं जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। अंधेरे में कहीं न जा सकता था। रोशनी के बिना सोना भी प्रायः असंभव-सा था। उधर से भूत आ जाए, उधर से चोर आ जाए और कहीं से साँप निकल आया तो? यह डर बना रहता। इसलिए रोशनी का होना तो आवश्यक था? इधर अपनी पत्नी के सामने भी, जो कि पास ही सोती और अब कुछ-कुछ युवती हो चली थी, ये भय की बातें करते हुए संकोच होता, क्योंकि मैं इतना जान गया था कि वह मुझसे अधिक साहसी है, इस कारण मैं उससे कुछ शरमाता भी था। उसने साँप वगैरा का डर

तो कभी जाना ही नहीं था। अंधेरे में अकेली चली जाती। मेरी इन कमज़ोरियों का उस मित्र को पता था। वह तो मुझसे कहता कि मैं तो जीते साँप को भी हाथ से पकड़ लेता हूँ। चोर से नहीं डरता, भूत-प्रेत को मानता ही नहीं, और इन सबका कारण मांसाहार ही है। यह उसने मेरे मन में जमा दिया।

इन्हीं दिनों कवि नर्मद का यह कवित्त पाठशालाओं में गाया जाता-

अंग्रेज़ी राज करे, देशी रहे दबाई,
देशी रहे दबाई, जोने बेनां शरीर भाई,
पेलो पाँच हाथ पूरो, पूरो पाँच सेने।।

इन सबका मेरे मन पर पूरा असर हुआ। मैं मानने लगा कि मांसाहार अच्छी चीज़ है। उससे मुझमें बल और साहस आएगा। यदि सारा देश मांसाहार करने लगे तो अंग्रेज़ों को हटाया जा सकता है।

मेरे माता-पिता वैष्णव थे और मैं उनका परम-भक्त था। मैं जानता था कि उन्हें मेरे मांसाहार का पता चल जाए तो वे बिना मौत के तुरन्त ही प्राण छोड़ देंगे! सत्य का जाने-अनजाने सेवक तो मैं था ही। यह नहीं कह सकता कि मांसाहार करने पर माता-पिता से झूठ बोलना पड़ेगा, यह ज्ञान मुझे उस समय नहीं था। लेकिन मेरा मन तो सुधार के रंग में रंगा हुआ था। मांसाहार का शौक नहीं था। स्वाद के ख्याल से मुझे मांसाहार नहीं आरंभ करना था। मुझे तो बलवान और साहसी बनना था और दूसरों को वैसा ही बनने को समझाना था और फिर अंग्रेज़ों को हराकर भारत को आज़ाद करना था। 'स्वराज्य' शब्द तो उस समय कान में भी नहीं पड़ा था। इस सुधार की धुन में मैं अपना होश खो बैठा। और जब गुप्त रूप से उसे करने का प्रबन्ध हो गया, तब झूठ-मूठ ही मैंने अपने मन को समझा लिया कि अपनी बात को माता-पिता से छिपाना सत्य से भटकना नहीं है।

नियत दिन आया। उस दिन की अपनी हालत का वर्णन करना कठिन है। एक तरफ़ था 'सुधार' का उत्साह और जीवन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की नवीनता और दूसरी ओर चोर की भांति छिपकर काम करने की शर्म। मैं नहीं कह सकता कि इसमें किसकी प्रधानता थी। हम लोग नदी-किनारे एकान्त की खोज में चले। फिर जाकर ऐसा कोना तलाश किया, जहाँ कोई सहसा देख न सके, और वहाँ मैंने पहले-पहल मांस देखा। साथ भटियारे के यहाँ की डबल रोटी थी। दो में से एक भी चीज़ न भायी। मांस चमड़े-सा लग रहा था। खाना असंभव हो गया, मुझे कै आने लगी। खाना बीच में छोड़ देना पड़ा।

मेरी वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। नींद किसी तरह न आती थी। सपने में ऐसा मालूम होता था। मानो बकरा मेरे शरीर के भीतर ज़िंदा है और मैं-मैं करता है। मैं चौंक-चौंक उठता, पछताता, पर फिर सोचता कि मांसाहार के बिना तो गति ही नहीं, यों हिम्मत नहीं हारनी है। मांसाहार एक कर्त्तव्य है और मुझे हिम्मत से काम लेना चाहिए।

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

गाँधीजी के माँसाहार करने का निश्चय

गाँधीजी वैष्णव-धर्मावलंबी थे। वे सत्य का भी सेवक थे। गाँधीजी अच्छी तरह जानते थे कि यदि माँसाहार का पता माता-पिता को चल जाए तो वे अपने प्राण छोड़ देंगे। लेकिन गाँधीजी उस समय हाई स्कूल के लड़के थे। जब उनके सहपाठी ने माँसाहार के महत्व के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर लंबा व्याख्यान दिया तो उसका असर गाँधीजी के मन में गहरा पड़ा। उन्होंने निश्चय कर लिया कि 'सुधार' शारीरिक बल से ही सम्भव है, न कि मानसिक बल से और वह शारीरिक बल माँसाहार से ही मुमकिन है।

गाँधीजी ने निश्चय कर लिया कि यदि अंग्रेज़ों को भारत से निकालकर आज़ादी दिलानी है तो पहले-पहले अंग्रेज़ों के जैसे बलवान बनना चाहिए और देशवासियों को भी मांसाहार का महत्व बतलाकर उन्हें भी बलवान बनाना चाहिए। इन कारणों से गाँधीजी ने माँसाहार करने का निश्चय किया।

II. सारांश लिखिए :–

गाँधीजी जब हाई स्कूल में पढ़ रहे थे, तभी उनका विवाह हो गया था। उस समय वे 13 साल के हुए होंगे। बड़े होने के बाद जब कभी वे 12-13 साल के बच्चों को देखते थे, अपने बाल-विवाह का स्मरण करते थे और उन बच्चों को बधाई देते थे कि वे इस दयनीय हालत से बच गये। अर्थात्, बचपन का जीवन स्वतंत्रमय होता है और गाँधीजी इस स्वतंत्रता से वंचित रह गये।

दूसरी दुःखद घटना थी कि उनका एक बुरे सहपाठी की संगति में पड़ना। गाँधीजी की माँ, बड़े भाई और पत्नी तीनों ने उस बुरे सहपाठी की संगति छोड़ देने की चेतावनी दी। गाँधीजी उन्हें समझाते थे कि उन्होंने उसे सुधारने के विचार से ही उससे संगति की है।

उस सहपाठी ने गाँधीजी से कहा कि– अंग्रेज़ मांसाहारी हैं, हमसे मज़बूत हैं। इसी कारण से वे हम पर शासन करते हैं। इसलिए कम से कम शारीरिक बल पाने के लिए तुमको माँसाहार ज़रूर करना चाहिए। गाँधीजी उसकी बातों में आ गये और माँस खाकर उस सहपाठी के समान बलवान बनने का निश्चय किया।

गाँधीजी के माता-पिता वैष्णव थे। गाँधीजी अच्छी तरह जानते थे कि यदि माता-पिता को मांसाहार का पता चल जाए तो वे अपने प्राण छोड़ देंगे। इतने कारणों के होने पर भी गाँधीजी का मन सुधार की भावना से भरा रहता था और अपने को बलवान एवं साहसी बनाने में तुले रहते थे।

गुप्त रूप से मांसाहार करने के नियत दिन गाँधीजी की हालत साँप-छछूँदर जैसी थी। पहली बार गाँधीजी ने माँस देखा। माँस चमड़ा जैसा लग रहा था, खाना असंभव हो गया, कै आने लगी, इसलिए खाना बीच में ही छोड़ देना पड़ा।

रात को गाँधीजी को नींद नहीं आ रही थी। ऐसा मालूम होता था कि बकरी पेट के अन्दर ज़िन्दा है और मैं-मैं कर रहा है। गाँधीजी सपना देखकर चौंककर उठ बैठते और पछताते थे। आखिर अपने मन को धीरज बँधाने लगे कि माँसाहार एक कर्तव्य है, इसके बिना दूसरी गति ही नहीं; इसलिए हिम्मत नहीं हारनी चाहिए।

******

5. आँखें खुलीं

मेरे मित्र हार माननेवाले न थे। उन्होंने अब मांस को भांति-भांति से पकाकर रुचिकर बनाना तथा सजाकर रखना शुरू किया। नदी-किनारे के बजाय किसी बावरची से सांठ-गांठ करके गुप्त रूप से राज्य के एक भवन में ले जाने का प्रबन्ध किया। वहाँ के भोजन-भवन तथा मेज़-कुर्सी के ठाट-बाट ने मुझे लुभा लिया।

इसका ठीक असर पड़ा। रोटी से जो नफ़रत थी, ढीली पड़ गयी। बकरे पर की दया गायब हो गयी और मांस का तो नहीं, पर मांसवाले पदार्थों का जीभ को चस्का लग गया। यों एक साल बीता होगा, और इतने समय में पाँच-छः बार मांसाहार का मौका मिला होगा, क्योंकि बार-बार दरबार-भवन का प्रबन्ध होना कठिन था और न सादा मांस के स्वादिष्ट उत्तम पदार्थ तैयार हो सकते थे। इसके सिवा ऐसे भोजनों पर खर्च खासा बैठता था। मेरे पास तो कानी-कौड़ी भी न थी। मैं देता क्या? इस खर्च का इन्तज़ाम तो उस मित्र के ज़िम्मे होता था। मुझे आज तक पता नहीं कि उसने क्या इन्तज़ाम किया था। उसका इरादा तो था मुझे मांस की चाट लगा देना, मुझे फंसा देना। इसलिए खर्च का भार भी वह खुद उठाता था, पर उसके पास कोई कारूंका खजाना तो था ही नहीं। इस कारण ऐसे खाने तो कभी-कभी ही संभव थे।

जब-जब ऐसे खानों में मैं शरीक होता, तब-तब घर का खाना न खाया जाता। जब माँ खाने को बुलातीं तो बहाना बनाना पड़ता- 'आज भूख नहीं है। खाना पचा नहीं।' हर बहाने के वक्त मेरे दिल को चोट लगती। यह झूठ और सो भी माँ के सामने! फिर यदि माँ-बाप जान जाएँ कि लड़का मांसाहारी हो गया है, तब तो उनपर वज्रपात हो जाएगा। ये विचार मेरे हृदय को कुतर रहे थे। इस कारण मैंने निश्चय किया कि यद्यपि मांस खाना आवश्यक है, उसका प्रचार हिन्दुस्तान में करके भोजन-सुधार करना है, पर माता-पिता से झूठ-कपट मांसाहार से भी बदतर है। अतः माता-पिता के जीते-जी मांस न खाऊँगा, और तब तक के लिए मांसाहार मुल्तवी। यह निश्चय मैंने अपने मित्र को सुना दिया, और तबसे मांसाहार छूटा सो छूटा ही। माता-पिता ने कभी न जाना कि उनके दो पुत्र मांसाहार कर चुके हैं।

माता-पिता से झूठ-कपट न करने के शुभ विचार से मैंने मांसाहार तो छोड़ा, परन्तु मित्र की मित्रता न छोड़ी। मैं दूसरों को सुधारने चला था और स्वयं ही गड्ढे में गिर गया और इस पतन का मुझे भान तक न रहा।

उसी की सोहबत के कारण मैं व्यभिचार में फंस गया होता। एक बार यह मित्र मुझे चकले में ले गया। मैं मकान में घुसा तो ज़रूर, पर जिसे भगवान् बचाता है, वह गिरना चाहते हुए भी पवित्र बना रह सकता है। मगर मेरी आँखें इतने से भी न खुलीं। मुझे अब तक इस बात का भान ही न हुआ कि इस मित्र की मित्रता अनिष्ट है। अभी और कटु अनुभव होना बाकी था। यह तो मुझे तभी मालूम हुआ, जब मैंने उसमें वे प्रत्यक्ष दोष देखे, जिनसे मैं उसे अलिप्त मानता था।

इस समय की बात कह देना ज़रूरी जान पड़ता है। हम दम्पति के बीच होनेवाले मतभेद और कलह का कारण यह मित्रता भी थी। मैं जितना प्रेमी पति था, उतना ही वहमी भी। मेरा वहम बढ़ानेवाली यह मित्रता थी, क्योंकि मित्र की सचाई पर मुझे ज़रा भी अविश्वास न था। इस मित्र की बातें मानकर मैंने अपनी पत्नी को कितने ही कष्ट दिये। उस हिंसा के लिए मैंने कभी अपने को क्षमा नहीं किया। हिन्दू स्त्री ही ऐसे दुःखों को सहन कर सकती है और इसीलिए मैंने स्त्री को सदा सहनशीलता की मूर्ति माना है। नौकर पर यदि झूठा शक किया जाए तो वह नौकरी छोड़ जाता है; पुत्र पर किया जाए तो वह बाप का घर छोड़कर चला जाता है; मित्रों में परस्पर सन्देह उत्पन्न होने पर मित्रता टूट जाती है; पत्नी को यदि पति पर शक हो तो उसे मन मससोकर बैठे रहना पड़ता है, पर यदि पति का पत्नी पर सन्देह हो जाए तो बेचारी के भाग्य ही फूटे समझने चाहिए। वह कहाँ जाए? उच्च माने जानेवाले वर्ण की हिन्दू स्त्री अदालत में जाकर तलाक नहीं दे सकती। उसके लिए एक-तरफ़ा न्याय रखा गया है। मेरा यह सलूक ऐसा था कि इसका दुःख मैं कभी नहीं भूल सकता।

इस सन्देह का सर्वथा नाश तो तभी हुआ, जब मुझे अहिंसा का सूक्ष्म ज्ञान हुआ या कहिए तब, जब मैंने ब्रह्मचर्य की महिमा समझी और समझा कि पत्नी दासी नहीं, बल्कि सहधर्मिणी है। दोनों एक-दूसरे के सुख-दुःख के समान भागीदार हैं और जितनी स्वतंत्रता पति को बुरा-भला करने की है, उतना ही पत्नी को भी है। इस सन्देह-काल की जब मुझे याद आती है, तब मुझे अपनी मूर्खता और विषयान्ध निर्दयता पर क्रोध और मित्र-विषय अपनी अन्धता पर दया उपजाती है।

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :-

माँसाहार की मुल्तवी

गाँधीजी अपने सहपाठी के साथ दरबार-भवन जाकर कुछ खा लेते थे। उस समय पेट भरा रहता था और घर में खाना न खा सकते थे। जब उनकी माँ खाने को बुलातीं तो बहाना बनाना पड़ता था कि आज भूख नहीं हैं, खाना पचा नहीं आदि। हर बहाने के वक्त उनके दिल को चोट लगती थी। यह झूठ और माँ के सामने! फिर यदि माँ-बाप जान जाएँ कि लड़का माँसाहारी हो गया है, तब तो उनपर वज्रपात हो जाएगा। ये विचार गाँधीजी के हृदय को कुदर रहे थे। इस कारण गाँधीजी ने माता-पिता के जीते-जी माँस न खाने की प्रतिज्ञा ली और माँसाहार की मुल्तवी कर दी। यह निश्चय गाँधीजी ने अपने सहपाठी को सुना दिया और माँसाहार को भी छोड़ दिया।

II. सारांश लिखिए :-

गाँधीजी के सहपाठी ने उन्हें माँसाहार का आदी बनाने के लिए माँस को विभिन्न ढंगों में पकाकर रुचिकर बनाना तथा सजाकर रखना शुरू किया। इसके असर से माँस-रोटी पर जो नफरत थी, वह ढीली पड़ने लगी। माँसवाले पदार्थों की रुचि के लग जाने के कारण, बकरे पर की दया भी गायब हो गयी।

इस प्रकार एक साल बीत गया होगा। इस बीच पाँच-छः बार माँसाहार का मौका मिला था। जब कभी गाँधीजी अपने सहपाठी के साथ भोजन में सम्मिलित होते थे, तब घर में खाना न खाते थे। माँ बुलातीं तो कुछ न कुछ बहाना बनाना पड़ता था माँ के सामने बोले जानेवाले ये झूठ गाँधीजी के मन को कुदरने लगे। वे इस कारण गाँधीजी ने निश्चय किया कि यद्यपि माँस खाना आवश्यक है, उसका प्रचार हिन्दुस्तान में करके भोजन-सुधार करना ज़रूरी है, पर माता-पिता से झूठ-कपट माँसाहार से भी नीच है और उस दिन से माँसाहार को छोड़ दिया।

गाँधीजी ने माँसाहार को तो छोड़ दिया, परन्तु उस सहपाठी का नाता न छोड़ा। गाँधीजी इस बात का भी उल्लेख करना ज़रूरी समझते हैं कि एक बार गाँधी-दंपति के बीच हुए मत-भेद और कलह का कारण भी यह मित्रता थी। गाँधीजी एक प्रेमी पति ही नहीं, बल्कि सहनशील भी थे। लेकिन उस सहपाठी की बातें मानकर अपनी पत्नी को कितने ही कष्ट दिये हैं, वे अपने को क्षमा ही नहीं कर सके। एक सच्ची हिन्दू स्त्री होने के कारण बा ने सारे कष्टों को सहन कर लिया। इसलिए गाँधीजी अपनी पत्नी को सहनशीलता की मूर्ति मानते थे।

जब गाँधीजी ने अहिंसा और ब्रह्मचर्य की महिमा समझी और समझा कि पत्नी, पति की दासी नहीं, बल्कि सहधर्मिणी है। सहधर्मिणी का मतलब है– सुख-दुख में समान भागीदार। जितनी स्वतंत्रता पति को है, उतनी पत्नी को भी है।

****

6. चोरी और प्रायश्चित

मांसाहार के समय के और उसके पहले के अपने कुछ दूषणों का वर्णन करना भी अभी बाकी है। वे या तो विवाह के पहले के हैं या कुछ ही बाद के हैं।

अपने एक रिश्तेदार की सोहबत में मुझे सिगरेट पीने का शौक हुआ। पैसे तो हमारे पास थे नहीं। सिगरेट पीने के किसी फ़ायदे या उसकी गन्ध के मज़े से हम दोनों में से कोई भी परिचित नहीं था, पर धुआँ उड़ाने में ही कुछ मज़ा आता था। मेरे चाचाजी को सिगरेट की आदत थी, और उन्हें तथा औरों को धुआँ उड़ाते हुए देखकर हमें भी 'फूंक लेने' का शौक हुआ। पैसे पास न होने के कारण हमने चाचाजी की सिगरेटों के फेंके जूठे हिस्सों को चुराना शुरू किया।

परन्तु ये टुकड़े कुछ हमेशा नहीं मिल पाते थे, और उसमें से ज़्यादा धुआँ भी नहीं निकल सकता था। इसलिए नौकरों की जेबों में पड़े दो-चार पैसें में से एकाध हम बीच-बीच में चुराने लगे और उससे सिगरेट पीने लगे, पर छिपाकर रखने की समस्या सामने आयी। इतना ख्याल था कि बड़े-बूढ़ों के सामने सिगरेट पीना संभव नहीं है। ज्यों-त्यों दो-चार पाई-पैसे चुराकर कुछ हफ़्ते काम चलाया। इसी बीच सुना कि एक पौधा (इसका नाम भूल गया) होता है, जिसका डंठल सिगरेट की तरह जलता है और वह पिया जा सकता है। हमने उसे लाकर धुआँ उड़ाना शुरू किया।

पर हमें सन्तोष न हुआ। अपनी पराधीनता हमें खलने लगी। यह बड़ा कष्टदायक जान पड़ता कि बड़ों की आज्ञा के बिना कुछ भी न हो सके। हम बहुत परेशान हो गये और अन्त को आत्महत्या करने का निश्चय किया।

परन्तु आत्महत्या कैसे करें? ज़हर कहाँ से लाएँ? हमने सुना कि धतूरे के बीज से मृत्यु होती है। जंगल में घूम-फिरकर बीज लाये। खाने का समय शाम को रखा। केदारजी के मन्दिर की दीप-माला में घी चढ़ाया, दर्शन किये और फिर एकान्त में चले गये, पर ज़हर खाने की हिम्मत न हुई। तत्काल मृत्यु न हो तो? मरने से क्या लाभ होगा? पराधीनता में ही क्यों न पड़े रहें? ये विचार मन में आने लगे। फिर भी दो-चार बीज खा ही डाले, पर ज़्यादा खाने की हिम्मत न हुई, दोनों मौत से डर गये। निश्चय किया कि चलकर रामजी के मन्दिर में दर्शन करें और शान्ति से बैठें एवं आत्महत्या की बात मन से भुला दें।

तब मैंने समझ लिया कि आत्महत्या का विचार करना सरल है, पर आत्महत्या करना नहीं। इससे जब कोई आत्महत्या करने की धमकी देता है, तब मुझ पर उसका बहुत कम असर होता है या यह भी कह सकता हूँ कि बिल्कुल नहीं होता।

आत्महत्या के निश्चय का एक परिणाम यह हुआ कि हमारी जूठी सिगरेट पीने की, नौकरों के पैसे चुराने की और उससे सिगरेट खरीदकर पीने की आदत ही जाती रही। बड़ा होने पर मुझे कभी सिगरेट पीने

की इच्छा तक नहीं हुई, और मैं सदा इस आदत को जंगली, हानिकारक और गन्दी मानता आता हूँ, अब तक मैं यह समझ ही नहीं पाया कि सिगरेट–बीड़ी का इतना ज़बरदस्त शौक दुनिया में क्यों है? रेल के जिस डिब्बे में बीड़ी–सिगरेट का धुआँ उड़ता है, वहाँ बैठना मेरे लिए कठिन हो जाता है और उसके धुएँ से मेरा दम घुटने लगता है।

सिगरेट के टुकड़े और उसके लिए नौकरों के पैसे चुराने के अपराध के सिवाय चौरी का एक और जो अपराध मुझसे बन पड़ा, उसे मैं अधिक गंभीर मानता हूँ। सिगरेट के अपराध के दिनों तो मेरी उम्र 12-13 वर्ष की होगी, शायद इससे भी कम हो। दूसरी चोरी के समय पन्द्रह साल की रही होगी। यह चोरी थी मेरी मांसाहारी भाई के सोने के कड़े से सोना चुराने की। उन्होंने ₹ 25 के लगभग कर्ज़ पर लिया था। हम दोनों भाई इसे चुकाने के चक्कर में थे। मेरे भाई के हाथ में सोने का एक ठोस कड़ा था। उसमें से तोला–भर काट लेना कठिन न था।

कड़ा कटा और कर्ज़ पटा गया, पर मेरे लिए यह बात असह्य हो गयी। आगे चोरी न करने का मैंने निश्चय किया। यह भी सोचा कि पिताजी के सामने इसे कबूलना चाहिए, पर ज़बान खुलनी कठिन थी। यह डर तो नहीं था कि पिताजी मुझे पीटेंगे, क्योंकि याद नहीं पड़ता कि उन्होंने हम भाइयों में से किसी को कभी पीटा हो; पर यह डर ज़रूर था कि वह खुद बड़े दुःखी होंगे और शायद अपना सिर भी धुन डालें! पर सोचा कि यह खतरा उठाकर भी अपना दोष स्वीकार करना ही उचित है! ऐसा लगा कि इसके बिना शुद्धि नहीं होगी।

अन्त में मैंने पत्र लिखकर अपना दोष स्वीकार करते हुए माफ़ी मांगने का निश्चय किया। मैंने पत्र लिखकर अपने हाथ से उन्हें दिया। पत्र में सब दोष स्वीकार किया था और दण्ड मांगा था। विनय की थी कि मेरे अपराध के लिए अपने को कष्ट में न डालें और प्रतिज्ञा की थी कि भविष्य में ऐसा अपराध फिर न करूँगा।

मैंने काँपते हाथों वह पत्र पिताजी के हाथ में दिया। मैं उनके तख्त के सामने बैठ गया। इन दिनों उन्हें भगंदर रोग उभरा हुआ था, इसलिए वह बिस्तरे पर ही पड़े रहते थे। खाट के बदले तख्त काम में लाते थे।

उन्होंने पत्र पढ़ा। आँखों से मोती की बूंदें टपकीं, पत्र भीग गया। तनिक देर के लिए उन्होंनें आँखें मूंदीं और पत्र फाड़ डाला, और पत्र पढ़ने को बैठे हुए थे सो फिर लेट गये।

मैं भी रोया। पिताजी की पीडा का मैंने अनुभव किया। यदि मैं चितेरा होता तो आज भी वह चित्र हूबहू खींचकर रख देता। मेरी आँखों के सामने आज भी वह दृश्य नाच रहा है।

इस मुक्ता–बिन्दुओं के प्रेम–बाण ने मुझे बींध दिया। मैं शुद्ध हो गया। इस प्रेम को वही जान सकता है, जिसे उसका अनुभव हुआ है।

राम–बाण वाग्यां रे होय ते जाणे।

मेरे लिए यह अहिंसा का पदार्थ-पाठ था। उस समय तो मुझे इसमें पितृ-प्रेम का ही अनुभव हुआ था, पर आज मैं इसे शुद्ध अहिंसा का नाम दे सकता हूँ। ऐसी अहिंसा के व्यापक रूप धारण करने पर उससे कौन अछूता रह सकता है? ऐसी व्यापक अहिंसा की शक्ति का अनुमान करना शक्ति से परे है।

ऐसी शान्तिमय क्षमा पिताजी के स्वभाव के प्रतिकूल थी। मैंने सोचा था कि वह गुस्सा होंगे, फटकारेंगे, शायद अपना सिर भी धुन लें, पर उन्होंने तो असीम शान्ति का परिचय दिया। मैं समझता हूँ कि वह दोष की शुद्ध हृदय से की गयी स्वीकृति का परिणाम था। जो मनुष्य अधिकारी व्यक्ति के सामने स्वेच्छापूर्वक अपने दोष शुद्ध हृदय से कह देता है और फिर कभी न करने की प्रतिज्ञा करता है, वह मानो शुद्धतम प्रायश्चित करता है। मैं जानता हूँ कि मेरे इस इकरार से पिताजी मेरे सम्बन्ध में निर्भय हो गये और उनका प्रेम मेरे प्रति और भी बढ़ गया है।

******

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :-

अहिंसा का यदार्थ पाठ

गाँधीजी को एक रिश्तेदार के संग सिगरेट पीने का शौक हुआ। दोनों ने चाचाजी की सिगरेटों के फेंके जूठे हिस्सों को चुराकर सिगरेट पीना शुरू किया। नौकरों की जेबों से पैसे चुराने लगे। अंत में दोनों ने परेशान होकर आत्म-हत्या करने का निश्चय किया। जंगल में घूम-घूमकर धतूरे के बीज लाये। लेकिन उन्हें उसे खाने की हिम्मत नहीं हुई।

एक बार उन्होंने पच्चीस रुपये के कर्ज़ चुकाने के लिए अपने माँसाहारी भाई के सोने के कड़े से तोला-भर कटवाया और कर्ज़ चुकाया। गाँधीजी ने अपने पिताजी से अपने सारे दोष स्वीकार करने का निश्चय किया। भय के मारे, एक पत्र में अपने किये सारे दोष लिखे और अपने पिताजी के हाथ में पत्र दिया। उन्होंने पत्र पढ़ा। तनिक देर के लिए अपनी आँखें मूँदीं, पत्र फाड़ डाला और लेट गये। गाँधीजी पिताजी की पीडा का अनुभव करके खूब रोये और शुद्ध हो गये। यही अहिंसा का पदार्थ-पाठ था।

II. सारांश :

गाँधीजी माँसाहार के समय और बाद के कुछ दूषणों का वर्णन करना उचित समझते हैं। वे या तो विवाह के पहले के हों या बाद के।

उनके एक रिश्तेदार की संगति से उन्हें सिगरेट पीने का शौक हुआ। उनके चाचाजी को सिगरेट की आदत थी। पैसे न होने के कारण दोनों ने चाचाजी की सिगरेटों के फेंके जूठे हिस्सों को चुराना शुरू किया।

लेकिन ये जूठे टुकड़े भी हमेशा नहीं मिलते थे। इसलिए नौकरों की जेबों में से बीच-बीच में एकाध पैसे चुराने लगे और सिगरेट पीने लगे। एक बात उनको बड़ा दुखदायक जान पड़ा और बुरी लगी कि बड़ों की आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं कर सकते। आखिर परेशान होकर दोनों ने आत्महत्या करने का निश्चय किया। बाद में दोनों ने निश्चय किया कि रामजी के मंदिर के दर्शन करें और आत्म-हत्या की बात भूलकर शांति से रहें।

आत्महत्या न करने के दृढ निश्चय का उनमें यह परिणाम हुआ कि जूठी सिगरेट पीने की, नौकरों के पैसे चुराने की और सिगरेट खरीदकर पीने की आदत ही जाती रही। बड़ा होने पर उन्हें कभी सिगरेट पीने की इच्छा तक नहीं हुई। वे सदा इस आदत को जंगली, गंदी और हानिकारक मानने लगे।

सिगरेट पीने और नौकरों के पैसे चुराने के अपराध के सिवाय चोरी का जो दूसरा अपराध गाँधीजी से बन पड़ा, उसे वे अधिक गम्भीर मानते हैं। चोरी थी कि उनके मांसाहारी भाई के सोने की चूड़ी से सोना चुराने की। यह बात गाँधीजी को असह्य हो गयी। आगे चोरी न करने के निश्चय से पिताजी के सामने स्वीकार करना चाहा।

अन्त में उन्होंने अपने पिताजी को एक पत्र लिखा। पत्र में सारा दोष स्वीकार किया था और दण्ड माँगा था। पत्र पढ़ते ही पिताजी की आँखों से बूँदें टपकने लगीं। पिताजी की पीडा का अनुभव करके गाँधीजी भी रोये। पिताजी के मुक्ता-बिन्दुओं के प्रेम-बाणों के बींधने के कारण गाँधीजी शुद्ध हो गये। इस तरह के अहिंसात्मक दण्ड का अनुमान करना हर आदमी की शक्ति से परे है।

******

7. धर्म की झलक

राजकोट में मुझे सब सम्प्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा अनायास मिली। मैंने हिन्दू–धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रति आदर–भाव रखने की तालीम पायी, क्योंकि माता-पिता वैष्णव-मन्दिर जाते, शिवालय जाते तथा राम-मन्दिर भी जाते और हम भाइयों को भी ले जाते अथवा भेज देते थे।

इसके सिवा पिताजी के पास जैन-धर्माचार्यों में से कोई-न-कोई सदैव आते रहते। पिताजी भिक्षा देकर उनका आदर–सत्कार भी करते। वे पिताजी के साथ धर्म तथा व्यवहार-चर्चा किया करते। इसके सिवा पिताजी के मुसलमान तथा पारसी मित्र भी थे। बहुत बार ये अपने-अपने धर्म की बात सुनाया करते और पिताजी आदर व प्रेम के साथ उनकी बातें सुनते। ऐसी चर्चा के समय मैं उनका शुश्रूषक होने के कारण प्रायः ही उपस्थित रहता था। इस सारे वातावरण के प्रभाव से मेरे मन में सब धर्मों के प्रति समभाव पैदा हुआ।

इस प्रकार मेरे मन में अन्य धर्मों के प्रति समभाव आया। यह नहीं कह सकता कि उस समय ईश्वर के प्रति मेरे मन में कुछ आस्था थी, लेकिन एक बात ने मेरे मन में जड़ जमा ली। वह यह कि संसार नीति पर स्थिर है, नीति-मात्र का समावेश सत्य में है, पर सत्य की खोज अभी बाकी है। दिन–दिन सत्य की महिमा मेरी दृष्टि के सामने बढ़ती गयी, सत्य की व्याख्या विस्तार पाती गयी और अब भी पाती जा रही है।

उस समय नीति–विषयक एक छप्पय ने मेरे हृदय में घर कर लिया। अपकार का बदला अपकार नहीं, वरन उपकार ही होना चाहिए, यह वस्तु जीवन–सूत्र बन गयी। उसने मेरे मन पर अपनी सत्ता जमानी शुरू कर दी। अपकारी का भला चाहना और करना इसका मैं अनुरागी बन गया। उसके अगणित प्रयोग किये। वह चमत्कारी छप्पय यह है :

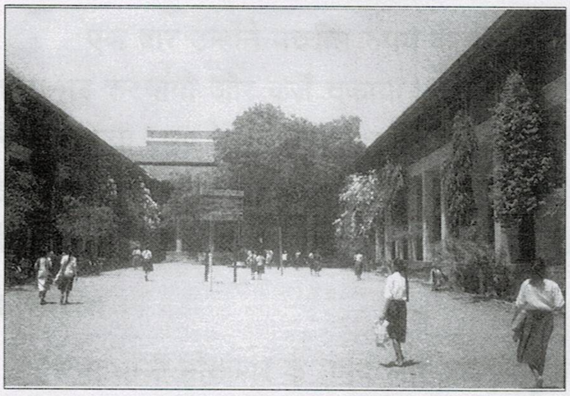

शामलदास कालेज

पाणी आपने पाय, भलुं भोजन तो दीजें;
आवी नमावे शीश, दण्डवत कोड़े कीजे।
आपण घासे दाम, काम महोरोनुं करीए;
आप उगारे प्राण, ते तना दुःखमां मरीए।
गुण केडे तो गुण दश गणो, मन वाचा कर्मे करी;
अवगुण केडे जे गुण करे, ते जगमां जीत्यो सही।[1]

इसका हिन्दी–अनुवाद इस प्रकार है :

जो हमको जलपान करावे, उसको भोजन दीजे;
अपने को जो शीश नवावे, उसे दंडवत कीजे।

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

धर्मों के प्रति समभाव

स्वयं वैष्णव होते हुए भी सभी धर्मों के प्रति समानभाव रखने की शिक्षा गाँधीजी को उनके पिताजी से मिली। उनके माता-पिता वैष्णव थे, फिर भी वे वैष्णव-मन्दिर के अलावा शिवालय भी जाते। इसके सिवा गाँधीजी के पिताजी के पास जैन-धर्माचार्य भी सदैव आते रहते। इसके सिवा मुसलमान, पारसी और ईसाई मित्र भी उनके पिताजी से मिलने आते और अपने-अपने धर्म की बात सुनाया करते।

इन अवसरों पर गाँधीजी भी अपने पिताजी की शुश्रूषा करते हुए साथ रहते। इससे गाँधीजी के मन में सभी धर्मों के प्रति समभाव पैदा हो गया। सर्व-धर्म चर्चाओं को सुनने के फलस्वरूप एक बात ने गाँधीजी के मन में जड़ जमा ली। वह यह थी कि संसार नीति पर स्थित है, नीति-मात्र का समावेश सत्य में है, पर सत्य की खोज अभी बाकी है।

II. सारांश लिखिए :–

राजकोट में गाँधीजी को सभी धर्मों के प्रति समान–भाव रखने की शिक्षा अनायास मिली। वहीं उन्होंने हिन्दू–धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रति आदर–भाव रखने की शिक्षा पायी, क्योंकि माता–पिता वैष्णव होते हुए भी वैष्णव मन्दिर जाते, शिवालय भी जाते। जब कभी वे मन्दिर जाते थे, अपने बच्चों को भी ले जाते थे।

इसके सिवा उनके पिताजी के पास जैन-धर्माचार्यों में से कोई-न-कोई हमेशा आते रहते। वे धर्माचार्य पिताजी के साथ धर्म तथा व्यवहार-चर्चा किया करते थे। उनके पिताजी के मुसलमान, ईसाई तथा फ़ारसी मित्र भी थे। वे भी पिताजी से देर तक अपने-अपने धर्म की बात सुनाया करते थे और पिताजी आदर व प्रेम के साथ उनकी बातें सुना करते थे। इस सर्व-धर्म-वातावरण के प्रभाव से गाँधीजी के मन में सभी धर्मों के प्रति समभाव पैदा हुआ।

गाँधीजी के मन में पहले ही ईश्वर के प्रति आस्था रहती थी। पिताजी के पास आये धर्माचार्यों की व्यवहार-चर्चा सुनते रहने के कारण एक बात ने उनके मन में जड़ पकड़ ली। वह यह थी कि संसार नीति पर स्थिर है, नीति का समावेश सत्य में है।

जिस समय गाँधीजी ने पहचाना कि नीति का समावेश सत्य में है और सत्य की खोज अभी बाकी है, एक नीति-विषयक छप्पय ने उनके हृदय में घर कर लिया। उस छप्पय का प्रभाव गाँधीजी पर इतना पड़ा कि वही उनका जीवन-सूत्र बन गया। वह यही है– "अपकार का बदला अपकार नहीं, वरन् उपहार ही होना चाहिए। इस सूत्र ने उनके मन पर अपनी सत्ता जमाना शुरू कर दिया। इस कारण अपकार करनेवाले का भला चाहना और उसकी भलाई करने का अनुरागी बन गये। गाँधीजी ने इसके अगणित प्रयोग भी अपने जीवन में किये।

******

8. तीन प्रतिज्ञाएँ

मैंने 1887 ईस्वी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। उस समय मुंबई और अहमदाबाद दो परीक्षा-केन्द्र थे। देश की और हमारे कुटुम्ब की गरीबी का यह हाल था कि मेरी स्थिति के काठियावाड़ी को नज़दीकी और सस्ते अहमदाबाद को पसन्द करना स्वाभाविक था। राजकोट से अहमदाबाद मैंने यह पहली बार यात्रा की।

बड़ों की यह इच्छा थी कि पास होने पर कालेज में आगे पढ़ूँ। कालेज मुंबई में भी था और भावनगर में भी; लेकिन कमखर्ची के ख्याल से भावनगर के शामलदास कालेज में पढ़ने का निश्चय हुआ। वहाँ सब-कुछ मुझे मुश्किल लगने लगा। अध्यापक के व्याख्यान में मुझे रस न आता, न वे समझ में ही आते। उसमें अध्यापकों का दोष न था, बल्कि मेरी पढ़ाई ही कच्ची थी। उस समय के शामलदास कालेज के अध्यापक तो प्रथम श्रेणी के समझे जाते थे। पहला टर्म (सत्र) पूरा करके घर आया।

हमारे कुटुम्ब के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान व्यवहार-कुशल ब्राह्मण मावजी दवे थे। उन्होंने हमें सलाह दी- "अब समय बदल गया है। तुम भाइयों में से यदि कोई कबा गाँधी की गद्दी लेना चाहे तो वह बिना पढ़ाई के संभव नहीं है। मेरी राय है कि मोहनदास को आप इसी साल विलायत भेज दें। वहाँ तीन साल रहकर बैरिस्टर बन जाएगा।" और मेरी ओर देखकर पूछा-

"तुम्हें विलायत जाना पसन्द है या यहीं पढ़ते रहना?"

'जो भावे वही बतावे!' मैं कालेज की कठिनाइयों से यों ही तंग आ गया था। मैंने कहा- "विलायत भेजें तो बहुत ही अच्छा।" पर बड़े भाई उलझन में पड़े। पैसों का क्या प्रबन्ध हो? फिर इस उम्र में इतनी दूर कैसे भेज दें?

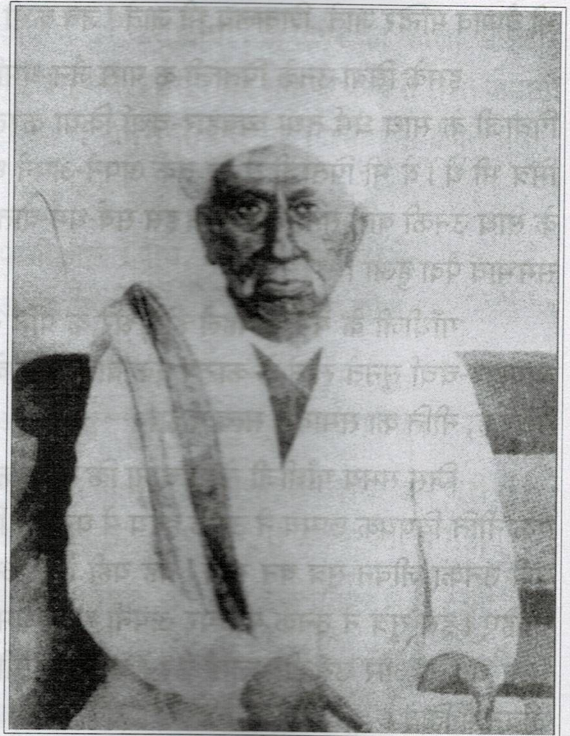

मावजी दवे

माताजी को कुछ न सूझ पड़ा, दूर भेजने की बात ही उन्हें नहीं रुची। उन्होंने विलायत-जीवन के सम्बन्ध में पूछ-ताछ शुरू की। कोई कहता था, नवयुवक विलायत जाकर बिगड़ जाते हैं। कोई कहता था, मांस खाते हैं। कोई कहता, वहाँ शराब के बिना काम ही नहीं चलता। माता ने यह सब मुझे

8. तीन प्रतिज्ञाएँ

मैंने 1887 ईस्वी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। उस समय मुंबई और अहमदाबाद दो परीक्षा-केन्द्र थे। देश की और हमारे कुटुम्ब की गरीबी का यह हाल था कि मेरी स्थिति के काठियावाड़ी को नज़दीकी और सस्ते अहमदाबाद को पसन्द करना स्वाभाविक था। राजकोट से अहमदाबाद मैंने यह पहली बार यात्रा की।

बड़ों की यह इच्छा थी कि पास होने पर कालेज में आगे पढ़ूँ। कालेज मुंबई में भी था और भावनगर में भी; लेकिन कमखर्ची के ख्याल से भावनगर के शामलदास कालेज में पढ़ने का निश्चय हुआ। वहाँ सब-कुछ मुझे मुश्किल लगने लगा। अध्यापक के व्याख्यान में मुझे रस न आता, न वे समझ में ही आते। उसमें अध्यापकों का दोष न था, बल्कि मेरी पढ़ाई ही कच्ची थी। उस समय के शामलदास कालेज के अध्यापक तो प्रथम श्रेणी के समझे जाते थे। पहला टर्म (सत्र) पूरा करके घर आया।

हमारे कुटुम्ब के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान व्यवहार-कुशल ब्राह्मण मावजी दवे थे। उन्होंने हमें सलाह दी- "अब समय बदल गया है। तुम भाइयों में से यदि कोई कबा गाँधी की गद्दी लेना चाहे तो वह बिना पढ़ाई के संभव नहीं है। मेरी राय है कि मोहनदास को आप इसी साल विलायत भेज दें। वहाँ तीन साल रहकर बैरिस्टर बन जाएगा।" और मेरी ओर देखकर पूछा-

"तुम्हें विलायत जाना पसन्द है या यहीं पढ़ते रहना?"

'जो भावे वही बतावे!' मैं कालेज की कठिनाइयों से यों ही तंग आ गया था। मैंने कहा- "विलायत भेजें तो बहुत ही अच्छा।" पर बड़े भाई उलझन में पड़े। पैसों का क्या प्रबन्ध हो? फिर इस उम्र में इतनी दूर कैसे भेज दें?

माताजी को कुछ न सूझ पड़ा, दूर भेजने की बात ही उन्हें नहीं रुची। उन्होंने विलायत-जीवन के सम्बन्ध में पूछ-ताछ शुरू की। कोई कहता था, नवयुवक विलायत जाकर बिगड़ जाते हैं। कोई कहता था, मांस खाते हैं। कोई कहता, वहाँ शराब के बिना काम ही नहीं चलता। माता ने यह सब मुझे

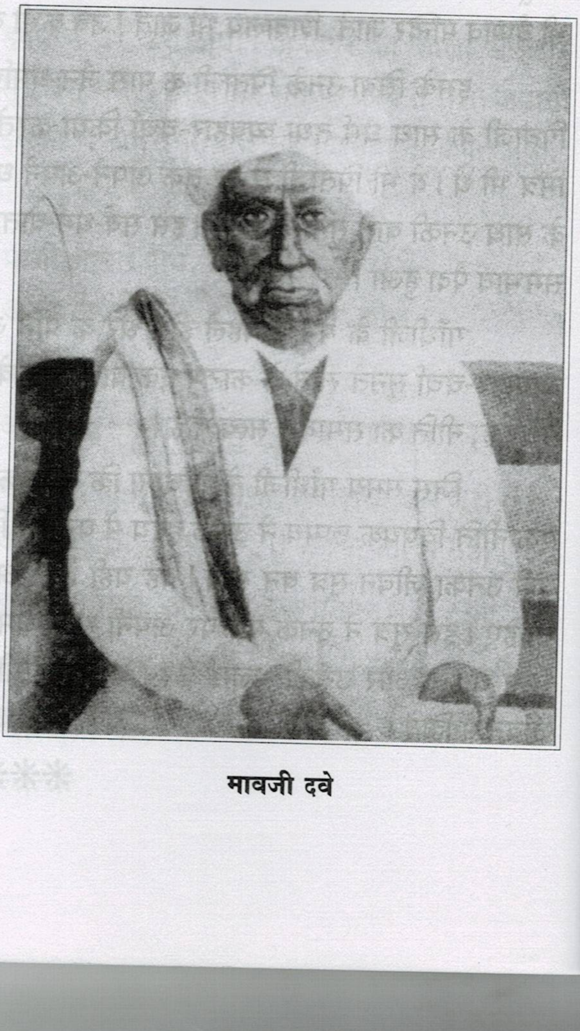

मावजी दवे

सुनाया। मैंने समझाया– "तुम मुझपर विश्वास रखो, मैं विश्वासघात नहीं करूँगा। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं इन तीनों से बचूँगा और अगर ऐसी जोखिम होती तो जोशीजी क्यों जाने की सलाह देते?"

माँ बोलीं– "मुझे तो विश्वास है, पर दूर देश में तेरा कैसे क्या होगा? मेरी तो अकल काम नहीं करती। मैं बेचरजी स्वामी से पूछूँगी।"

बेचरजी स्वामी मोढ़ बनिये थे, जो जैन साधु हो गये थे। जोशीजी की तरह वह भी हमारे सलाहकार थे। उन्होंने मेरी मदद की। उन्होंने कहा– "मैं इससे तीन चीज़ों के बारे में प्रतिज्ञा करा लूँगा। फिर उसे जाने देने में कोई हर्ज नहीं।" तदनुसार मैंने मांस, मदिरा और स्त्री से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। तब माता ने जाने की आज्ञा दे दी।

मेरे विलायत जाने के उपलक्ष में हाई स्कूल में विद्यार्थियों की सभा हुई। राजकोट का एक युवक विलायत जा रहा है, इसपर सबको आश्चर्य हो रहा था। जवाब में कुछ लिखकर ले गया था। पर उसे मुश्किल से पढ़ सका। इतना मुझे याद है कि सिर चकरा रहा था और बदन कांप रहा था।

******

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

विलायत जाने की तैयारी

गाँधीजी भावनगर के शामलदास कालेज में पहला सत्र पूरा करके घर आये। उस समय उनके कुटुम्ब के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान, व्यवहार-कुशल ब्राह्मण मावजी दवे थे। उन्होंने सलाह दी कि मोहनदास को पढ़ाई के लिए आप विलायत भेद दें।

गाँधीजी भी विलायत जाने तैयार थे। पर, पैसों का प्रबन्ध करना मुश्किल रहा। गाँधीजी की माताजी ने विलायती जीवन के सम्बन्ध में पूछताछ शुरू की। कोई कहता कि नवयुवक विलायत जाकर बिगड़ जाते हैं। उनकी माताजी ने जैन साधु बेचरजी स्वामी से पूछा। वे भी गाँधी-परिवार के सलाहकार थे। उन्होंने गाँधीजी से तीन प्रतिज्ञाएँ करायीं और विलायत जाने का मार्ग सुलझा दिया। तदनुसार गाँधीजी ने प्रतिज्ञा की कि वे मांस, मदिरा और स्त्री से दूर रहेंगे। तभी माताजी ने गाँधीजी को विलायत जाने की आज्ञा दी।

सुनाया। मैंने समझाया– "तुम मुझपर विश्वास रखो, मैं विश्वासघात नहीं करूँगा। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि मैं इन तीनों से बचूँगा और अगर ऐसी जोखिम होती तो जोशीजी क्यों जाने की सलाह देते?"

माँ बोलीं– "मुझे तो विश्वास है, पर दूर देश में तेरा कैसे क्या होगा? मेरी तो अकल काम नहीं करती। मैं बेचरजी स्वामी से पूछूँगी।"

बेचरजी स्वामी मोढ़ बनिये थे, जो जैन साधु हो गये थे। जोशीजी की तरह वह भी हमारे सलाहकार थे। उन्होंने मेरी मदद की। उन्होंने कहा– "मैं इससे तीन चीज़ों के बारे में प्रतिज्ञा करा लूँगा। फिर उसे जाने देने में कोई हर्ज नहीं।" तदनुसार मैंने मांस, मदिरा और स्त्री से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। तब माता ने जाने की आज्ञा दे दी।

मेरे विलायत जाने के उपलक्ष में हाई स्कूल में विद्यार्थियों की सभा हुई। राजकोट का एक युवक विलायत जा रहा है, इसपर सबको आश्चर्य हो रहा था। जवाब में कुछ लिखकर ले गया था। पर उसे मुश्किल से पढ़ सका। इतना मुझे याद है कि सिर चकरा रहा था और बदन कांप रहा था।

******

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

विलायत जाने की तैयारी

गाँधीजी भावनगर के शामलदास कालेज में पहला सत्र पूरा करके घर आये। उस समय उनके कुटुम्ब के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान, व्यवहार-कुशल ब्राह्मण मावजी दवे थे। उन्होंने सलाह दी कि मोहनदास को पढ़ाई के लिए आप विलायत भेद दें।

गाँधीजी भी विलायत जाने तैयार थे। पर, पैसों का प्रबन्ध करना मुश्किल रहा। गाँधीजी की माताजी ने विलायती जीवन के सम्बन्ध में पूछताछ शुरू की। कोई कहता कि नवयुवक विलायत जाकर बिगड़ जाते हैं। उनकी माताजी ने जैन साधु बेचरजी स्वामी से पूछा। वे भी गाँधी-परिवार के सलाहकार थे। उन्होंने गाँधीजी से तीन प्रतिज्ञाएँ करायीं और विलायत जाने का मार्ग सुलझा दिया। तदनुसार गाँधीजी ने प्रतिज्ञा की कि वे मांस, मदिरा और स्त्री से दूर रहेंगे। तभी माताजी ने गाँधीजी को विलायत जाने की आज्ञा दी।

II. सारांश लिखिए :–

गाँधीजी ने सन् 1887 में मेट्रिक परीक्षा पास की। उसके बाद कालेज की पढ़ाई के लिए उनको भावनगर भेजा गया। वहाँ वे किसी प्रकार पहला सत्र पूरा करके घर आये।

गाँधी-परिवार के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान व्यवहार-कुशल ब्राह्मण-मावजी दवे थे। उन्होंने सलाह दी– "मेरी राय है कि मोहनदास को आप इसी साल विलायत भेज दें। वहाँ वह तीन साल रहकर बैरिस्टर बन जाएगा।" गाँधीजी को विलायत जाना पसन्द था। पर गाँधीजी के बड़े भाई उलझन में पड़े कि पैसों का क्या प्रबन्ध हो और इस छोटी उम्र में गाँधीजी को इतनी दूर कैसे भेजें।

गाँधीजी की माताजी को कुछ सूझा ही नहीं था। विलायत भेजने की बात उन्हें नहीं रुची। उन्होंने विलायती जीवन के बारे में जान-पहचानवालों से पूछताछ शुरू की। कोई कहता था, विलायत जाकर नवयुवक बिगड़ जाते हैं। कोई कहता था कि विलायक में माँस खाते हैं। दूसरा कोई कहता था, विलायत में शराब के बिना काम ही नहीं चलता। माताजी ने ये सब गाँधीजी को सुनाये।

गाँधीजी ने अपनी माँ को समझाया– "तुम मुझपर विश्वास रखो। मैं विश्वातघात नहीं करूँगा। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि इन तीनों से बचूँगा।"

माताजी बोलीं– "मुझे तो विश्वास है, पर मेरी तो अकल काम नहीं करती। मैं बेचरजी स्वामी से पूछूँगी।"

बेचरजी स्वामी भी गाँधी-परिवार के सलाहकार थे। उन्होंने माताजी से कहा– "मैं इससे (गाँधीजी से) तीन चीज़ों के बारे में प्रतिज्ञा करा लूँगा। फिर उसे जाने देने में कोई हर्ज़ नहीं।" तदनुसार गाँधीजी ने माताजी से माँस, मदिरा और स्त्री से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञा से माताजी संतुष्ट हुईं और गाँधीजी को विलायत जाने की आज्ञा दी।

इस प्रकार गाँधीजी को विलायत जाने की अनुमति बड़ी कठिनाई से मिली।

******

9. पहला अनुभव

4 सितम्बर सन् 1888 को मैंने मुंबई बन्दर छोड़ा। जहाज़ में मुझे सामुद्रिक कष्ट तो कुछ भी न उठाना पड़ा। पर ज्यों-ज्यों दिन जाते, मैं परेशान हो रहा था। स्टुअर्ट (जहाज़ के भोजन परिचारक) के साथ बोलते हुए झेंपता, क्योंकि अंग्रेज़ी में बातचीत करने की आदत न थी। मेरे एक साथी मजूमदार को छोड़कर, जो राजकोट के वकील थे और बैरिस्टर होने विलायत जा रहे थे, बाकी सब यात्री अंग्रेज़ थे। उनके सामने बोलते न बनता था। वे मुझसे बोलने की चेष्टा करते, तो उनकी बात मेरी समझ में न आती और यदि समझ भी लेता तो जवाब देना नहीं सूझता। हर वाक्य बोलने के पहले मन में जमाना पड़ता था। छुरी-काँटे से खाना न आता था और पूछने का साहस ही न होता कि उसमें बिना मांस की चीज़ें क्या-क्या हैं? इस कारण में भोजन की मेज़ पर तो कभी गया ही नहीं। केबिन-कोठरी-में ही खा लेता था। अपने साथ जो मिठाइयाँ वगैरा ले गया था, उन्हीं पर गुज़र किया। मजूमदार को तो कोई झिझक न थी। वह सबके साथ हिल-मिल गये। डेक पर भी जहाँ जी चाहे घूमते-फिरते। मैं तो दिन-भर केबिन में पड़ा रहता। डेक पर जब लोगों की भीड़ कम देखता, तब थोड़ी देर के लिए जाकर वहाँ बैठ जाता। मजूमदार मुझे समझाते कि सबके साथ मिला-जुला करो। कहते कि वकील को तो बातूनी होना चाहिए। वकील की हैसियत से वह अपना अनुभव भी सुनाते। कहते- "अंग्रेज़ी हमारी मातृभाषा नहीं है। इसलिए बोलने में भूलें होंगी ही। बोलने में सकुचाना नहीं चाहिए।" परन्तु में अपनी भीरुता नहीं छोड़ पाता था।

मजूमदार

मुझपर तरस खाकर एक भले अंग्रेज़ ने मुझसे बातचीत करना शुरू किया। मैं क्या खाता हूँ, कौन हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, क्यों किसी के साथ बातचीत नहीं करता, इत्यादि सवाल पूछे। मुझे खाने में साथ आने को कहा।

मांस न खाने के मेरे आग्रह की बात सुनकर वह हँसे और मुझपर रहम खाकर बोले– "यहाँ तो (पोर्ट सईद पहुँचने के पहले) सब ठीक–ठाक है, परन्तु बिस्के की खाड़ी में पहुँचने पर तुम्हें अपने विचार बदलने पड़ेंगे। इंग्लैंड में तो इतनी ठंड पड़ती है कि मांस के बिना काम चल ही नहीं सकता।"

मैंने कहा– "मैंने तो सुना है कि वहाँ लोग बिना मांसाहार के रह सकते हैं।"

वह बोले– "यह झूठ है। जान–पहचानवालों में कोई निरामिषभोजी नहीं है। मैं शराब पीने के लिए तुमसे नहीं कहता, पर मैं समझता हूँ मांस तो तुम्हें अवश्य खाना चाहिए।"

मैंने कहा– "आपकी सलाह के लिए मैं आपका आभारी हूँ, पर मांसाहार न करने की अपनी माता से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। यदि उनके बिना निर्वाह हो ही न सका तो मैं वापस हिन्दुस्तान लौट जाऊँगा, पर मांस तो हरगिज़ नहीं खाऊँगा।"

बिस्के की खाड़ी आयी। वहाँ भी मुझे न तो मांस की आवश्यकता मालूम हुई और न मदिरा की ही।

दुःख–सुख सहते यात्रा पूरी करके साउदेम्पटन बन्दर पर आ पहुँचे। मुझे याद पड़ता है उस दिन शनिवार था। मैं जहाज़ पर काले कपड़े पहनता था। मित्रों ने मेरे लिए सफ़ेद फलालैन का सूट भी बनवा दिया था। विलायत में उतरने पर उसे पहनने का निश्चय किया। यह समझकर कि सफ़ेद कपड़े ज़्यादा अच्छे लगेंगे, यह सूठ पहनकर में जहाज़ से उतरा। सितम्बर के अन्तिम दिन थे। ऐसे कपड़ों में मैंने अकेले अपने को ही वहाँ पाया। मेरे सन्दूक और उनकी कुंजियां ग्रिंडले कम्पनी एजेन्ट ले गया था। जैसा और लोग करते हैं, वैसा मुझे भी करना चाहिए, यह समझकर मैंने अपनी तालियाँ भी उन्हें दे दी थीं।

मेरे पास चार परिचय–पत्र थे– एक डॉक्टर प्राणजीवन मेहता के नाम, दूसरा दलपतराय शुक्ल के नाम, तीसा प्रिंस रणजीतसिंहजी के नाम और चौथा दादभाई नौरोजी के नाम। किसी ने सलाह दी थी कि विक्टोरिया होटल में ठहरना ठीक होगा। इसलिए मजूमदार और मैं वहाँ गये। मैं तो अपनी सफ़ेद कपड़ों की शर्म से ही दबा जा रहा था। फिर होटल में जाकर खबर लगी कि कल रविवार होने के कारण सोमवार तक ग्रिंडले के यहाँ से सामान नहीं आएगा। इससे मैं बड़ी परेशानी में पड़ गया।

मैंने साउदेम्पटन से ही डॉक्टर मेहता को तार दे दिया था। वह सात–आठ बजे आये। उन्होंने प्रेम–पूर्ण विनोद किया। बातों–बातों में मैंने अनजाने उनकी रेशमी रोयेंदार टोपी देखने के लिए उठा ली और उल्टा हाथ फेरने लगा। टोपी के रोयें सीधे हो गये। डॉक्टर मेहता ने देखा। तुरन्त ही मुझे रोका, पर अपराध

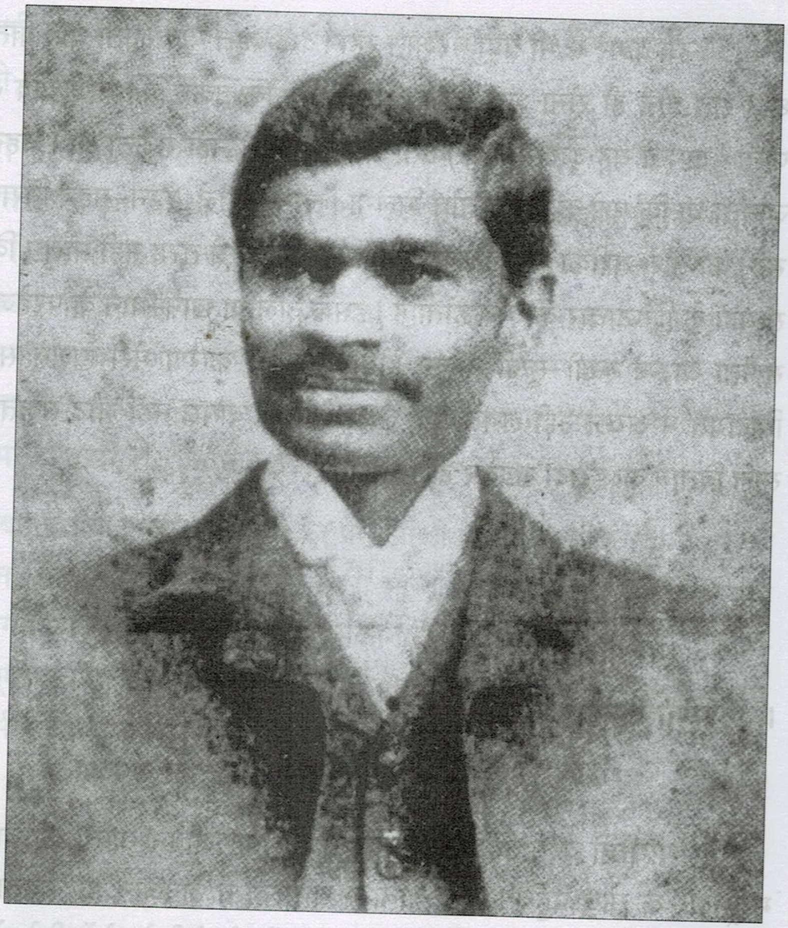

डॉ. प्राणजीवन मेहता

तो हो ही चुका था। उनके रोकने का इतना ही नतीजा हुआ कि भविष्य में ऐसा अपराध न हो।

यहीं से यूरोपियन रीति-रिवाज़ की शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। डॉक्टर मेहता हँस-हँसकर बहुतेरी बातें समझाते जाते थे। किसी की चीज़ नहीं छूनी चाहिए, किसी से जान-पहचान होते ही जो बातें हिन्दुस्तान में सहज ही पूछी जा सकती हैं, वे यहाँ नहीं पूछनी चाहिए, बातें करते हुए ज़ोर से नहीं बोला जाता। हिन्दुस्तान में साहबों के साथ बातें करते हुए 'सर' कहने का जो रिवाज़ है, वह अनावश्यक है। यहां 'सर' तो नौकर अपने मालिक को अथवा अपने अफ़सरों को कहता है, आदि। फिर उन्होंने होटल में रहने के खर्च पर भी बातें कीं और बताया कि किसी कुटुम्ब के साथ रहना ठीक होगा। इस सम्बन्ध में अधिक विचार सोमवार तक के लिए स्थगित रहा।

होटल तो हम दोनों को सांसत-घर-सा लगा। यह होटल था भी महँगा। माल्टा से एक सिन्धी सज्जन सवार हुए थे। उनसे मजूमदार की अच्छी पट गयी थी। सिन्धी यात्री लन्दन के अच्छे जानकार थे। उन्होंने हमारे लिए किराये पर दो कमरे ले लेने का भार उठाया। हमने स्वीकृति दी और सोमवार को सामान मिलते ही होटल का बिल चुकाकर उन कमरों में चले गये। मुझे याद है कि होटल का बिल लगभग तीन पौंड मेरे हिस्से में आया था। मैं तो भौचक्का रह गया। तीन पौंड देकर भी भूखा ही रहा! वहाँ का कोई खाना न रुचा। एक चीज़ ली, नहीं रुची, दूसरी ली। पर पैसे तो दोनों के ही चुकाने पड़े। मैं अभी तक प्रायः मुंबई से लाये अपने खाने के सामान पर ही दिन काट रहा था।

उस कमरे में भी बड़ा परेशान रहा। देश बहुत याद आता था। माता का प्रेम आँखों के सामने नाचता था। रात होते ही रोना शुरू होता। घर की अनेक प्रकार की बातें याद आतीं। उनसे नींद भला कहाँ आ पाती? अपनी यह दुःख–गाथा किसी से कह भी तो नहीं सकता था। कहने से लाभ भी क्या था? मैं खुद न जानता था कि मुझे काहे से संतोष मिलेगा। लोग निराले, रहन–सहन निराली, मकान भी निराले और घरों में रहने का तौर–तरीका भी निराला। फिर यह भी अच्छी तरह नहीं मालूम कि क्या बोलने से अथवा क्या करने से यहाँ के शिष्टाचार का भंग होता है। इसके अलावा खान–पान के परहेज अलग और जिन चीज़ों को मैं खा सकता था, वे रूखी–सूखी मालूम होती थीं। इस कारण मेरी हालत सांप–छछून्दर जैसी हो गयी। इधर विलायत में अच्छा नहीं लगता था, उधर देश भी वापस नहीं लौट सकता था। विलायत आया तो था तीन साल बिताने का इरादा रखकर ही।

******

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

डॉ. मेहता का उपदेश

गाँधीजी वे साउदेम्पटन बन्दर से डॉ. प्राणजीवन मेहता को तार दिया और विक्टोरिया होटल में मजूमदार के साथ पहुँचे। बातों-बातों में गाँधीजी ने अनजाने डॉ. मेहता की रेशमी रोयेंदार टोपी देखने के लिए उठा ली और उसपर उल्टा हाथ फेरने लगे तो टोपी के रोयें सीधे हो गये। तुरन्त ही डॉ. मेहता ने रोका और यूरोपियन रीति-रिवाज़ की शिक्षा समझा दी कि किसी की चीज़ नहीं छूनी चाहिए। किसी से जान-पहचान होते ही जो बातें हिन्दुस्तान में सहज ही पूछी जा सकती हैं, वे यहाँ नहीं पूछनी चाहिए। फिर उन्होंने होटल में ठहरने के खर्च पर बातें कीं और बताया कि किसी कुटुम्ब के साथ रहना ठीक होगा। इस प्रकार डॉ. मेहता गाँधीजी से प्रेम-पूर्व विनोद करते थे और एक शुभचिंतक की हैसियत से महत्वपूर्ण सुझाव देते थे।

II. सारांश लिखिए :–

4 सितम्बर सन् 1888 को गाँधीजी ने मुंबई बन्दर छोड़ा। जहाज़ में मजूमदार को छोड़कर बाकी सब यात्री अंग्रेज़ थे। वे गाँधीजी से बोलने की चेष्टा करते, तो उनकी बातें गाँधीजी की समझ में न आती थीं। यदि समझ भी लेते तो जवाब नहीं दे सकते थे।

गाँधीजी पर तरस खाकर एक भले अंग्रेज ने उनसे बातचीत करना शुरू किया और खाने में साथ आने का आग्रह किया। माँस न खाने की उनकी प्रतिज्ञा पर हँसा और बोला कि इंग्लैंड में तो इतनी ठंड पड़ती

है कि माँस के बिना काम चल ही नहीं सकता। गाँधीजी दृढता से बोले कि यदि माँस के बिना निर्वाह हो ही न सकता तो वे हिन्दुस्तान लौट जाएँगे, पर माँस तो हरगिज़ नहीं खाएँगे।

दुख-सुख सहते, यात्रा पूरी करके साउदेम्पटन बन्दर आ पहुँचे। साउदेम्पटन से गाँधीजी ने डाक्टर मेहता को तार दे दिया था। वे सात-आठ बजे आये। डॉक्टर मेहता अंग्रेज़ी रीति-रिवाज़ समझाने लगे कि किसी की चीज़ नहीं छूनी चाहिए। किसी से जान-पहचान होते ही जो बातें हिन्दुस्तान में सहज ही पूछी जा सकती हैं, वे यहाँ नहीं पूछनी चाहिए। ज़ोर से बातें नहीं करनी चाहिए। हिन्दुस्तान में साहबों के साथ 'सर' कहने का जो रिवाज़ है, यहाँ वह अनावश्यक है आदि। फिर उन्होंने बताया की होटल में खर्च ज़्यादा पड़ेगा, इसलिए किसी कुटुम्ब के साथ रहना ठीक होगा। माल्टा से एक सिन्धी सज्जन सवार हुए थे। वे लन्दन के अच्छे जानकार थे। उन्होंने किराये पर दो कमरे लेने का भार उठाया।

कमरे में गाँधीजी को देश बहुत याद आता था। माता का प्रेम आँखों के सामने नाचता था। घर की अनेक बातें याद आती थीं और रोना आता था। इसलिए गाँधीजी सो भी नहीं सकते थे। अपनी दुख-गाथा किसी से भी नहीं कह सकते थे। लोग निराले, रहन-सहन निराली, मकान निराले और घरों में रहने का तौर-तरीका भी निराला। उन्हें नहीं मालूम था कि क्या करने से यहाँ के शिष्टाचार का भंग होता है। इस कारण गाँधीजी की हालत साँप-छछून्दर जैसी हो गयी।

✻✻✻✻✻✻

10. प्रतिज्ञा ने रक्षा की

डॉक्टर मेहता सोमवार को विक्टोरिया होटल में मुझसे मिलने गये। वहाँ उन्हें हमारे नये मकान का पता लगा। वह वहाँ आये। हमारा कमरा आदि देखा और गर्दन हिलायी– "यह जगह काम की नहीं है। इस देश में आकर महज पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा यहाँ का अनुभव प्राप्त करना ज़्यादा ज़रूरी है। इसके लिए किसी कुटुम्ब में रहने की ज़रूरत है, पर फिलहाल कुछ बातें सीखने के लिए तुम्हें एक मित्र के यहाँ ले चलूँगा।"

मैंने सधन्यवाद उनकी बात मान ली और डॉक्टर मेहता के साथ उन मित्र के यहाँ गया। उन्होंने मेरी खातिर–तवाजा में किसी बात की कसर न रखी। मुझे भाई की तरह रखा, अंग्रेज़ी रीति–रिवाज़ सिखाये। अंग्रेज़ी में बातचीत करने की आदत भी उन्होंने ही डलवायी।

परन्तु मेरे भोजन का सवाल बड़ा विकट हो गया। बिना नमक, मिर्च और मसाले का साग भाता नहीं था। मालकिन बेचारी मेरे लिए पकाती भी क्या? सवेरे जई का दलिया बनाती, उससे तो मेरा पेट भर जाता, पर दोपहर को और शाम को हमेशा भूखा रहता, मित्र मांसाहार करने को रोज़ समझाते। मैं प्रतिज्ञा की बाधा बताकर चुप ही रहता। वह रोज़ दलीलें दिया करते। सौ दुःखों को हरनेवाली एक दवा, 'नहीं' मेरे पास थी। मित्र ज्यों–ज्यों मुझे समझाते, त्यों–त्यों मेरी दृढता बढ़ती जाती। रोज़ मैं ईश्वर से रक्षा की प्रार्थना करता और रोज़ वह पूरी होती। मैं यह तो नहीं जानता था कि ईश्वर क्या चीज़ है, पर श्रद्धा अपनी काम कर रही थी।

एक दिन उन मित्र ने मेरे सामने बेंयम की पुस्तक पढ़नी शुरू की। उपयोगितावाद का विषय पढ़ा। मैं घबराया। भाषा ऊँची थी। मैं बड़ी कठिनाई से समझता था। उन्होंने उसका विवेचन किया। मैंने उत्तर दिया– "क्षमा चाहता हूँ। मैं इतनी बातें नहीं समझ सकता। मैं मांस खाने की उपयोगिता स्वीकार करता हूँ, परन्तु प्रतिज्ञा के बन्धन को मैं नहीं तोड़ सकता। इसके सम्बन्ध में वाद–विवाद भी नहीं करना चाहता। मैं जानता हूँ कि तर्क में भी आपसे नहीं जीत सकता, पर मुझे मूर्ख समझकर, या हठी समझकर ही इस बारे में क्षमा कीजिए। आपके प्रेम का मैं कायल हूँ। आपका उद्देश्य समझता हूँ और आपको मैं अपना परम हितेच्छु मानता हूँ। यह भी देखता हूँ कि आपको मेरी हालत पर दुःख होता है, पर मैं विवश हूँ। प्रतिज्ञा नहीं टूट सकती।"

मित्र देखते रह गये। उन्होंने पुस्तक बन्द कर दी। "बस, अब मैं दलील नहीं करूँगा।" – कहकर वह चुप हो गये। मैं खुश हुआ। इसके बाद उन्होंने बहस करना छोड़ दिया।

पर मेरे विषय में उनकी चिन्ता दूर न हुई। वह सिगरेट पीते थे, शराब पीते थे, पर इनमें से एक के लिए भी मुझसे नहीं कहा। उलटे उसे न करने की हिदायत दी। पर उनकी सारी चिन्ता यह थी कि मांसाहार के बिना मैं कमज़ोर हो जाऊँगा और इंग्लैंड में आज़ादी से न रह सकूँगा।

यों महीना–भर मैं नौसिखिया बनकर रहा।

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

प्रतिज्ञा बनाम उपयोगितावाद

गाँधीजी अपनी माताजी के सामने प्रतिज्ञा कर चुके थे कि वे माँस नहीं खाएँगे, शराब नहीं पिएँगे और परायी स्त्री को माँ-बहन समझेंगे। इन प्रतिज्ञाओं का अपने जीवन-पर्यन्त पालन करने का भी दृढ निश्चय कर लिया था। जब गाँधीजी विक्टोरिया होटल में ठहरे थे, तब डॉ. मेहता उनसे मिलने आये। उन्होंने गाँधीजी को एक उम्मीदवार के यहाँ ले गये। उन मित्र ने गाँधीजी को माँसाहार करने को रोज़ समझाते, पर गाँधीजी इनकार करते थे।

एक दिन उन मित्र ने उपयोगितावाद विषय संबंधी पुस्तक पढ़नी शुरू की। मित्र ने गाँधीजी को उस पुस्तक का विवेचन करते हुए माँसाहार की आवश्यकता पर ज़ोर डाला। गाँधीजी ने कहा– “मैं माँसाहार खाने की उपयोगिता स्वीकार करता हूँ, परन्तु प्रतिज्ञा के बन्धन को मैं नहीं तोड़ सकता। मैं आपको अपना परम हितेच्छु समझता हूँ, पर मैं विवश हूँ, प्रतिज्ञा नहीं टूट सकती।” इस प्रकार प्रतिज्ञा ने उपयोगितावाद पर जीत पायी।

II. सारांश लिखिए :–

डॉक्टर मेहता गाँधीजी के नये मकान का पता लगाकर वहाँ गये। उन्होंने सोचा कि गाँधीजी किसी कुटंब के साथ रहें, तो अच्छा है। डॉ. मेहता उन्हें एक मित्र के यहाँ ले गये। उन मित्र ने गाँधीजी के आतिथ्य–सत्कार में कोई कमी नहीं रखी। गाँधीजी को भाई की तरह रखा और अंग्रेज़ी रीति-रिवाज़ सिखाये। अंग्रेज़ी में बातचीत करने की आदत भी सिखायी।

इन सबके होने पर भी गाँधीजी के भोजन का सवाल विकट होता गया। मित्र मांसाहार करने को रोज़ समझाते। लेकिन गाँधीजी अपनी प्रतिज्ञा की बाधा बताकर चुप ही रहते। एक दिन मित्र ने गाँधीजी के सामने बेंयम की पुस्तक पढ़नी शुरू की। विषय उपयोगितावाद का था। गाँधीजी घबराये। क्योंकि उस पुस्तक की भाषा ऊँची थी। गाँधीजी कठिनाई से समझते थे। मित्र ने विषय का विवेचन किया। गाँधीजी ने तुरंत उत्तर दिया– “क्षमा चाहता हूँ। मैं माँस खाने की उपयोगिता स्वीकार करता हूँ, परन्तु प्रतिज्ञा के बन्धन को मैं नहीं तोड़ सकता। मैं जानता हूँ कि तर्क में भी आपसे नहीं जीत सकता, पर मुझे मूर्ख समझकर या हठी समझकर ही इस बारे में क्षमा कीजिए। आपके प्रेम का मैं कायल हूँ। आपका उद्देश्य समझता हूँ और आपको मैं अपना परम हितेच्छु मानता हूँ। यह भी देखता हूँ कि आपको मेरी हालत पर दुख होता है, पर मैं विवश हूँ। प्रतिज्ञा नहीं टूट सकती।”

मित्र देखते रह गये और पुस्तक बन्द कर दी। वे गाँधीजी की प्रतिज्ञा पर खुश हुए। साथ ही यह कहकर चुप हो गये कि आगे वे माँसाहार करने के संबंध में वाद-विवाद नहीं करेंगे। उस दिन से मित्र ने तर्क करना ही छोड़ दिया।

******

11. सभ्य बनने के प्रयत्न में

अब तक मेरे विषय में मित्रों की चिन्ता दूर नहीं हुई थी। उन्होंने प्रेमवश यह मान लिया था कि मांसाहार न करने से मैं कमज़ोर हो जाऊँगा, इतना ही नहीं बल्कि भोंदू रह जाऊँगा, क्योंकि मांसाहार न करने से अंग्रेज़ समाज में मिल-जुल न सकूँगा। मेरे अन्नाहार–संबंधी पुस्तकें पढ़ने का उनको पता था। उन्हें शंका हुई कि इन विषयों को पढ़कर मैं सनक जाऊँगा और प्रयोग में मेरा जन्म व्यर्थ जाएगा। मैं कर्त्तव्य–च्युत हो जाऊँगा और एक पढ़ा–लिखा मूर्ख ही रहूँगा।

पर अब मेरे मन में यह आया कि मुझे उनकी परेशानी दूर कर देनी चाहिए। मैंने निश्चय किया कि मैं अपने को जंगली न कहलाने दूँगा, सभ्यों के लक्षण सीखूँगा और दूसरी तरह से समाज–में सम्मिलित होने के योग्य बनकर अपने अन्नाहार की विचित्रता पर पर्दा डालूँगा। इसीलिए अब मैंने 'अंग्रेज़ी–सभ्यता' सीखने का मार्ग पकड़ा।

मेरे कपड़े थे तो विलायती, परन्तु मुंबई–काट के थे। वे उच्च्य अंग्रेज़ी–समाज में न फबेंगे, इस विचार से मैंने 'आर्मी और नेवी' स्टोर में दूसरे कपड़े बनवाये। उन्नीस शिलिंग की 'चिम' की हैट (टोपी) ली। इससे भी सन्तोष न हुआ तो बाण्ड स्ट्रीट में, जहाँ शौकीन लोगों के कपड़े सिलते थे, दस पौंड को देकर कुछ कपड़े बनवाये। सीधे और शाहदिल बड़े भाई से खास तौर पर दोनों जेबों में लटकायी जानेवाली असली सोने की चेन मंगवायी। वह भी आयी। तैयार बंधी टाई पहनने का रिवाज़ न था। इसलिए टाई बाँधने की कला सीखी। देश में तो आइना सिर्फ़ हज़ामत के दिन ही देखने का काम पड़ता था, पर यहाँ तो बड़े आइने के सामने खड़े रहकर टाई ठीक-ठीक बाँधने में और बालों की पटियाँ पारने और माँग काढ़ने में दस मिनट बरबाद होते थे। फिर मेरे बाल मुलायम न थे। उन्हें ठीक–ठीक संवारे रखने के लिए ब्रुश के

लंदन में छात्र के रूप में

साथ नित्य लड़ाई होती और टोपी पहनते और उतारते समय हाथ तो मानो माँग संवारने के लिए सिर पर पहुँचते ही रहते थे। इसके सिवा जब कभी सभ्य समाज–मैं बैठता, तो माँग पर हाथ फेरकर बालों को दरुस्त रखने की सभ्य क्रिया होती रहती थी।

परन्तु इतनी टीप–टाप ही बस न थी। अकेली सभ्य पोशाक से थोड़े ही कोई सभ्य हो जाता है। इसलिए सभ्यता की और भी कितनी ही ऊपरी बातें मालूम कर ली थीं। अब उनमें कुछ प्रवीणता प्राप्त करनी थी। सभ्य पुरुष को नाचना जानना चाहिए, फ्रेंच भाषा अच्छी आनी चाहिए, क्योंकि फ्रेंच एक तो इंग्लैंड के पड़ौसी फ्रांस की भाषा थी, दूसरे सारे यूरोप की राष्ट्रभाषा भी थी। फिर मुझे यूरोप–भ्रमण करने की भी इच्छा थी। इसके सिवा सभ्य पुरुषों को लच्छेदार व्याख्यान देना भी आना चाहिए। मैंने नाचना सीख लेने का निश्चय किया और क्लास में भरती हुआ। एक तिमाही के तीन पोंड फीस के दिये। कोई तीन सप्ताह में पाँच–छः पाठ पढ़े होंगे। ठीक ताल पर पाँव नहीं पड़ते थे। पियानो बजता था, पर यह न जान पड़ता था कि यह क्या कह रहा है। 'एक, दो, तीन' का क्रम चलता, पर इनके बीच का अन्तर तो उस बाजे से ही मालूम होता था, जो मेरे लिए अगम्य था। तो फिर? फिर तो बाबाजी की बिल्लीवाली बात! चूहों को भगाने के लिए बिल्ली, और बिल्ली के लिए गाय, होते–होते बाबाजी का परिवार बढ़ा। सोचा, वायलिन बजाना सीख लूँ, तो सुर और ताल का ज्ञान हो जाएगा। तीन पोंड वायलिन खरीदने में बिगाड़े और उसे सीखने के लिए कुछ दक्षिणा दी। भाषण–कला सीखने के लिए तीसरे उस्ताद का घर खोजा। उसे भी एक गिन्नी की भेंट तो चढ़ानी ही पड़ी। उसकी प्रेरणा से 'बेलका स्टैंडर्ड एलोक्यु–शनिस्ट' खरीदा। पिटके भाषण से श्री गणेश हुआ।

पर इन बेल साहब ने मेरे कान में 'बेल' (घंटी) बजायी। मैं जागा।

"मुझे कहाँ इंग्लैंड में ज़िन्दगी बितानी है? लच्छेदार भाषण देना सीखकर भी क्या करूँगा? नाच–नाचकर मैं सभ्य कैसे बनूँगा। वायलिन तो देश में भी सीखा जा सकता है। मैं विद्यार्थी हूँ। मुझे तो विद्या–धन के संग्रह में लगना चाहिए; मुझे अपने धन्धे से सम्बन्ध रखनेवाली तैयारी करनी चाहिए। अपने सदा चार से मैं सभ्य समझा जा सकूँ तो अलबत्ता ठीक है, नहीं तो मुझे यह लोभ छोड़ देना चाहिए।"

इस धुन में उपर्युक्त आशय का पत्र मैंने भाषण–शिक्षक को लिख भेजा। उससे मैंने दो या तीन पाठ ही पढ़े थे। नृत्य–शिक्षिका को भी वैसा ही पत्र लिख भेजा। वायलिन–शिक्षिका के यहाँ वायलिन लेकर पहुँचा और उससे कह आया कि जो दाम मिले, लेकर बेच दो। उससे कुछ मित्रता–सी हो गयी थी, इसलिए उससे मैंने मोह का भी ज़िक्र कर दिया। नाच इत्यादि जंजाल से छूट जाने की बात उसे पसन्द आयी।

सभ्य बनने की मेरी यह सनक तो कोई तीन महीने चली होगी, किन्तु कपड़ों की तड़क–भड़क बरसों तक चलती रही। पर अब मैं विद्यार्थी बन गया था।

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

बाबाजी की बिल्लीवाली सीख

गाँधीजी ने अन्नाहार की विचित्रता पर पर्दा डालने के लिए अंग्रेज़ी सभ्यता सीखने का मार्ग पकड़ा। पहले पहल अपने कपड़ों को बदला। अपने भाई से सोने की जंज़ीर मंगवाई। टाई बाँधने की कला सीखी। बड़े आइने के सामने दस-पंद्रह मिनट खड़े रहकर बालों की पटियाँ पारने और माँग काढ़ना शुरू किया। टोपी पहनी। इस सभ्य पोशाक से भी गाँधीजी संतुष्ट न हुए।

वे नाचना सीखने के लिए क्लास में भर्ती हुए। एक महीने के लिए तीन पौंड फ़ीस देना पड़ता था। बाद में यह सोचकर नाचना छोड़ दिया कि यह उनके बूते की बात नहीं है। उसके बाद सोचा, वायलिन बजाना सीख लें, तो सुर-ताल का ज्ञान हो जाएगा। इसलिए तीन पौंड वायलिन खरीदने में बिगाड़े और उसे सीखने के लिए कुछ दक्षिणा दी। भाषण-कला सीखने के लिए तीसरे उस्ताद का घर खोजा। उस्ताद को भी एक गिन्नी की भेंट चढ़ानी पड़ी। इन सबके बीच फ्रेंच सीखने का भी प्रयास किया। इस प्रकार सभ्य बनने की धुन में गाँधीजी बाबाजी की बिल्ली-सा हो गये थे।

II. सारांश लिखिए :–

गाँधीजी के मन में आया कि मित्रों की परेशानी दूर कर देनी चाहिए। उन्होंने निश्चय किया कि वे सभ्यों के लक्षण सीखेंगे और दूसरी तरह से समाज में सम्मिलित होने योग्य बनेंगे। इस कारण गाँधीजी ने 'अंग्रेज़ी सभ्यता' सीखने का मार्ग पकड़ा।

गाँधीजी ने 'आर्मी' और 'नेवी' स्टोर में नये कपड़े बनवाये। 'चिम' की टोपी ली। शाम को पहनने के कपड़े बनवाये। अपने बड़े भाई से दोनों जेबों में लटकायी जानेवाली असली सोने की जंज़ीर मँगवायी। टाई बाँधने की कला सीखी।

परन्तु इतनी टीप-टाप बस ही न थी। अकेली सभ्य पोशाक से थोड़े ही कोई सभ्य हो जाता है? इसलिए सभ्यता की और भी बहुत सी ऊपरे बातें मालूम कर लीं। गाँधीजी नाच सीखने के लिए क्लास में भरती हुए। हर तिमाही के तीन पौंड फ़ीस देने पड़ते थे, पाँच-छः पाठ पढ़े होंगे। ठीक ताल पर पाँव नहीं पड़ते थे। आखिर गाँधीजी को मालूम पड़ गया कि नाच सीखना वश की बात नहीं है। फिर क्या था? बाबाजी की बिल्लीवाली की बात जैसी! चूहों को भगाने के लिए बिल्ली, और बिल्ली को पालने के लिए गाय, होते-होते बाबाजी का परिवार बढ़ा।

उसके बाद गाँधीजी ने सोचा, क्यों न वायलिन सीख लें, तो सुर और ताल का ज्ञान हो जाएगा। इसके लिए तीन पौंड वायलिन खरीदने में बिगाड़े और सीखने के लिए कुछ दक्षिणा दी। भाषण कला सीखने

के लिए उस्ताद खोजा और उसे भी भेंट चढ़ानी पड़ी। उस्ताद की प्रेरणा से बेल का स्टैंडर्ड एलोक्युश्निस्ट" खरीदा। पर इन बेल साहब ने गाँधीजी के कानों में बेल (घंटी) बजायी तो वे जागे।

उन्होंने सोचा कि उन्हें विद्यार्थी होने के नाते विद्या-धन के संग्रह में लगना चाहिए और अपने धन्धे से सम्बन्ध रखनेवाली तैयारी करनी चाहिए। आदमी अपने सदाचार से सभ्य समझा जा सकता है। उन्हें यह लोभ छोड़ देना चाहिए।

इस विचार की प्रतिक्रिया के रूप में गाँधीजी ने आशय समझाते हुए भाषण-शिक्षक और नृत्य शिक्षिका को पत्र लिख भेजा। वायलिन-शिक्षिका के यहाँ वायलिन लेकर पहुँचे और कह आये कि वायलिन के लिए जो दाम मिले, बेच दें।

सभ्य बनने की गाँधीजी की धुन कोई तीन महीने हुई होगी, किन्तु कपड़ों की तड़क-भड़क बरसों तक चलती रही। अब तो गाँधीजी ने विलायत में एक विद्यार्थी बनकर, विद्या-धन संग्रह करना शुरू किया।

****

12. सादगी की ओर

कोई यह न समझे कि नाच आदि मेरे प्रयोग मेरी स्वच्छन्दता के युग को सूचित करते हैं। पाठकों को ध्यान से देखने पर उसमें कुछ विचारांश भी मिलेगा। परन्तु इस मोह–काल में भी कुछ अंश तक मैं सावधान था। पाई–पाई का हिसाब रखता था। खर्च का अन्दाज़ निश्चित था कि महीने में पन्द्रह पौंड से अधिक खर्च न हो। बस का किराया और डाक–खर्च भी हमेशा लिखता और सोने से पहले हमेशा अपनी रोकड़ मिला लेता था। यह आदत अन्त तक कायम रही और मैं समझता हूँ कि इसी कारण मैं सार्वजनिक जीवन में अपने हाथ से लाखों रुपयों का उलट–फेर करने में किफ़ायतशारी से काम ले पाया और जितने आन्दोलन मेरी देख–रेख में चले हैं, उनमें मुझे कर्ज़ नहीं लेना पड़ा, बल्कि हरेक में कुछ–न–कुछ बचत ही रही है।

मैंने खर्च आधा कर डालने का विचार किया। हिसाब को गौर से देखा तो गाड़ी–भाड़े का खर्च काफ़ी बैठता था। फिर एक कुटुम्ब के साथ रहने के कारण कुछ–न–कुछ खर्च प्रति सप्ताह हो ही जाता था। इसलिए कुटुम्ब के साथ रहना छोड़ अलग कमरा लेकर रहने का निश्चय किया और यह भी तय किया कि काम के अनुसार तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए अलग–अलग मुहल्लों में घर लेना चाहिए। घर ऐसी जगह पसन्द किया कि जहाँ से काम के स्थान पर आधे घंटे में पैदल चलकर पहुँच सकें और गाड़ी–भाड़ा बच जाए। इससे पहले जाने के लिए एक तो गाड़ी–भाड़ा खर्चना पड़ता और दूसरे घूमने जाने के लिए अलग समय निकालना पड़ता। अब काम पर जाने में ही घुमाई का काम भी पूरा होने लगा। इस तजवीज की बदौलत आठ–दस मील तो मैं सहज ही में घूम–फिर लेता था। विशेषतः इसी एक आदत के कारण मैं विलायत में शायद ही बीमार पड़ा होऊँगा, और शरीर ठीक कस गया था। कुटुम्ब के साथ रहना छोड़कर मैंने दो कमरे किराये पर लिये, एक सोने के लिए और एक बैठक का। यह परिवर्तन का दूसरा दौर था। तीसरा परिवर्तन अभी आगे आनेवाला है।

इस तरह आधा खर्च बचा। पर समय? मैं जानता था कि बैरिस्टरी की परीक्षा के लिए बहुत पढ़ने की ज़रूरत नहीं होती। इसलिए मैं निश्चिंत था। पर मेरी कच्ची अंग्रेज़ी मुझे खला करतीं थी। इसलिए मैंने सोचा बैरिस्टर होने के अतिरिक्त मुझे और अध्ययन भी करने चाहिए। आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के कोर्स का पता लगाया। कितने ही मित्रों से मिला। देखा कि वहाँ जाने से खर्च बहुत पड़ेगा और पाठ्यक्रम भी बहुत लम्बा था। मैं तीन वर्ष से ज़्यादा वहाँ रह नहीं सकता था। एक मित्र ने कहा, "यदि तुम्हें कोई कठिन परीक्षा ही देनी हो, तो लन्दन का मैट्रिक्युलेशन पास कर लो। उसमें परिश्रम काफ़ी करना पड़ेगा और सामान्य ज्ञान बढ़ जाएगा; खर्चा बिल्कुल न बढ़ेगा।" यह राय मुझे पसन्द आयी, पर परीक्षा की विषय–सूची देखकर मैं घबराया। उसमें लैटिन और एक दूसरी भाषा अनिवार्य थी। लैटिन कैसी होगी? पर उस मित्र ने कहा, "वकील के लिए लैटिन का बड़ा उपयोग होता है। फिर लैटिन जाननेवालों को कानूनी पुस्तकें समझने में सहूलियत होती है। फिर रोमन लॉकी परीक्षा में एक प्रश्न-पत्र तो केवल लैटिन भाषा का ही होता है और

लैटिन जान लेने से अंग्रेज़ी भाषा पर अधिकार बढ़ता है।" मुझपर इन दलीलों का असर हुआ। मैंने निश्चय किया और एक मैट्रिक्युलेशन क्लास में भर्ती हुआ। परीक्षा हर छठे महीने होती थी। मुश्किल से पाँच महीने का समय था। यह मेरे बूते के बाहर का काम था, नतीजा यह हुआ कि कहाँ तो मैं सभ्य बनने चला था और कहाँ अत्यंत उद्यमी विद्यार्थी बन गया। टाइम–टेबुल बनाया। एक–एक मिनट बचाया। परन्तु मेरी बुद्धि और शक्ति ऐसी न थी कि दूसरे विषयों के उपरान्त लैटिन और फ्रेंच को भी संभाल सकता। इम्तहान में बैठकर लैटिन में फेल हो गया। इससे दुःख तो हुआ, पर हिम्मत न हारी। लैटिन में मज़ा आने लगा था। सोचा, फ्रेंच ज़्यादा मज़बूत हो जाएगी और विज्ञान में नया विषय ले लूँगा। रसायन–शास्त्र, जिसमें मैं देखता हूँ कि खूब मन लगना चाहिए, प्रयोगों के अभाव में मुझे अच्छा ही न लगा। देश में यह विषय मेरे पाठ्यक्रम में रहा ही था। इसलिए लन्दन–मैट्रिक के लिए भी पहली बार इसी को पसन्द किया। उस बार 'प्रकाश और उष्मा' (Light and Heat) को लिया। यह विषय आसान समझा जाता था और मुझे भी आसान ही मालूम हुआ।

फिर परीक्षा देने की तैयारी के साथ ही रहन–सहन में और भी सादगी लाने की कोशिश शुरू की। मुझे लगा कि अभी मेरे जीवन में इतनी सादगी नहीं आयी है, जो कुटुम्ब की गरीबी के अनुकूल हो। भाई साहब की तंगदस्ती और उदारता का ख्याल आते ही मुझे बड़ा कष्ट होता था। दस–पन्द्रह पौण्ड मासिक खर्च करनेवालों को तो छात्रवृत्तियाँ मिलती थीं। अपने से अधिक सादगी से रहनेवालों को मैं देखता था। ऐसे गरीब विद्यार्थी काफ़ी तादाद में मेरे सम्पर्क में आते थे। एक विद्यार्थी लन्दन में गरीब मुहल्ले में प्रति–सप्ताह दो शिलिंग देकर एक कोठरी में रहता था और लोकार्ट की सस्ती कोको की दूकान में दो पेनी का कोको और रोटी खाकर गुज़ारा करता था। उसकी बराबरी करने की मेरी हिम्मत न हुई; पर इतना ज़रूर समझा कि मैं दो के बजाय एक कमरे में ही गुज़र कर सकता हूँ और आधी रसोई हाथ से भी पका सकता हूँ। ऐसा करने से प्रतिमास चार या पाँच पौंड में मैं रह सकता था। सादी रहन–सहन सम्बन्धी पुस्तकें भी पढ़ी थीं। दो कमरे छोड़कर आठ शिलिंग प्रति सप्ताह पर कमरा लिया। एक स्टोव खरीदा और सबेरे का खाना हाथ से पकाने लगा। बीस मिनट से अधिक पकाने में नहीं लगता था। जौका दलिया और कोको के लिए पानी उबालने में कितना समय लगता। दोपहर को बाहर कहीं खा लेता और शाम को फिर कोको बनाकर रोटी के साथ खाता। यों एक या सवा शिलिंग में रोज़ खाना–पीना सीख गया। मेरा यह समय अधिक-से-अधिक पढ़ाई का था। जीवन सादा हो जाने से समय ज़्यादा बचने लगा। दूसरी बात इम्तहान में बैठने पर पास हो गया।

पाठक यह न समझें कि सादगी से जीवन में नीरसता आ गयी हो। उलटे इन परिवर्तनों से मेरी आन्तरिक और बाह्य स्थिति में एकता आ गयी। कौटुम्बिक स्थिति के साथ मेरे रहन-सहन का मेल सध गया। जीवन अधिक सारयुक्त हो गया; आध्यात्मिक आनन्द की सीमा न रही।

✲✲✲✲✲✲✲

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

मेट्रिक्युलेशन का छात्र

गाँधीजी ने अंग्रेज़ी का ज्ञान बढ़ाने का अथक परिश्रम करना शुरू किया। उन्होंने आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज के कोर्स का पता लगाया, लेकिन मित्रों ने बताया कि वहाँ जाने से खर्च बहुत पड़ेगा। एक मित्र ने सुझाया कि यदि गाँधीजी कठिन परिश्रम कर सकें, तो लंदन का मेट्रिक्युलेशन पास कर लें।

गाँधीजी को यह राय प्रसन्द आयी, क्योंकि गाँधीजी कम खर्च करने का निर्णय ले चुके थे। परीक्षा की विषय-सूची देखकर गाँधीजी घबराये। उसमें लैटिन और एक दूसरी भाषा अनिवार्य थी। गाँधीजी लैटिन भाषा से बिलकुल अनजान थे। मित्र ने कहा कि लैटिन जाननेवाले को कानूनी पुस्तकें समझने में सहूलियत होती है। फिर 'रोमन लॉ' की परीक्षा में एक प्रश्न-पत्र तो केवल लैटिन भाषा का ही होता है और लैटिन जान लेने से अंग्रेज़ी भाषा पर अधिकार बढ़ता है। मित्र के इन तर्कों का गाँधीजी पर गहरा असर पड़ा। इसलिए गाँधीजी लंदन के मैट्रिक्युलेशन क्लास में भर्ती हुए।

गाँधीजी स्वयं सोचने लगे कि कहाँ वे सभ्य बनने चले थे और कहाँ अत्यन्त उद्यमी विद्यार्थी बन गये। परीक्षा में बैठकर लैटिन में फेल हो गये, पर हिम्मत न हारी। लैटिन में अब मज़ा आने लगा था। फ्रेंच में भी मज़बूत होने लगे।

II. सारांश लिखिए :–

सभ्य बनने के मोह में भी गाँधीजी कुछ अंश तक सावधान रहे। छोटे-छोटे खर्च का भी हिसाब रखते थे। हर दिन सोने से पहले अपनी रोकड़ मिला लेते थे। यह आदत अन्त तक कायम रही।

एक कुटुम्भ के साथ, रहने के कारण कुछ-न-कुछ खर्च प्रति सप्ताह हो ही जाता था। खर्च को कम करने के उद्देश्य से गाँधीजी ने अलग कमरा लेकर रहने का निश्चय किया। इस प्रकार अलग रहने से आधा खर्च बचा। पर समय ज़्यादा लगता था। गाँधीजी जानते थे कि बैरिस्टरी की परीक्षा के लिए बहुत पढ़ने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए वे निश्चिंत थे। वे अपनी कच्ची अंग्रेज़ी से सदा चिंतित थे। एक मित्र ने समझाया कि गाँधीजी लन्दन का मैट्रिक्युलेशन पास कर लें। उसमें परिश्रम काफ़ी करना पड़ेगा और सामान्य ज्ञान बढ़ जाएगा; खर्चा बिलकुल न बढ़ेगा। यह राय गाँधीजी को बहुत पसन्द आयी।

परीक्षा देने की तैयारी के साथ-साथ गाँधीजी ने रहन-सहन में और भी सादगी लाने की कोशिश शुरू की। खर्च कम करने के विचार से गाँधीजी ने आठ शिलिंग प्रति सप्ताह पर एक कमरा लिया। एक स्टोव भी खरीदा और सबेरे का खाना अपने हाथों पकाने लगे। दोपहर को बाहर कहीं खा लेते और शाम को कोको बनाकर रोटी के साथ खा लेते। इस प्रकार एक या सवा शिलिंग में रोज़ खाना-पीना सीख गये। इस प्रकार जीवन सादा होने के साथों साथ समय भी बचने लगा। इससे खूब पढ़ सके और दूसरी बार परीक्षा में बैठकर लैटिन में पास हो गये।

गाँधीजी को इस प्रकार की सादगी से अपने जीवन में नीरसता नहीं आयी थी। उलटे इन परिवर्तनों से उनकी आन्तरिक और बाह्य स्थिति में एकता आ गयी। कौटुम्बिक स्थिति के साथ उनके रहन-सहन का मेल सध गया। उनका जीवन अधिक सार-युक्त हो गया था और अध्यात्मिक आनन्द की सीमा भी न रह गयी थी।

13. प्रलोभन से बचा

जैसे–जैसे मैं जीवन के विषय में गहरा विचार करता गया, वैसे–वैसे बाहरी और भीतरी आचार में परिवर्तन करने की आवश्यकता मालूम होती गयी। जिस गति से मैंने रहन–सहन में तथा खर्च में परिवर्तन किया, उसी गति से अथवा और भी वेग से मैंने भोजन में फेर-फार करना आरंभ किया। अन्नाहार–विषयक अंग्रेज़ी पुस्तकें मैंने देखीं। विलायत में ऐसे विचार रखनेवालों की एक संस्था थी। उसकी ओर से एक साप्ताहिक पत्र भी निकलता था। मैं उसका ग्राहक बना और संस्था का सदस्य भी। थोड़े ही समय में मैं उसकी कार्यकारिणी कमेटी में ले लिया गया। यहाँ मेरा उन लोगों से परिचय हुआ, जो अन्नाहारियों के स्तंभ माने जाते हैं। अब मैं अपने भोजन-सम्बन्धी प्रयोगों में पड़ा।

घर में मँगाई हुई मिठाई और मसाले का व्यवहार बन्द कर दिया। मन का झुकाव दूसरी ओर हो गया। मशालों का शौक जाता रहा, जाय और कॉफी छोड़ दी और ज़्यादातर मैं रोटी, कोको और उबली हुई सब्जी पर ही गुज़र करने लगा। मेरे इन प्रयोगों से मुझे यह अनुभव हुआ कि स्वाद का असली स्थान जीभ नहीं, बल्कि मन है।

मैंने भिन्न–भिन्न धर्मों का परिचय प्राप्त करने की कोशिश की। इस बीच दो थियासोफिस्ट मित्रों से भेंट हुई। उन्होंने मुझे गीता पढ़ने की प्रेरणा दी। उन दिनों वे एडविन एर्नाल्ड-कृत गीता का अंग्रेज़ी-अनुवाद पढ़ रहे थे, पर मुझे उन्होंने अपने साथ संस्कृत में गीता पढ़ने के लिए कहा। मैं शरमाया, क्योंकि मैंने तो गीता संस्कृत में को क्या, गुजराती में भी नहीं पढ़ी थी। यह बात झेंपते हुए मुझे उनसे कहनी पड़ी, पर साथ ही यह भी कहा कि मैं आपके साथ पढ़ने के लिए तैयार हूँ। यों तो मेरा संस्कृत-ज्ञान नहीं के बराबर है, फिर भी मैं इतना समझ लेता हूँ कि अनुवाद में कहीं गड़बड़ हो तो वह बता सकूँ। इस तरह इन भाइयों के साथ मेरा गीता–पाठ आरंभ हुआ। दूसरे अध्याय के अन्तिम श्लोकों में से इन श्लोकों का गहरा असर मेरे मन पर हुआ–

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते।।
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्ररणश्यति।।[1]

अन्नाहारी संस्था के सदस्यों के साथ

1. विषय का चिन्तन करने से पहले तो उसके साथ संग पैदा होता है, और संग से काम की उत्पत्ति होती है। कामना के पीछे क्रोध आता है। फिर क्रोध से संमोह, संमोह से स्मृति–भ्रम, स्मृति–भ्रम से बुद्धि का नाश होता है। और अन्त में पुरुष खुद ही नष्ट हो जाता है।

कानों में उनकी ध्वनि दिन–रात गूंजा करती थी। तब मुझे मालूम हुआ कि भगवद्‌गीता तो अमूल्य ग्रन्थ है। यह धारणा दिन–दिन अधिक दृढ होती गयी– और अब तो तत्वज्ञान के लिए मैं उसे सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ। निराशा के समय इस ग्रन्थ ने मेरी अपार सहायता की है।

इसी अर्से में एक अन्नाहारी–छात्रालय में मांचेस्टर के एक ईसाई सज्जन से मेरी भेंट हुई। उनकी प्रेरणा से मैंने बाइबिल पढ़ी। परन्तु 'ओल्ड टेस्टामेंट' तो पढ़ ही न सका। वह मुझे कुछ जंचा नहीं। पर जब 'न्यू टेस्टामेंट' शुरू किया, तब ईसा के गिरि-प्रवचन का मन पर बहुत ज़बरदस्त असर हुआ। उसने दिल में घर कर लिया। बुद्धि ने गीताजी के साथ उसकी तुलना की। "जो तेरा कुरता माँगे, उसे अंगरखा दे डाल। जो तेरे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारे, उसे आगे बायाँ गाल कर दे।" यह पढ़कर मुझे अपार आनन्द हुआ। शामल भट्‌ट का छप्पय भी याद आया, जो पीछे दिया है।

यद्यपि मैंने हिन्दू–धर्म का भी मामूली परिचय प्राप्त किया था, फिर भी खतरों और संकटों से बचाने के लिए यह काफ़ी न था। विलायत के मेरे आखिरी वर्ष, अर्थात् 1890 में पोर्टस्मथ में अन्नाहारियों का सम्मेलन हुआ। उसमें मुझे तथा एक और भारतीय मित्र को निमंत्रण मिला था। हम दोनों एक बहन के यहाँ, जिनके बारे में स्वागत-समिति को कुछ पता नहीं था, ठहराये गये। वह एक बदनाम घर था। रात को सभा से हम घर लौटे। भोजन के बाद ताश खेलने बैठे। विलायत में भले घरों में गृहणी भी मेहमानों के साथ इस प्रकार ताश खेला करती है। ताश खेलते समय आम तौर पर लोग निर्दोष मज़ाक करते हैं, पर यहाँ अश्लील विनोद शुरू हुआ।

मैं नहीं जानता था कि मेरे साथी इसमें निपुण हैं। मुझे इस विनोद में रस आने लगा। धीरे-धीरे मैं भी उसमें शामिल हुआ। विनोद की वाणी से क्रिया में परिणत होने की नौबत आ गयी। ताश एक ओर रखने का अवसर आ गया, पर मेरे साथी के हृदय में भगवान बैठे। वह बोले– "तुम और यह पाप? यह तुम्हारा काम नहीं। भागों यहाँ से।"

मैं जागा; लज्जित हुआ। हृदय में इस मित्र का उपकार माना, माता की प्रतिज्ञा याद आयी। वहाँ से भागा। कांपता हुआ अपने कमरे में पहुँचा।

उस समय मैं 'धर्म क्या है? ईश्वर क्या चीज़ है? वह हमारे अन्दर किस तरह काम करता है?' ये बातें नहीं जानता था। पर लौकिक अर्थ में मैंने यही समझा कि ईश्वर ने मुझे बचाया; और जीवन के विविध क्षेत्रों में मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ है। सच पूछिए तो मुझे यह कहते हुए बड़ा आनन्द आता है कि मुझे अनेक संकटों के अवसर पर ईश्वर ने बरबस बचा लिया है। जब चारों ओर से आशाएँ छोड़ देने का अवसर आ जाता है, हाथ-पैर ढीले पड़ने लगते हैं, तब कहीं-न-कहीं से अचानक सहायता आ पहुँचती है। स्तुति, उपासना, प्रार्थना– ये अन्धविश्वास नहीं; बल्कि उतनी ही अथवा उनसे भी अधिक सच बातें हैं, जितना कि हम खाते हैं, पीते हैं, बैठते हैं आदि सच हैं। बल्कि यों कहने में अत्युक्ति नहीं कि यह एक मात्र सत्य है; दूसरी सब बातें असत्य हैं, मिथ्या हैं।

******

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

गीता पढ़ने की प्रेरणा और असर

गाँधीजी ने बाहरी और भीतरी आचार में परिवर्तन करने की आवश्यकता मालूम करने के साथ-साथ, धर्मों का परिचय प्राप्त करने की भी कोशिश की। इस बीच गाँधीजी की भेंट दो थियासोफिस्ट मित्रों से हुई। उन्होंने गाँधीजी को गीता पढ़ने की प्रेरणा दी। उन दिनों वे मित्र एड्विन एर्नाल्ड-कृत गीता का अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ रहे थे, पर गाँधीजी को उन मित्रों ने अपने साथ में गीता पढ़ने के लिए कहा। गाँधीजी शर्माये, क्योंकि गाँधीजी ने गीता संस्कृत में तो क्या, गुजराती में भी नहीं पढ़ी थी। यह बात झेंपते हुए उन मित्रों से कहनी पड़ी, पर यह भी कहा कि वे उन मित्रों के साथ गीता पढ़ने के लिए तैयार हैं।

गाँधीजी का संस्कृत ज्ञान नहीं के बराबर था, फिर भी उन मित्रों के साथ गीता-पाठ प्रारंभ कर दिया। दूसरे अध्याय के अन्तिम श्लोकों में से इन श्लोकों का असर उनके मन पर अधिक हुआ। उनका हिन्दी अनुवाद है–"विषय का चिन्तन करने से पहले तो उसके साथ संग पैदा होता है, और संग से काम की उत्पत्ति होती है। कामना के पीछे क्रोध आता है। फिर क्रोध से मोह, मोह से स्मृति-भ्रम, स्मृति-भ्रम से बुद्धि का नाश होता है और अन्त में पुरुष खुद ही नष्ट हो जाता है।" तब गाँधीजी को मालूम हुआ कि भगवद्‌गीता तो अमूल्य ग्रन्थ है।

II. सारांश लिखिए :–

जिस गति से गाँधीजी ने रहन-सहन में तथा खर्च में परिवर्तन किया, उससे भी वेग से भोजन में परिवर्तन करना आरम्भ किया। लन्दन में गाँधीजी ने अन्नाहार विषयक अंग्रेज़ी पुस्तकें देखीं। अब गाँधीजी अपने भोजन-सम्बन्धी प्रयोगों में पड़ने लगे। उन्होंने घर से मंगायी हुई मिठाई और मसाले का व्यवहार बन्द कर दिया। उन्हें यह अनुभव हुआ कि स्वाद का असली स्थान जीभ नहीं, बल्कि मन है।

सन् 1890 में पोर्टस्मथ में अन्नाहारियों का एक सम्मेलन हुआ। उसमें गाँधीजी और एक और भारतीय मित्र को निमंत्रण मिला। वे जिस घर में ठहराये गये वह एक बदनाम घर था। सभा के बाद घर लौटकर ताश खेलने बैठे। विलायत में गृहणी भी मेहमानों के साथ ताश खेला करती है। खेल के साथ अश्लील विनोद शुरू हुआ। गाँधीजी को इस विनोद में रस आने लगा। धीरे-धीरे उसमें शामिल हुए। वाणी के क्रिया के रूप में परिणत होने की नौबत आयी। गाँधीजी ने ताश एक ओर रखे तो इसी समय मित्र के मन में भगवान बैठे और बोले–"तुम और यह पाप? यह तुम्हारा काम नहीं। भागो यहाँ से।"

गाँधीजी जागे और लज्जित हुए। मन में माताजी की प्रतिज्ञा याद आयी। भागकर, कांपते हुए अपने कमरे में पहुँचे। उन्होंने समझ लिया कि ईश्वर ने उन्हें बचाया। गाँधीजी को अनेक संकटों से भगवान ने बचाया है। जब चारों ओर से आशाएँ छोड़ देने का अवसर आता था, हाथ-पैर ढ़ीले पड़ने लगते थे, तब कहीं-न-कहीं से अचानक सहायता आ पहुँचती थी। स्तुति, उपासना, प्रार्थना, ये अन्धविश्वास नहीं; बल्कि यों कहने में अत्युक्ति नहीं कि यह एक मात्र सत्य है; दूसरी सब बातें असत्य हैं, मिथ्या हैं।

****

14. बैरिस्टर हुआ

इसी बीच मेरा अध्ययन ज़ारी रहा। नौ महीने अथक परिश्रम के बाद 10 जून, 1891 को मैं बैरिस्टर हुआ, और 12 जून को हिन्दूस्तान लौट आने के लिए रवाना हुआ, परन्तु मेरी निराशा और भीति का कोई ठिकाना न था। कानून मैंने पढ़ तो लिया, परन्तु मेरा मन कहता था कि अभी तक मुझे कानून का वह ज्ञान नहीं हुआ कि वकालत कर सकूँ।

जून–जुलाई में हिन्द-महासागर तूफानी रहता है। लंदन से ही समुद्र का ऐसा हाल था। सब लोग बीमार थे, अकेला मैं ही मज़े में था। मैं तूफ़ान देखने के लिए डेक पर जाया करता और भीग भी जाता। सुबह नाश्ते के समय यात्रियों में हम एक-ही-दो आदमी टेबल पर नज़र आते। हमें जईदे दलिये की रकाबी को गोद में रखकर खाना पड़ता था; तूफ़ान के कारण जहाज़ इतना हिलता था दलिया गोद में ढुलक पड़ता था।

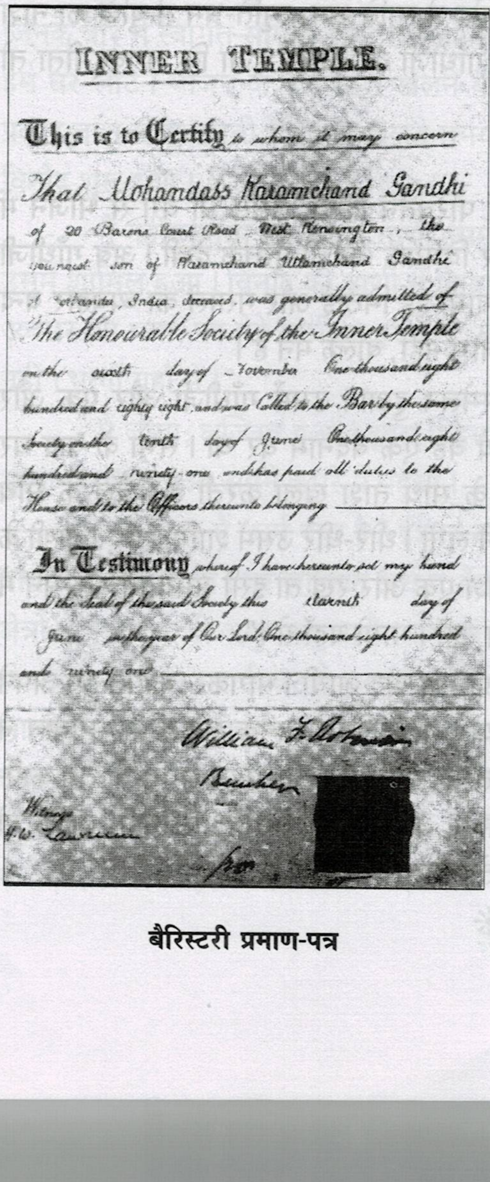
INNER TEMPLE.

This is to Certify to whom it may concern
That Mohandass Karamchand Gandhi
of 20 Barons Court Road West Kensington, the
youngest son of Karamchand Uttamchand Gandhi
of Porbandar, India, deceased, was generally admitted of
The Honourable Society of the Inner Temple
on the sixth day of November One thousand eight
hundred and eighty eight and was Called to the Bar by the same
Society on the tenth day of June One thousand eight
hundred and ninety one and has paid all duties to the
House and to the Officers thereunto belonging

In Testimony whereof I have hereunto set my hand
and the Seal of the said Society this eleventh day of
June in the year of Our Lord One thousand eight hundred
and ninety one

Bencher

Witness

बैरिस्टरी प्रमाण-पत्र

यह बाहरी तूफ़ान मेरे अन्दर के तूफ़ान का चिह्न मात्र था, परन्तु बाहरी तूफ़ान में मैं जिस प्रकार अपने को शान्त रख सका था, वही बात आन्तरिक तूफ़ान के सम्बन्ध में भी थी।

जब हम मुंबई बन्दर पर पहुँचे, तब मेरे बड़े भाई वहाँ मौजूद थे। माताजी के स्वर्गवास के बारे में मैं बिलकुल बेखबर था। घर पहुँचने पर यह समाचार सुनाया गया और स्नान कराया गया। यह खबर मुझे विलायत में दी जा सकती थी, पर बड़े भाई ने मेरे मुंबई पहुँचने तक मुझे खबर न पहुँचाने का ही निश्चय किया– इस विचार से कि मुझे कम-से-कम आघात पहुँचे। पिताजी की मृत्यु से अधिक आघात मुझे इस समाचार से पहुँचा। मेरे कितने मनसूबे मिट्टी में मिल गये, पर मुझे याद है कि इस समाचार को सुनकर मैं रोया नहीं। आँसू भी नहीं गिराये और इस तरह कामकाज जारी रखा, मानो माताजी की मृत्यु ही न हुई हो।

कुछ समय तक तो मैं राजकोट में रहा, लेकिन मित्रों ने मुझे यह सलाह दी कि मैं कुछ दिन मुंबई जाकर हाईकोर्ट का विशेष अनुभव प्राप्त करूँ और हिन्दुस्तानी कानून का अध्ययन करूँ, साथ ही हो सके तो वकालत करने का भी प्रयत्न करूँ। मैं मुंबई गया। पर वहाँ चार-पाँच महीने से अधिक न रह सका। क्योंकि खर्च बढ़ता जाता था और आमदनी कुछ थी नहीं। इसलिए मैं मुंबई से निराश होकर वापस राजकोट आया। अलग दफ़्तर खोला। कुछ सिलसिला चला। अर्जियां लिखने का काम मिलने लगा और हर महीने लगभग तीन सौ रुपये की आमदनी होने लगी। इन अर्जियों के मिलने क़ा कारण मेरी योग्यता नहीं, बल्कि जरिया था। बड़े भाई साहब के साथी वकील की वकालत अच्छी चलती थी। जो बहुत ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण अर्जियाँ आतीं अथवा जिन्हें मैं महत्त्वपूर्ण समझता था, वे तो बैरिस्टर के पास आतीं, मुझे तो सिर्फ़ उनके गरीब मवक्किलों की अर्जियाँ मिलती थीं।

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

माताजी की मृत्यु

गाँधीजी 10 जून सन् 1891 को बैरिस्टर बने और 12 जून को हिन्दुस्तान लौट आने के लिए रवाना हुए। जून-जुलाई में हिन्द-महासागर तूफ़ानी रहता है। सब लोग बीमार थे। अकेले गाँधीजी ही मज़े में थे। वे तूफ़ान देखने के लिए डेक पर जाया करते थे और भीग भी जाते।

जब गाँधीजी मुंबई बन्दर पर पहुँचे, तब उनके बड़े भाई वहाँ मौजूद थे। गाँधीजी को अपनी माताजी के स्वर्गवास के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था। घर पहुँचने पर ही यह समाचार सुनाया गया और स्नान कराया गया। यह खबर विलायत में गाँधीजी के रहते समय ही दी जा सकती थी, पर उनके बड़े भाई ने गाँधीजी के मुंबई पहुँचने तक खबर न पहुँचाने का निश्चय किया था। इस विचार से कि गाँधीजी को कम-से-कम आघात पहुँचे। पिताजी की मृत्यु से अधिक आघात गाँधीजी को माताजी की मृत्यु से पहुँचा। माताजी की मृत्यु से गाँधीजी के अनेकों मनसूबे मिट्टी में मिल गये, पर वे रोये नहीं। सामान्य रूप से अपना कामकाज जारी रखा, मानो माताजी की मृत्यु ही न हुई हो।

II. सारांश लिखिए :–

नौ महीने के अथक परिश्रम के बाद गाँधीजी 10 जून 1891 को बैरिस्टर हुए और 12 जून को हिन्दुस्तान लौटे। गाँधीजी ने कानून तो पढ़ लिया, परन्तु उनका मन कहता था कि अभी वकालत कर सकने का ज्ञान नहीं हुआ।

जब गाँधीजी अपने सह यात्रियों के साथ मुंबई बन्दर पर पहुँचे, तब उनके बड़े भाई वहाँ आये थे।

गाँधीजी अपनी माताजी के स्वर्गवास के बारे में बिलकुल बेखबर थे। घर पहुँचने पर यह समाचार गाँधीजी को सुनाया गया और स्नान कराया गया।

अपनी माताजी की मृत्यु के कारण गाँधीजी के बहुत सारे मनसूबे मिट्टी में मिल गये, पर वे इस दुखद समाचार से रोये नहीं। आँसू तक नहीं गिराये। रोज़ की तरह अपना कामकाज जारी रखा, मानो माताजी की मृत्यु ही न हुई हो।

विलायत से हिन्दुस्तान आने के बाद कुछ समय तक गाँधीजी राजकोट में रहे। मित्रों ने उन्हें यह सलाह दी कि वे कुछ दिन मुंबई जाकर हाईकोर्ट का विशेष अनुभव प्राप्त करें और हिन्दुस्तानी कानून का भी अध्ययन करें। साथ ही हो सके तो वकालत करने का भी प्रयत्न करें। गाँधीजी मुंबई गये। पर वहाँ चार-पाँच महीने से अधिक न रह सके, क्योंकि खर्च बढ़ता जाता था और आमदनी कुछ थी ही नहीं। इसलिए निराश होकर गाँधीजी वापस राजकोट आये। राजकोट में अलग दफ़्तर खोला। अर्जियाँ लिखने का काम मिलने लगा और हर महीने लगभग तीन सौ रुपये की आमदनी होने लगी।

इन अर्जियों के मिलने के कारण गाँधीजी की योग्यता नहीं थी, बल्कि एक वकील साहब का ज़रिया था। उनके बड़े भाई के साथी एक वकील थे। उनकी वकालत अच्छी चलती थी। गाँधीजी को तो सिर्फ़ उस वकील साहब के गरीब मवक्किलों की अर्जियाँ ही मिलती थीं।

****

15. दक्षिण अफ्रिका में

इस बीच काठियावाड़ के अन्दरूनी झगड़ों का भी मुझे कुछ अनुभव हो गया। उनसे मेरा जी ऊब उठा।

इसी समय भाई साहब के पास पोरबन्दर की दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी नाम की एक मेमन दूकान का सन्देश आया कि दक्षिण अफ्रिका में हमारा बड़ा कारोबार है। तैयब हाजीखान मुहम्मद पर हमारा चालीस हजार पौंड का बड़ा मुकदमा बहुत दिनों से चल रहा है। यदि आप अपने भाई को वहाँ भेज दें, तो हमें भी मदद मिलेगी और उनकी भी कुछ मदद हो जाएगी।

इस दूकान के एक हिस्सेदार ने, यदि मैं एक साल काम कर दूँ तो, मुझे आने-जाने का पहले दर्जे का किराया और भोजन-खर्च के अलावा 105 पौंड देने का वादा किया। मैं राजी हो गया और अप्रैल, 1893 में हिन्दुस्तान से अफ्रिका के लिए रवाना हो गया।

नेटाल का बंदर यों तो डरबन कहलाता है, पर नेटाल को भी बंदर कहते हैं। मुझे बन्दर पर लिवाने स्वयं अब्दुल्ला सेठ आये थे। नेटाल के जो लोग जहाज़ पर अपने मित्रों को लिवाने आये थे, उनके रंग-ढंग से मैं समझ गया कि यहाँ हिन्दुस्तानियों का आदर नहीं है। अब्दुल्ला सेठ की जान-पहचान के लोग उनके साथ जैसा बर्ताव करते थे, उसमें मुझे एक प्रकार का हलकापन दिखाई पड़ता था और उससे मेरे दिल को चोट पहुँची थी, पर अब्दुल्ला सेठ तो इस अपमान के आदी हो गये थे। मुझपर जिसकी नज़र पड़ती, वह आश्चर्य से देखने लगता, क्योंकि मेरा पहनावा ऐसा था कि मैं दूसरे भारतवासियों से कुछ जुदा मालूम होता था। उस समय मैं फ्राक कोट और बंगाली पगड़ी पहने था।

अब्दुल्ला सेठ

घर पहुँचा। अब्दुल्ला सेठ के कमरे के पास का कमरा मुझे दिया गया। अभी हमारी पूरी जान-पहचान नहीं हुई थी। अपने भाई की लिखी चिट्ठी उन्होंने पढ़ी। वह कुछ असमंजस में पड़ गये। उन्होंने समझ लिया कि भाई ने तो यह सफ़ेद हाथी घर बंधवा दिया। मेरा साहबी ठाट-बाट उन्हें बड़ा खर्चीला मालूम हुआ, क्योंकि मेरे लिए उनके पास उस समय कोई काम तो था नहीं, मुकदमा चल रहा था ट्रांसवाल में। सो तुरन्त ही मुझे वहाँ भेजकर क्या करते! फिर यह भी एक सवाल था कि मेरी योग्यता और ईमानदारी का विश्वास भी कहाँ तक किया जाए? और प्रिटोरिया में वह खुद मेरे साथ रह नहीं सकते थे। प्रतिवादी प्रिटोरिया में रहते थे। कहीं उनका असर मुझ पर होने लगे तो? और दूसरे काम भी उनके कर्मचारी मुझसे अच्छा

कर सकते थे। फिर कर्मचारी से यदि भूल-चूक हो जाए, तो उसे कुछ कहा-सुना भी जा सकता है, मुझे कुछ कहने से भी रहे। काम या तो क्लर्क का था या मुकदमे का काम मुझे नहीं सौंपते हैं, तो घर बैठे मेरा खर्च उठाना पड़ता था।

अब्दुल्ला सेठ यों पढ़े-लिखे कम थे, पर उनका ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उनकी बुद्धि तेज़ थी और वह खुद भी इस बात को जानते थे। अंग्रेज़ी का इतना मुहावरा था कि बोल-चाल का काम चला लेते थे। बैंक में मैनेजरों से बातें कर लेते, यूरोपियन व्यापारियों से सौदा कर लेते और वकीलों को अपना मामला समझा देते थे। हिन्दुस्तानियों में उनका काफ़ी मान था। उनकी दूकान उस समय हिन्दुस्तानियों में सबसे बड़ी नहीं तो बड़ी दूकानों में अवश्य थी।

दूसरे या तीसरे दिन वह मुझे डरबन की अदालत दिखाने ले गये। वहाँ कई लोगों से परिचय कराया। अदालत में अपने वकील के पास मुझे बिठाया। मैजिस्ट्रेट मेरी ओर देखता रहा। बोला- "अपनी पगड़ी उतार लो।" मैंने इन्कार किया और अदालत से बाहर चला आया।

मेरे भाग्य में तो यहाँ भी लड़ाई लिखी थी।

पगड़ी उतरवाने का रहस्य मुझे अब्दुल्ला सेठ ने समझाया। मुसलमानी पोशाक पहननेवाला अपनी मुसलमानी पगड़ी यहाँ पहन सकता है। दूसरे भारतवासियों को अदालत में जाते हुए अपनी पगड़ी उतार लेनी चाहिए।

ऐसी हालत में पगड़ी पहनने का प्रश्न विकट हो गया। पगड़ी उतार देने का अर्थ था, अपमान सहन करना। सो मैंने यह तरकीब निकाली कि हिन्दुस्तानी पगड़ी के बजाय अंग्रेज़ी टोप पहना जाए, जिससे उसे उतारने में अपमान का भी सवाल न रहे और मैं इस झगड़े से भी बच जाऊँ।

पर अब्दुल्ला सेठ को यह बात पसन्द न आयी थी। उन्होंने कहा- "यदि आप इस समय ऐसा करेंगे, तो उलटा अर्थ होगा। जो लोग देशी पगड़ी पहले पहने रहना चाहते होंगे, उनकी स्थिति विषम हो जाएगी। फिर आपके सिर पर अपने ही देश की पगड़ी शोभा देती है। आप यदि अंग्रेज़ी टोपी लगाएँगे तो लोग आपको 'वेटर' समझेंगे।"

इस वचनों में व्यावहारिकता थी, देशाभिमान था और कुछ संकुचितता भी थी। पर सब मिलकर अब्दुल्ला सेठ की बात मुझे अच्छी लगी। मैंने पगड़ीवाली घटना पर अखबार में लिखा और पगड़ी का तथा अपने पक्ष का समर्थन किया। अखबारों में उसपर खूब चर्चा चली। 'अनवेलकम विजिटर'–अनिमंत्रित

मित्र के घर में

अतिथि के नाम से मेरा नाम अखबारों में आया। तीन-चार दिन के अन्दर अनायास ही दक्षिण अफ्रिका में मेरी प्रसिद्धि हो गयी। किसी ने मेरे पक्ष का समर्थ किया, किसी ने मेरी उद्दण्डता की निन्दा की।

अब्दुल्ला सेठ को मेरे लिए काम खोजने में ज़्यादा वक्त न लगा। उनके मुकदमें के लिए मेरा प्रिटोरिया में रहना ज़रूरी था।

सातवें या आठवें दिन मैं डरबन से रवाना हुआ। मेरे लिए पहले दर्जे का टिकट लिया गया। सोने के लिए वहाँ पाँच शिलिंग का एक अलहदा टिकट लेना पड़ता था। अब्दुल्ला सेठ ने आग्रह के साथ कहा कि सोने का टिकट ले लो, पर मैंने कुछ तो हठ में, कुछ मद में और कुछ पैसे बचाने के लोभ से इन्कार कर दिया।

अब्दुल्ला सेठ ने मुझे सावधान किया- "देखो, यह मुल्क और है, हिन्दुस्तान नहीं। खुदा की मेहरबानी है, आप पैसे का ख्याल न करें। अपने आराम का सब इन्तज़ाम कर लेना।"

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और कहा कि आप मेरी चिन्ता न कीजिए। नेटाल की राजधानी मेरित्सबर्ग में ट्रेन रात के कोई नौ बजे पहुँची। यहाँ सोनेवालों को बिछौना दिये जाते थे। रेलवे के नौकरों ने आकर कहा- - "आप बिछौना चाहते हैं?"

मैने कहा– "मेरे पास बिछौना है।"

वह चला गया। इस बीच एक यात्री आया। उसने मेरी ओर देखा। मुझे हिन्दुस्तानी देखकर वह चकराया। बाहर गया और एक-दो कर्मचारियों को लेकर आया। किसी ने मुझसे कुछ न कहा। अन्त में एक अफ़सर आया। उसने कहा– "उतरो, तुमको दूसरे डिब्बे में जाना होगा।"

मैंने कहा– "पर मेरे पास पहले दर्जे का टिकट है।"

उसने उत्तर दिया– "कोई बात नहीं। मैं तुमसे कहता हूँ, तुम्हें आखिरी डिब्बे में बैठना होगा।"

"मैं कहता हूँ कि डरबन से इसी डिब्बे में बिठाया गया हूँ और इसी में जाना चाहता हूँ।"

अफसर बोला– "यह नहीं हो सकता, तुम्हें उतरना होगा, नहीं तो सिपाही आकर उतार देगा।"

मैंने कहा– "तो ठीक है। सिपाही आकर भले ही मुझे उतारे, मैं अपने-आप न उतरूँगा।"

सिपाही आया। उसने हाथ पकड़ा और धक्का मारकर मुझे नीचे गिरा दिया। मेरा सामान नीचे उतार दिया गया। मैंने दूसरे डिब्बे में जाने से इन्कार किया। गाड़ी चल दी। मैं वेटिंग रूम में जा बैठा। हैंडबेंग अपने साथ रखा। दूसरे सामान को मैंने हाथ न लगाया। रेलवालों ने सामान कहीं रखवा दिया।

जाड़े का मौसम था। दक्षिण अफ्रिका में ऊँची जगहों पर बड़े ज़ोर का जाड़ा पड़ता है। मेरित्सबर्ग ऊँचाई पर था– इससे खूब जाड़ा लगा। मेरा ओवरकोट मेरे सामान में रह गया था। सामान माँगने की हिम्मत न पड़ी, कहीं फिर बेइज़्ज़ती न हो। जाड़े में सिकुड़ता और ठिठुरता रहा। कमरे में रोशनी न थी। आधी रात के समय एक मुसाफिर आया। ऐसा जान पड़ा। मानो वह कुछ बात करना चाहता हो, पर मेरे मन की हालत ऐसी न थी कि मैं बातें करता।

मैं सोचने लगा– "मेरा कर्तव्य क्या है? मुझे अपने हकों के लिए लड़ना चाहिए या वापस लौट जाना चाहिए? या जो अपमान हो रहा है, उसे सहन करके प्रिटोरिया पहुँचूँ और मुकदमे का काम खतम करके देश चला जाऊँ? मुकदमे को अधूरा छोड़कर भाग जाना तो कायरता होगी। मुझपर जो कुछ बीत रही है, वह तो रंगद्वेष रूपी महारोग के ऊपरी लक्षण हैं। यदि इस महारोग को उखाड़ फेंकने का सामर्थ्य अपने अन्दर हो, तो उसका उपयोग करना चाहिए। उसके लिए जो कुछ कष्ट और दुःख आ पड़े, सहना चाहिए। इन अन्यायों का विरोध उसी हद तक करना चाहिए, जिस हद तक उसका सम्बन्ध रंगद्वेष दूर करने से हो।"

ऐसा संकल्प करके जिस तरह भी हो, दूर गाड़ी से आगे जाने का निश्चय किया।

सुबह मैंने जनरल मैनेजर को तार द्वारा एक लम्बी शिकायत लिख भेजी। दादा अब्दुल्ला को भी समाचार भेजा। अब्दुल्ला सेठ तुरन्त जनरल मैनेजर से मिले। जनरल मैनेजर ने अपने आदमियों का पक्ष तो लिया, पर कहा कि स्टेशन-मास्टर को लिख दिया है कि गाँधी को सकुशल अपने मुकाम पर पहुँचा दो। अब्दुल्ला सेठ ने मेरित्सबर्ग के हिन्दुस्तानी व्यापारियों को भी मुझसे मिलने तथा मेरा प्रबन्ध करने के लिए तार दिया तथा दूसरे स्टेशनों पर भी ऐसे ही तार दे दिये। इससे व्यापारी लोग स्टेशन पर मुझे मिलने आये।

उन्होंने अपने ऊपर होनेवाले अन्यायों का मुझसे ज़िक्र किया और कहा कि आप पर जो कुछ बीती है, वह कोई नयी बात नहीं। पहले-दूसरे दर्जे में जो हिन्दुस्तानी सफ़र करते हैं, उन्हें क्या रेल-कर्मचारी और क्या मुसाफिर, दोनों सताते हैं। सारा दिन इन्हीं बातों के सुनने में गया। रात हुई, गाड़ी आयी। मेरे लिए जगह तैयार थी। डरबन में सोने के लिए जिस टिकट को लेने से इन्कार किया था, वही मेरित्सबर्ग में लिया। ट्रेन मुझे चार्ल्सटाउन ले चली। आगे मुझे घोड़ागाड़ी में तो और भी कष्टों का सामना करना पड़ा और अन्त को मैं जोहान्सबर्ग पहुँचा और वहाँ से फिर रेल से प्रिटोरिया गया।

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :-

डरबन की अदालत में गाँधीजी

बैरिस्टर होने के बाद गाँधीजी दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी का मुकदमा चलाने दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुए। नेटाल के बन्दर में जो हिन्दुस्तानी लोग अपने मित्रों को लिवाने आये थे, उनके रंग-ढंग से गाँधीजी समझ गये कि वहाँ हिन्दुस्तानियों का आदर नहीं है।

अब्दुल्ला सेठ की जान-पहचान के लोग भी उनके साथ जैसा बर्ताव करते थे, उसमें गाँधीजी को एक प्रकार का हलकापन दिखाई पड़ता था और उस बर्ताव से गाँधीजी के दिल को चोट पहुँची। दुसरे या तीसरे दिन अब्दुल्ला सेठ गाँधीजी को डरबन की अदालत दिखाने ले गये। वहाँ कई लोगों से अब्दुल्ला सेठ ने गाँधीजी का परिचय कराया। अदालत में अपने वकील के पास गाँधीजी को बिठाया। मैजिस्ट्रेट गाँधीजी की ओर देखते रहे और पगड़ी उतारने को बोले। गाँधीजी इनकार करते हुए अदालत से बाहर चले आये। पगड़ी उतरवाने का रहस्य गाँधीजी को अब्दुल्ला सेठ ने समझाया कि मुसलमानी पोशाक पहननेवाला अपनी मुसलमानी पगड़ी यहाँ पहन सकता है। दूसरे भारतवासियों को अदालत में जाते हुए अपनी पगड़ी उतार लेनी चाहिए। पगड़ी उतार देने का अर्थ था, अपमान सहन करना। इस प्रकार गाँधीजी की पहली लड़ाई डरबन की अदालत से शुरू हुई।

II. सारांश लिखिए :-

गाँधीजी अपने बड़े भाई के साथी एक वकील साहब के पास अर्जियाँ लिखने का काम करते थे। इसी समय उनके बड़े भाई के पास अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी का सन्देश आया कि दक्षिण अफ्रीका में उनका बड़ा कारोबार है। यदि भाई साहब गाँधीजी को वहाँ भेज दें तो उन्हें मदद मिलेगी। गाँधीजी राज़ी हुए और 1893 को अफ्रीका के लिए रवाना हुए।

नेटाल के बन्दर से गाँधीजी को लिवाने स्वयं अब्दुल्ला सेठ आये थे। नेटाल के लोगों के रंग-ढंग से गाँधीजी समझ गये कि वहाँ हिन्दुस्तानियों का आदर नहीं है।

दूसरे या तीसरे दिन अब्दुल्ला सेठ गाँधीजी को डरबन की अदालत दिखाने ले गये। मैजिस्ट्रेट ने गाँधीजी से पगड़ी उतारने को कहा। लेकिन गाँधीजी ने इनकार कर दिया। पगड़ी उतार देने का अर्थ था–अपमान सहन करना।

गाँधीजी ने अपने पक्ष का समर्थन करके अखबारों में लिखा। वह 'अनिमंत्रित अथिति' नाम से अखबारों में आया।

अब्दुल्ला सेठ ने अपने मुकदमे के लिए गाँधीजी को प्रिटोरिया में रहना ज़रूरी समझा। इसलिए सातवें या आठवें दिन गाँधीजी डरबन से रवाना हुए। उनके लिए पहले दर्जे का टिकट लिया गया था। रेल में एक यात्री गाँधीजी को देखकर चकराया, बाहर गया और एक अफ़्सर को लेकर आया। अफ़्सर ने गाँधीजी को दूसरे डिब्बे में जाने के लिए कहा। गाँधीजी ने इनकार करके पहले दर्जे का टिकट दिखाया। अफ़्सर ने न माना। वह बार-बार गाँधीजी को उतरने के लिए कहा। गाँधीजी ने तर्क करके उतरने से इनकार कर दिया। आखिर सिपाही आया। उसने गाँधीजी को धक्का मारकर नीचे गिरा दिया और सामान को भी नीचे उतार लिया गया।

गाँधीजी ने संकल्प किया कि दक्षिण अफ्रीका में रंगद्वेष रूपी महारोग छाया हुआ है। इस महारोग को उखाड़ फेंकने में जो कष्ट और दुख आ पड़े, सहना चाहिए।

दूसरे दिन गाँधीजी ने जनरल मैनेजर को तार द्वारा एक लम्बी शिकायत लिख भेजी। दादा अब्दुल्ला को भी समाचार भेजे। अब्दुल्ला सेठ के समाचार पाकर मेरित्सबर्ग के हिन्दुस्तानी व्यापारी और अन्य स्टेशनों के व्यापारी सब गाँधीजी से मिल और अपने ऊपर होनेवाले अन्यायों का ज़िक्र किया। सारा दिन इन्हीं बातों के सुनाने में गया।

रात हुई, गाड़ी आयी। रेल में गाँधीजी के लिए जगह तैयार थी। ट्रेन उन्हें चार्ल्सटाउन ले चली। आगे उन्हें घोड़ा-गाड़ी में और भी कष्टों का सामना करना पड़ा। अन्त में वे जोहान्सबर्ग पहुँचे। वहाँ से फिर रेल से प्रिटोरिया गये।

******

16. सेवा का श्रीगणेश

सन् 1893 में दक्षिण अफ्रीका-निवासी हिन्दुस्तानियों की स्थिति का पूरा-पूरा ज्ञान मुझे हो गया था, लेकिन प्रिटोरिया में हिन्दुस्तानियों से इस विषय में कभी-कभी बातचीत कर लेने के अलावा मैंने कोई प्रत्यक्ष कार्य अब तक नहीं किया था। मैंने देखा कि एक ओर मुकदमे की कार्रवाई और दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीका के भारतवासियों के कष्टों को दूर करने का प्रयत्न, दोनों बातें एक साथ नहीं की सकतीं। मैं समझ गया था कि दोनों काम एक साथ करने के मानी दोनों को नुकसान पहुँचाना होगा। यह 1984 की बात है। जिस मुकदमे के लिए मैं दक्षिण अफ्रीका आया, वह अच्छी तरह तय हो गया। इसलिए मैं डरबन लौट आया और वहाँ से हिन्दुस्तान जाने की तैयारी करने लगा। जब मुझे दादा अब्दुल्ला के यहाँ से विदाई दी जा रही थी, उसी समय किसी ने 'नेटाल मर्करी' अखबार की एक प्रति मुझे लाकर दी। उसमें नेटाल धारा-सभा की कार्रवाई की संक्षिप्त रिपोर्ट थी, जिसमें कुछ सतरें भारतीय मताधिकार के सिलसिले में भी थीं। नेटाल सरकार एक ऐसा बिल पेश करना चाहती थी, जिससे हिन्दुस्तानियों के मताधिकार छिनते थे। यों ही उन्हें अधिकार बहुत कम थे, फिर भी जो कुछ थे, उन्हें छीन लेने की यह शुरुआत थी। यह देखकर मैंने अपना हिन्दुस्तान जाना स्थगित कर दिया। उसी रात को बैठकर मैंने धारा-सभा में पेश करने के लिए एक दरख्वास्त तैयार की। सरकार से भी तार द्वारा प्रार्थना की कि वह धारा-सभा की कार्रवाई जल्दी शुरू न करे। तुरन्त सेठ अब्दुल्ला के सभापतित्व में एक कमेटी बनायी गयी और उन्हीं के नाम से तार भेजा गया। इसका फल यह हुआ कि दो दिन के लिए बिल की कार्रवाई रोक दी गयी। दक्षिण अफ्रिका की धारा-सभा को हिन्दुस्तानियों की तरफ़ से इस प्रकार अर्जी भेजने का यह पहला मौका था। इसका कुछ असर तो ज़रूर हुआ, मगर बिल का पास होना

कुछ भारतीय मित्रों के साथ

उससे नहीं रुक सका। ऐसे आन्दोलन करने का, दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भारतीयों का यह पहला ही अवसर था। इससे सारे समाज में उत्साह की एक नयी लहर फैल गयी। हर रोज़ सभाएँ होतीं और लोग अधिक संख्या में आते। ज़रूरत से ज़्यादा पैसा भी इकट्ठा हो गया। कितने ही लोग स्वेच्छा से बिना किसी मिहनताने के काम करने को तैयार हो गये। वे लिखने का काम करते, घूम-घूमकर लोगों से दस्तख्त कराते, और भी अन्य कई काम करते। ऐसे भी लोग थे, जो खुद काम भी करते थे और पैसा भी देते थे। पुराने गिरमिटिया कुलियों की जो सन्तान वहाँ थी, उन्होंने बड़ी तत्परता से इस आन्दोलन में योग दिया। वे अंग्रेज़ी जानते थे और सुन्दर अक्षर लिखते थे। दिन-रात उन्होंने नकलें करने का तथा दूसरा काम बड़े उत्साह से किया। एक महीने के अन्दर ही लार्ड रिपन के नाम, जो उस समय उपनिवेशमंत्री थे, दस हज़ार दस्तखतों के साथ दरख्वास्त भेज दी गयी। इस प्रकार मेरे सामने का तात्कालिक काम तो पूरा हो गया।

तब मैंने फिर हिन्दुस्तान जाने की इजाज़त चाही, लेकिन आन्दोलन में हिन्दुस्तानियों की इतनी ज़्यादा दिलचस्पी हो गयी थी कि उन्होंने मुझसे न जाने का आग्रह किया। उन्होंने कहा– "खुद आप ही ने तो हमें यह बताया कि यह तो सरकार का पहला कदम है, इसको न रोका गया तो अन्त में हमारा अस्तित्व ही मिट जाएगा। कौन जाने, उपनिवेशमंत्री हमारे मेमोरियल (प्रार्थना-पत्र) का क्या जवाब देंगे? हमारे उत्साह को तो आपने देख ही लिया है। हम काम करने और रुपया खर्च करने के लिए तैयार हैं, मगर बिना किसी राह बतानेवाले के यह सब किया–कराया चौपट हो जाएगा। इसलिए हमारा तो यही ख्याल है कि इस समय आपका फ़र्ज़ यही है कि आप यहाँ ठहरें।" उनकी यह दलील मुझे जंची और मुझे लगा कि हिन्दुस्तानियों के हितों की रक्षा के लिए कोई एक स्थायी संगठन बना लिया जाए तो अच्छा होगा। इस कारण मैं फिर रुक गया और इस प्रकार मई 1894 के लगभग 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' का जन्म हुआ। ईश्वर ने मेरे दक्षिणी अफ्रीका के जीवन की बुनियाद डाली तथा भारतीयों के आत्म-सम्मान की लड़ाई का बीज बोया।

यहाँ के काम का इतिहास जानने के लिए पाठकों को **'दक्षिण-अफ्रीका का सत्याग्रह'**[1] पढ़ने की सिफ़ारिश करता हूँ। उससे पता चलेगा कि हमें किन–किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, सरकारी अधिकारियों ने कैसे-कैसे हमले कांग्रेस पर किये और वह उनसे कैसे बाल-बाल बच गयी। लेकिन एक बात का उल्लेख यहाँ ज़रूर करना चाहता हूँ, वह यह कि अतिशयोक्ति करने की आदत से भारतीय समाज को बचाने की पूरी-पूरी कोशिश की गयी। उन्हें खुद अपने दोषों की तरह भी ध्यान दिलाने का पूरा यत्न किया गया। यूरोपियन लोगों की दलीलों में जो बात अच्छी और उचित मालूम पड़ती, उसकी कद्र की जाती थी। कई ऐसे अवसर आते, जिनमें यूरोपियन लोगों के साथ बराबरी के नाते और इज़्ज़त के साथ सहयोग करने का मौका आता, तो सच्चे दिल से ऐसा किया जाता। हमारे आन्दोलन की पूरी खबरें अखबारों को भेजी जातीं और जब कभी अखबार में हिन्दुस्तानियों पर हमला होता, तो उन अखबारों को उनके जवाब भी भेजे जाते।

---

1. यह पुस्तक 'सस्ता साहित्य मण्डल', नयी दिल्ली से प्रकाशित हुई है। मूल्य–साढ़े तीन रुपये।

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

नेटाल इण्डियन कांग्रेस का जन्म

जिस मुकदमे के लिए गाँधीजी दक्षिण अफ्रिका गये, उसे पूरा करके हिन्दुस्तान वापस आने की तैयारी कर रहे थे। उसी समय नेटाल सरकार एक ऐसा बिल पेश करना चाहती थी, जिससे हिन्दुस्तानियों के मताधिकार छिनते थे।

यह देखकर गाँधीजी ने हिन्दुस्तान वापस आना स्थगित कर दिया। सरकार से भी तार द्वारा प्रार्थना की कि वह धारा सभा की कार्रवाई जल्दी शुरू न करे। तुरन्त अब्दुल्ला सेठ के सभापतित्व में एक कमेटी बनायी गयी। इसका फल यह हुआ कि दो दिन के लिए बिल की कार्रवाई रोक दी गयी।

दक्षिण अफ्रीका की धारा-सभा को हिन्दुस्तानियों की तरफ़ से इस प्रकार अर्जी भेजने का यह पहला मौका था। इससे सारे समाज में उत्साह की एक नयी लहर फैल गयी। लोग अधिक संख्या में आते थे, खुद काम भी करते थे, पैसा भी देते थे और बड़ी तत्परता से इस आन्दोलन में योग देते थे। इस समय गाँधीजी ने सोचा कि हिन्दुस्तानियों के हितों की रक्षा के लिए कोई एक स्थायी संगठन बना लिया जाना चाहिए। इसीके फलस्वरूप मई सन् 1894 के लगभग 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' का जन्म हुआ।

II. सारांश लिखिए :–

सन् 1894 में, जिस मुकदमे के लिए गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका आये, वह अच्छी तरह तय हो गया। इसलिए वे डरबन लौट आये और वहाँ से हिन्दुस्तान लौट आने की तैयारी करने लगे। उसी समय नेटाल-सरकार जो बिल पेश करना चाहती थी, जिससे हिन्दुस्तानियों के मताधिकार छिनते थे। यह देखकर गाँधीजी ने हिन्दुस्तान जाना स्थगित कर दिया।

उसी दिन रात को धारा-सभा में पेश करने के लिए गाँधीजी ने एक अर्जी तैयार की। सरकार को भी तार द्वारा प्रार्थना की कि वह धारा-सभा की कार्रवाई जल्दी शुरू न करे। तुरन्त अब्दुल्ला सेठ के सभापतित्व में एक कर्मटी बनायी गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि दो दिन के लिए बिल की कार्रवाई रोक दी गयी। यह दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों को आन्दोलन करने का भी पहला अवसर था।

इस आन्दोलन से समाज में उत्साह की एक नयी लहर फैल गयी। हर रोज़ सभाएँ होतीं, लोग अधिक संख्या में आने लगे। एक महीने के अन्दर ही लार्ड रिपन के नाम, जो उस समय उपनिवेश-मंत्री थे, दस हज़ार दस्तखतों के साथ अर्जी भेज दी गयी। इस प्रकार गाँधीजी के सामने तात्कालिक काम पूरा हो गया था।

गाँधीजी फिर हिन्दुस्तान जाने की अनुमति माँगी, लेकिन आन्दोलन में हिन्दुस्तानियों को इतनी ज़्यादा दिलचस्पी हो गयी थी कि उन्होंने न जाने का आग्रह किया। गाँधीजी को लगा कि हिन्दुस्तानियों के हितों की रक्षा के लिए कोई एक स्थायी संगठन बना लिया जाए तो अच्छा होगा। इस कारण गाँधीजी फिर दक्षिण अफ्रीका में रुक गये। इस प्रकार मई 1894 के लगभग 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' का जन्म हुआ। ईश्वर ने गाँधीजी के दक्षिणी अफ्रीका के जीवन की बुनियाद डाली और भारतीयों के आत्म-सम्मान की लड़ाई का बीज बोया।

17. तूफ़ान के चिन्ह

दक्षिण अफ्रिका में रहते मुझे अब तीन साल हो चुके थे। मैं लोगों के परिचय में आ गया था। मेरी वकालत मामूली तौर पर अच्छी जम गयी थी और मैं समझने लगा था कि लोगों को वहाँ मेरी ज़रूरत है। इसलिए मैंने इरादा किया कि घर जाकर अपने परिवार को ले आऊँ और यहाँ जमकर बैठूँ। इसलिए 1896 में मैं वहाँ से छुट्टी लेकर छः महीने के लिए भारत आया। मैं देश में छः महीने बिता भी न पाया था कि नेटाल से मुझे तार मिला कि फ़ौरन लौट आओ। इसलिए मैं फिर जल्दी ही लौट गया। दादा अब्दुल्ला ने उसी समय 'कुरलैण्ड' नामक एक स्टीमर खरीदा था। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उसी जहाज़ से अपने कुटुम्ब के साथ बिना किराया दिये ही यात्रा करूँ। मैंने कृतज्ञतापूर्वक उनकी इच्छा का स्वागत किया और दिसम्बर महीने में मुंबई से दुबारा नेटाल के लिए जहाज़ में बैठा। इस बार मेरे साथ मेरी पत्नी और मेरे दो पुत्र भी थे। दूसरा स्टीमर 'नादरी' भी उन्हीं दिनों डरबन के लिए छूटा। दोनों जहाज़ों में कुल मिलाकर आठ सौ मुसाफ़िर रहे होंगे, जिनमें से आधे ट्रांसवाल जानेवाले थे।

जहाज़ दूसरे बन्दरों पर ठहरे बिना ही नेटाल पहुँचनेवाला था। इसलिए सिर्फ़ अठारह दिन की यात्रा थी। मानो नेटाल में हमारे पहुँचते ही होनेवाले किसी भावी तूफ़ान की चेतावनी देने के लिए तीन-चार दिन पहले समुद्र में भारी तूफ़ान आया। इस दक्षिण प्रदेश में दिसम्बर महीना गरमी और बरसात का मौसम होता है। इस कारण दक्षिण समुद्र में इन दिनों छोटे-बड़े तूफ़ान अकसर आया करते हैं। तूफ़ान इतने ज़ोर का था और इतने दिनों रहा कि मुसाफिर घबरा गये।

यह एक भव्य दृश्य था। दुःख में सब एक हो गये। सारा भेद-भाव भूल गये। ईश्वर को सच्चे हृदय से स्मरण करने लगे। हिन्दू-मुसलमान सब साथ मिलकर ईश्वर को याद करने लगे। कितनों ने मिन्नतें मानीं। कप्तान भी यात्रियों को आश्वासन देने लगा कि यद्यपि तूफ़ान ज़ोर का है, फिर भी इससे बड़े-बड़े तूफ़ानों का अनुभव मुझे है। जहाज़ यदि मज़बूत हो, तो एकाएक डूबता नहीं, आदि। इस तरह उसने मुसाफिरों को बहुत समझाया; पर उन्हें किसी तरह की तसल्ली न होती थी। जहाज़ में ऐसी आवाज़ें होतीं, मानो जहाज़ के अभी कहीं-न-कहीं से टुकड़े होते हैं, या अभी कहीं छेद होता है। वह इधर-उधर इतना हिलता कि ऐसा जान पड़ता, मानो अभी उलट जाएगा। डेक पर खड़ा रहना ही मुश्किल था। 'ईश्वर जो करे सो सही' इसके सिवा दूसरी बात किसी के मुँह पर न थी।

मुझे जहाँ तक याद है, ऐसी चिन्ता में चौबीस घण्टे बीते होंगे। अन्त में बादल बिखरे, सूर्य ने दर्शन दिये। कप्तान ने कहा- "अब तूफ़ान जाता रहा।"

लोगों के चेहरे से चिन्ता दूर हुई, और उसके साथ ही ईश्वर भी। मौत का डर दूर होते ही फिर गाना-तान, खान-पान शुरू हो गया; फिर वही माया का राज्य छा गया। अब भी नमाज़ पढ़ी जाती, भजन होते, परन्तु तूफ़ान के अवसर पर उसमें जो हार्दिकता दिखाई देती थी, वह न थी।

परन्तु इस तूफ़ान की बदौलत मैं यात्रियों में हिल-मिल गया था। यह कह सकते हैं कि मुझे तूफ़ान का भय न था अथवा कम-से-कम था। प्रायः इसी तरह के तूफ़ान मैं पहले देख चुका था। जहाज़ में मेरा जी नहीं मचलता, चक्कर भी नहीं आते, इसलिए मैं निर्भय होकर घूम-फिर सकता था, उन्हें आश्वासन दे सकता था और कप्तान के सन्देश उन तक पहुँचाता था। यह स्नेह-गांठ मेरे लिए बहुत उपयोगी साबित हुई। हमारे जहाज़ ने अठारह या उन्नीस दिसम्बर को डरबन बन्दर पर लंगर डाला और 'नादरी' भी उसी दिन पहुँचा। पर सच्चे तूफ़ान का अनुभव तो अभी होना बाकी ही था।

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :-

'कुरलैण्ड' से यात्रा

गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में लोगों के परिचय में खूब आ गये थे। वे समझने लगे कि दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी हिन्दुस्तानियों को उनकी आवश्यकता है। इसलिए उन्होंने इरादा किया कि घर जाकर अपने परिवार को ले आएँ और दक्षिण अफ्रीका ही में जमकर रहें। इसलिए सन् 1896 में गाँधीजी आन्दोलनों के बीचों बीच छुट्टी लेकर छः महीने के लिए भारत वापस आए। भारत में वे छः महीने बिता भी न पाये थे कि नेटाल से उन्हें तार मिला कि फौरन लौट आवें। इसलिए गाँधीजी को जल्दी ही दक्षिण अफ्रीका लौट जाना पड़ा।

जब गाँधीजी नेटाल जाने की तैयारी कर रहे थे, तब अब्दुल्ला सेठ ने गाँधीजी से अनुरोध किया कि 'कुरलैण्ड' नामक नये जहाज़ से गाँधीजी अपने कुटुम्ब के साथ बिना किराये दिये यात्रा करें जिसे सेठ ने अभी खरीदा था, और जल्दी ही नेटाल पहुँचें। गाँधीजी ने भी कृतज्ञता-पूर्वक उनकी इच्छा का स्वागत किया और दिसम्बर महीने मुँबई से दुबारा नेटाल के लिए जहाज़ में बैठे। इस बार उनके साथ उनकी पत्नी और दो पुत्र भी थे।

II. सारांश लिखिए :-

गाँधीजी के दक्षिण अफ्रीका में रहते तीन साल हो चुके थे। वे लोगों के परिचय में आ गये थे। उनकी वकालत मामूली तौर पर अच्छी जम गयी थी। वे समझने लगे कि लोगों को वहाँ उनकी ज़रूरत है। इसलिए गाँधीजी ने इरादा किया कि घर जाकर अपने परिवार को ले आएँ और दक्षिण अफ्रीका में जमकर बैठें। इसलिए सन् 1896 में वे छुट्टी लेकर छः महीने के लिए भारत आये। भारत में छः महीने बिता भी न पाये थे कि नेटाल से तार मिला कि फ़ौरन लौट आएँ। इसलिए गाँधीजी को फिर जल्दी लौट जाना पड़ा।

गाँधीजी दिसम्बर महीने मुँबई से दुबारा अपनी पत्नी और दोनों पुत्रों के साथ नेटाल के लिए जहाज़ में बैठे जहाज़ दूसरे बन्दरों पर ठहरे बिना ही नेटाल पहुँचनेवाला था। इसलिए सिर्फ़ अठारह दिन की यात्रा थी। दक्षिण प्रदेश में दिसम्बर का महीना गरमी और बरसात का मौसम होता है। इस कारण दक्षिण समुद्र में अकसर छोटे-छोटे तूफ़ान अकसर आया करते थे। वह तूफ़ान इतने ज़ोर का था और इतने दिनों रहा कि यात्री घबरा गये। गाँधीजी के लिए वह एक भव्य दृश्य था। क्योंकि सभी यात्री एक हो गये और सारा भेद-भाव भूलकर सच्चे हृदय से ईश्वर का स्मरण करने लगे।

गाँधीजी को याद थी कि ऐसी चिन्ता में करीब चौबीस घंटे बीते होंगे। अन्त में बादल बिखरे और सूर्य ने दर्शन दिये। कप्तान ने सभी यात्रियों को सांतवना देते हुए कहा कि अब तूफ़ान जाता रहा।

लोगों के चेहरे से चिन्ता दूर हुई। मौत का डर दूर होते ही फिर गान–तान, खान–पान शुरू हो गया था। तूफ़ान के बाद भी नमाज़ पढ़ी जाती थी, प्रार्थना होती थी।

इस तूफ़ान के कारण गाँधीजी यात्रियों में हिल-मिल गये थे। वे लोगों में निर्भय होकर घूम-फिर सकते थे, उनको आश्वासन दे सकते थे और कप्तान के सन्देश यात्रियों तक पहुँचा देते थे। यह स्नेह-गांठ गाँधीजी के लिए बहुत उपयोगी साबित हुई। जहाज़ ने अठारह या उन्नीस दिसम्बर को डरबन बन्दर पर लंगर डाला।

****

18. कसौटी

दक्षिण अफ्रीका के बंदरों पर यात्रियों की पूरी-पूरी डाक्टरी जाँच होती है। यदि रास्ते में किसी को कोई संक्रामक रोग हो गया हो, तो जहाज़ सूतक में-क्वारंटीन में रखा जाता है। हमने जब मुंबई छोड़ा, तब वहाँ प्लेग फैल रहा था। इसलिए हमें सूतकबाधा होने का कुछ तो भय था ही। बन्दर में लंगर डालने के बाद सबसे पहले जहाज़ पीला झंडा फहराता है। डाक्टरी जाँच के बाद जब डाक्टर छुट्टी देता है, पीला झंडा उतार दिया जाता है, फिर मुसाफ़िरों के रिश्तेदारों को जहाज़ पर आने की छुट्टी मिलती है।

इसके मुताबिक हमारे जहाज़ पर भी पीला झंडा लगा दिया गया था। डाक्टर आये। जाँच करके पाँच दिन के सूतक का हुक्म दिया गया, क्योंकि उनकी यह धारणा थी कि प्लेग के जन्तु तेईस दिन तक कायम रहते हैं। इसलिए उन्होंने यह तय किया कि मुंबई छोड़ने के बाद तेईस दिन तक यात्रियों को सूतक में रखना चाहिए।

परन्तु इस सूतक के हुक्म का हेतु केवल आरोग्य न था। डरबन के गोरे हमें वापस भारत लौटा देने का आन्दोलन कर रहे थे। इस हुक्म में यह बात भी मद्दे नज़र थी।

दादा अब्दुल्ला की ओर से हमें शहर की इस हलचल की खबरें मिला करती थीं। गोरों की बड़ी-बड़ी सभाएँ होती थीं। दादा अब्दुल्ला को धमकियाँ भेजी जाती थीं, उन्हें लालच भी दिये जाते थे। यदि दादा अब्दुल्ला दोनों जहाज़ों को वापस लौटा दें, तो उन्हें सारा हरजाना देने को तैयार थे। दादा अब्दुल्ला किसी की धमकियों से डरनेवाले न थे। इस समय सेठ अब्दुल करीम हाजी आदम दूकान पर थे। उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि चाहे जितना नुकसान हो, मैं जहाज़ को बन्दर पर लाकर मुसाफ़िरों को उतरवाकर रहूँगा। मुझे हमेशा वह सविस्तर पत्र लिखा करते। सद्भाग्य से इस बार स्वर्गीय मन सुखलाल हीरालाल नाजर मुझसे मिलने डरबन से आ पहुँचे थे। वह बड़े चतुर और जवांमर्द आदमी थे। उन्होंने लोगों को उतरने की सलाह दी। उनके वकील मि. लाटन थे। वह भी वैसे ही बहादुर थे। उन्होंने गोरों के काम की खूब निन्दा की और लोगों को जो सलाह दी, वह केवल वकील की हैसियत से फीस लेने के लिए नहीं, बल्कि एक सच्चे मित्र के तौर पर दी थी।

डरबन की अदालत में

गोरों के इस आन्दोलन का मध्य बिन्दु मैं ही था। मुझपर दो इलज़ाम थे:-

1. हिन्दुस्तान में मैंने नेटाल के गोरों की अनुचित निन्दा की है और-

2. मैं नेटाल को हिन्दुस्तानियों से भर देना चाहता हूँ । इसलिए 'करलैण्ड' और 'नादरी' में खास तौर पर नेटाल में बसाने के लिए हिन्दुस्तानियों को भर लाया हूँ ।

मुझे अपनी ज़िम्मेदारी का ख्याल था । मेरे कारण दादा अब्दुल्ला ने बड़ी जोखिम अपने सिर ले ली थी । मुसाफ़िरों की भी जान जोखिम में थी । मैंने अपने बाल-बच्चों को साथ लाकर उन्हें भी दुःख में डाल दिया था । फिर भी मैं था सब तरह निर्दोष । मैंने किसी को नेटाल जाने के लिए ललचाया न था ।

अन्त में तेईसवें दिन अर्थात् तेरह जनवरी को जहाज़ को इजाज़त मिली और मुसाफ़िरों को उतरने देने की आज्ञा प्रकाशित हो गयी । जहाज़ धक्के पर आया । मुसाफ़िर उतरे, परन्तु मेरे लिए दक्षिण अफ्रीका सरकार के एक सदस्य मि. एस्कम्ब ने कप्तान से कहला दिया था कि गाँधी को तथा उनके बाल-बच्चों को शाम को उतारिएगा । गोरे उनके खिलाफ़ बहुत उभरे हुए हैं और उनकी जान खतरे में है । धक्के के सुपरिण्टेण्डेण्ट मि. टैटम उन्हें शाम को लिवा ले जाएँगे ।

कप्तान ने मुझे यह सन्देश सुनाया । मैंने उनके अनुसार शाम को उतरना स्वीकार किया, परन्तु इस सन्देश को मिले अभी आधा घण्टा भी न हुआ होगा कि मि. लाटन आये और कप्तान से मिलकर कहा– "यदि मि. गाँधी मेरे साथ आना चाहें, तो मैं अपनी ज़िम्मेदारी पर ले जाना चाहता हूँ । जहाज़ के एजेंट के वकील की हैसियत से मैं आपसे कहता हूँ कि मि. गाँधी के सम्बन्ध में जो आदेश आपको मिला है, उससे आप अपने को बरी समझें ।" इस तरह कप्तान से बातचीत करके वह मेरे पास आये और कुछ इस प्रकार कहा– "यदि आपको ज़िन्दगी का डर न हो, तो मैं चाहता हूँ कि श्रीमती गाँधी और बच्चे गाड़ी में रुस्तमजी सेठ के यहाँ चले जाएँ और मैं और आप रास्ते से होकर पैदल चलें । रात में अंधेरा हो जाने पर चुपके-चुपके शहर में जाना मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता । अब तो चारों ओर शान्ति है । गोरे सब इधर-उधर बिखर गये हैं और मेरा तो यही मत है कि आपका इस तरह छिपकर जाना ठीक नहीं ।"

मैं सहमत हुआ । पत्नी और बच्चे रुस्तमजी सेठ के यहाँ गाड़ी में गये और सही-सलामत जा पहुँचे । मैं कप्तान से विदा मांगकर मि. लाटन के साथ जहाज़ से उतरा । रुस्तमजी सेठ का घर कोई दो मील था ।

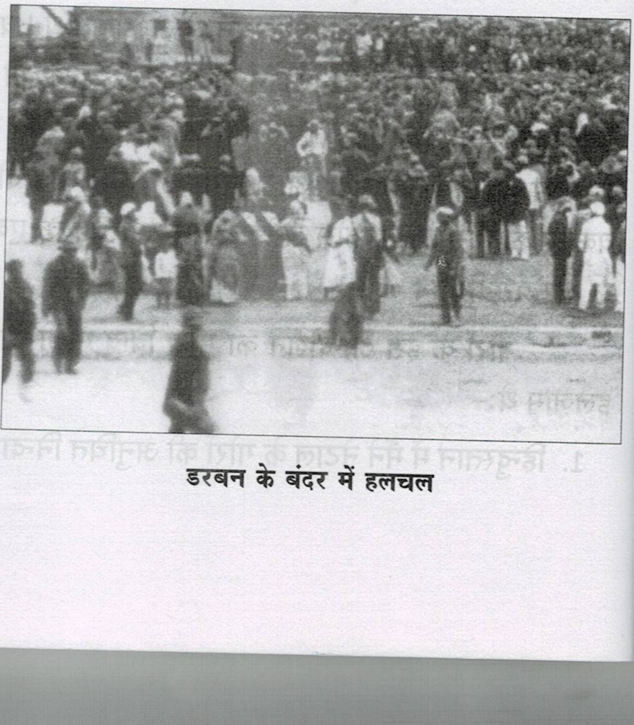
डरबन के बंदर में हलचल

जैसे ही हम जहाज़ से उतरे, कुछ गोरे लड़कों ने मुझे पहचान लिया और वे 'गाँधी-गाँधी' चिल्लाये । तत्काल दो-चार आदमी इकट्ठे हो गये और मेरा नाम लेकर ज़ोर से चिल्लाने लगे । मि. लाटन ने देखा कि भीड़ बढ़ जाएगी, इससे उन्होंने रिक्शा

मंगाया। मुझे रिक्शा में बैठना कभी अच्छा न मालूम होता था। मुझे उसका यह पहला ही अनुभव होनेवाला था। पर छोकरे क्यों बैठने देने लगे? उन्होंने रिक्शावाले को धमकाकर भगा दिया।

हम आगे बढ़े। भीड़ भी बढ़ती जाती थी। काफ़ी मजमा हो गया। सबसे पहले तो भीड़ ने मुझे मि. लाटन से अलग कर दिया। फिर मुझपर पत्थर और सड़े अण्डे बरसने लगे। किसी ने मेरी पगड़ी भी उड़ा दी और मुझपर लातें जमानी शुरू हुई।

मुझे गश आ गया। नज़दीक के घर की जाली पकड़कर मैंने सहारा लिया। खड़ा रहना तो असम्भव ही था। अब थप्पड़-घूंसे भी पड़ने लगे।

इतने ही में पुलिस-सुपरिण्टेण्डण्ट की पत्नी, जो मुझे जानती थीं, उधर से होकर निकलीं। मुझे देखते ही वह मेरे पास आ खड़ी हुईं, और धूप के न रहते हुए भी अपना छाता मुझपर तान दिया। इससे भीड़ कुछ दबी। अब वे अगर चोट करते, तो भी मिसेज अलेक्जेण्डर को बचाकर ही कर सकते थे।

इसी बीच कोई हिन्दुस्तानी मुझपर हमला होता हुआ देख, पुलिस-थाने में दौड़ गया। सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डर पुलिस की एक टुकड़ी मुझे बचाने के लिए भेजी। वह समय पर आ पहुँची। मेरा रास्ता पुलिस-चौकी ही गुज़रता था। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने थाने में ठहर जाने को कहा। मैंने इन्कार कर दिया, कहा- "जब लोग अपनी भूल समझ लेंगे, तब शान्त हो जाएँगे। मुझे उनकी न्याय-बुद्धि पर विश्वास है।"

पुलिस की रक्षा में मैं सही-सलामत पारसी रुस्तमजी के घर पहुँचा। पीठ पर मुझे भीतरी चोट आयी थी। ज़ख्म सिर्फ़ एक ही जगह हुआ था। जहाज़ के डाक्टर दादी बरज़ोर जी वहीं मौजूद थे। उन्होंने मेरी अच्छी तरह सेवा-शुश्रूषा की।

इस तरह जहाँ अन्दर शान्ति थी, वहाँ बारह से गोरों ने घर को घेर लिया। शाम हो गयी थी। अंधेरा हो गया था। हज़ारों लोग बाहर शोर मचा रहे थे और चिल्ला रहे थे कि गाँधी को हमारे हवाले कर दो। मौका नाजुक देखकर सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डर स्वयं वहाँ पहुँच गये थे और भीड़ को डरा-धमकाकर नहीं, बल्कि हँसी-मज़ाक करते हुए काबू में रख रहे थे।

कुछ यूरोपीय समर्थकों के साथ

फिर भी वह चिन्ता मुक्त न थे। उन्होंने मुझे इस आशय का सन्देश भेजा- "यदि आप अपने मित्र के जान-माल को, मकान को तथा अपने बाल-बच्चों को बचाना चाहते हैं, तो मैं जिस तरह बताऊँ, आपको छिपकर इस घर से निकल जाना चाहिए।"

सुपरिण्टेण्डेण्ट की तजवीज के मुताबिक मैंने हिन्दुस्तानी सिपाही की वर्दी पहनी। कहीं सिर पर चोट न लगे, इस अन्देशे से सिर पर एक पीतल की तश्तरी रख ली और उसपर मदरासियों का-सा लम्बा साफा लपेटा। साथ में दो जासूस थे, जिनमें एक ने हिन्दुस्तानी व्यापारी का रूप बनाया था, अपना मुँह हिन्दुस्तानी के रंग का रंग लिया था। दूसरे ने क्या स्वांग बनाया था, यह मैं भूल गया हूँ। हम नज़दीक की गली से होकर पड़ोस की एक दूकान में पहुँचे और गोदाम में रखे बोरों के ढेर के अंधेरे में बचते हुए दूकान के दरवाज़े से निकल भीड़ में होकर बाहर चले गये। गली के मुँह पर गाड़ी खड़ी थी, उसमें बैठकर हम उसी थाने पर पहुँचे, जहाँ ठहरने के लिए सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा खुफ़िया पुलिस के अफ़सर का एहसान माना।

इस तरह एक ओर जब मैं दूसरी जगह ले जाया जा रहा था, तब दूसरी ओर सुपरिण्टेण्डेण्ट भीड़ को गीत सुना रहा था :

"चलो, इस गाँधी को हम उस इमली के पेड़ पर फाँसी लटका दें।"

जब सुपरिण्टेण्डेण्ट को खबर मिल गयी कि मैं सही-सलामत मुकाम पर पहुँच गया, तब उन्होंने भीड़ से कहा- "लो, तुम्हारा शिकार तो इस दूकान से होकर सही-सलामत बाहर सटक गया!" यह सुनकर भीड़ में से कुछ लोग बिगड़े, हँसे और बहुतेरों ने तो उनकी बात ही न मानी।

"तो तुममें से कोई जाकर अन्दर देख ले। अगर गाँधी वहाँ मिल जाएँ, तो उन्हें मैं तुम्हारे हवाले कर दूँगा। न मिले तो तुमको अपने घर चले जाना चाहिए। मुझे इतना तो विश्वास है कि तुम रुस्तमजी के मकान को न जलाओगे और गाँधी के बाल-बच्चों को नुकसान न पहुँचाओगे", सुपरिण्टेण्डेण्ट ने कहा।

भीड़ ने प्रतिनिधि चुने। उन्होंने भीड़ को निराशाजनक समाचार सुनाये। सब सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्जेण्डर की समय-सूचकता और चतुराई की स्तुति करते हुए और कुछ लोग मन-ही-मन कुढ़ते हुए, अपने-अपने घर चले गये।

बाद में स्वर्गीय मि. चेम्बरलेन ने दक्षिण अफ्रीका के अधिकारियों को तार दिया कि गाँधी पर हमला करनेवालों पर मुकदमा चलाया जाए और ऐसा किया जाए कि जिससे गाँधी को इन्साफ मिले। मि. एस्कम्ब ने मुझे बुलाया। मुझपर जो हमला हुआ, उसके लिए दुःख प्रदर्शित किया और कहा- "आप यह तो अवश्य मानेंगे कि आपको ज़रा भी कष्ट पहुँचने से मुझे खुशी नहीं हो सकती। मि. लाटन की सलाह मानकर आपने तुरन्त उतर जाने का साहस किया, उसका आपको हक था। पर यदि मेरे सन्देश के अनुसार आपने किया होता, तो यह दुःखद घटना न हुई होती। अब यदि आप आक्रमणकारियों को पहचान सकें, तो मैं उन्हें गिरफ़्तार करके मुकदमा चलाने के लिए तैयार हूँ। मि. चेम्बरलेन भी ऐसा ही चाहते हैं।"

"मैं किसी पर मुकदमा चलाना नहीं चाहता। आक्रमणकारियों में से एक-दो को मैं पहचान भी लूँ; तो उन्हें सज़ा कराने से क्या लाभ? फिर मैं तो उन्हें दोषी भी नहीं मानता; क्योंकि उन बेचारों को तो यह कहा गया कि मैंने हिन्दुस्तान में नेटाल के गोरों की भरपेट और बढ़ा-चढ़ाकर निन्दा की है। इस बात पर यदि वे

विश्वास कर लें और मुझपर बिगड़ पड़ें, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? कुसूर तो ऊपर के लोगों का और मुझे कहने दें तो, आपका माना जा सकता है। आप लोगों को ठीक सलाह दे सकते थे, पर आपने रायटर के तार पर विश्वास किया और कल्पना कर ली कि मैंने सचमुच ही अत्युक्ति से काम लिया था। मैं किसी पर मुकदमा चलाना नहीं चाहता। जब असली और सच्ची बात लोगों पर प्रकट हो जाएगी और लोग जान जाएँगे तब अपने-आप पछताएँगे।"

"तो आप मुझे यह बात लिखकर दे देंगे? मुझे मि. चेम्बरलेन को इस आशय का तार देना पड़ेगा। मैं नहीं चाहता कि आप जल्दी में कोई बात लिख दें। मि. लाटन से तथा अपने दूसरे मित्रों से सलाह करके जो उचित लगे वही करें। यह बात मैं जानता हूँ कि यदि आप आक्रमणकारियों पर मामला न चलाएँगे, तो सब

सत्याग्रही मित्रों के साथ

बातों को शान्त करने में मुझे बहुत मदद मिलेगी और आपकी प्रतिष्ठा तो बहुत ही बढ़ जाएगी।"

मैंने उत्तर दिया– "इस सम्बन्ध में मेरे विचार निश्चित हो चुके हैं। यह तय है कि मैं किसी पर मुकदमा चलाना नहीं चाहता। इसलिए मैं आपको लिखे देता हूँ।"

यह कहकर मैंने वह आवश्यक पत्र लिख दिया।

डरबन शहर का एक दृश्य

हमले के दो-एक दिन बाद जब मैं मि. एस्कम्ब से मिला, तब मैं पुलिस-थाने में ही था। मेरे साथ मेरी रक्षा के लिए एक-दो सिपाही रहते थे। पर जब मैं मि. एस्कम्ब के पास ले जाया गया था, तब इस तरह रक्षा की ज़रूरत ही नहीं रह गयी थी। जिस दिन मैं जहाज़ से उतरा, उसी दिन अर्थात् पीला झंडा उतरते ही तुरन्त, 'नेटाल एडवरटाइजर' का प्रतिनिधि मुझसे आकर मिला था। उसने कितनी ही बातें पूछी थीं और उसके प्रश्नों के उत्तर में मैंने एक-एक बात का पूरा-पूरा जवाब दिया था। सर फ़ीरोज़शाह की नेक सलाह के अनुसार उस समय मैंने भारत में एक भी भाषण बगैर लिखा नहीं दिया था। अपने इन तमाम लेखों और भाषणों का संग्रह मेरे पास था ही। वे सब मैंने उसे दे दिये और यह साबित कर दिया कि भारत में मैंने ऐसी एक भी बात नहीं कही थी, जो उससे कड़े शब्दों में दक्षिण अफ्रीका में न कही हो। मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि 'कुरलैण्ड' तथा 'नादरी' के मुसाफ़िरों को लाने में मेरा हाथ बिल्कुल नहीं है। उनमें से बहुतेरे तो नेटाल के ही पुराने बाशिन्दे थे और शेष नेटाल जानेवाले नहीं, बल्कि ट्रांसवाल जानेवाले थे। उस समय नेटाल में रोज़गार मन्द था। ट्रांसवाल में काम-धंधा खूब चल रहा था और आमदनी भी अच्छी होती थी। इसलिए अधिकांश हिन्दुस्तानी वहीं जाना पसन्द करते थे।

इसी स्पष्टीकरण का तथा आक्रमणकारियों पर मुकदमा न चलाने का प्रभाव इतना ज़बरदस्त हुआ कि गोरों को शर्मिन्दा होना पड़ा। अखबारों ने मुझे निर्दोष बताया और हुल्लड़ करनेवालों को भला-बुरा कहा। इस प्रकार अन्त में मुझे इस घटना से लाभ ही हुआ। और जो मेरा लाभ था, वह कौम का ही लाभ था। इससे हिन्दुस्तानी लोगों की प्रतिष्ठा बढ़ी और मेरा, 'सत्याग्रह' का रास्ता अधिक सुगम हो गया।

तीन या चार दिन में मैं घर गया और थोड़े ही दिनों में मैं अपना काम-काज देखने-भालने लगा।

❊❊❊❊❊❊

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

नेटाल में गाँधीजी पर आक्रमण

गाँधीजी 'कुरलैण्ड' जहाज़ से जब नेटाल पहुँचे, तब नेटाल में गोरों का आन्दोलन गाँधीजी तथा दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध हो रहा था। उस समय वहाँ प्लेग भी फैल रहा था; इसलिए जहाज़ को सूतक में रखा गया था।

तेईसवें दिन मुसाफ़िरों को उतरने की आज्ञा मिली। वकील मि. लाटन अपनी ज़िम्मेदारी पर गाँधीजी को लेकर आम रास्ते से पैदल चलने लगे। कुछ गोरे लड़कों ने गाँधीजी को पहचान लिया और चिल्लाने लगे। भीड़ बढ़ने लगी और भीड़ ने गाँधीजी को मि. लाटन से अलग कर दिया। उनपर पत्थर और सड़े अण्डे बरसने लगे। किसी ने उनकी पगड़ी उड़ा दी और उनपर लातें जमानी शुरू कीं। गाँधीजी को मूर्छा आने लगी। उन्होंने नज़दीक के घर के जाली पकड़कर सहारा लिया। इस समय पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट की पत्नी, जो गाँधीजी को जानती थीं, उधर से होकर निकलीं। गाँधीजी को देखकर उनके पास आ खड़ी हो गयीं, उनपर अपना छाता तान लिया। इस प्रकार गोरों ने गाँधीजी पर अपना रोब जमाया।

II. सारांश लिखिए :-

दक्षिण अफ्रिका के बन्दरों पर यात्रियों की पूरी-पूरी डाक्टरी जाँच होती है कि किसी को कोई संग्रामक रोग हो गया हो या नहीं। जब गाँधीजी ने अपने परिवार के साथ मुंबई छोड़ा, तब वहाँ प्लेग फैल रहा था। इसलिए डाक्टर के हुक्म पर जहाज़ सूतक में रखा गया। उस समय डरबन के गोरे यात्रियों सहित दोनों जहाज़ों को भारत लौटा देने का आन्दोलन कर रहे थे।

गोरों के इस आन्दोलन का मध्यबिन्दु गाँधीजी ही थे। गाँधीजी पर दो जुर्म थे- 1. हिन्दुस्तान में गाँधीजी ने नेटाल के गोरों की अनुचित निन्दा की और 2. नेटाल को हिन्दुस्तानियों से भर देने के उद्देश्य से 'कुरलैण्ड' और 'नादरी' में हिन्दुस्तानियों को भर लाये हैं।

अन्त में तेरह जनवरी को यात्रियों को उतरने देने की आज्ञा जहाज़ को मिली। यात्री उतरे। गाँधीजी पत्नी और पुत्रों के अलग गाड़ी में रुस्तमजी के घर भेजकर आलग हो गये। जैसे ही गाँधीजी जहाज़ से उतरे, कुछ गोरे लड़कों ने उन्हें पहचान लिया और 'गाँधी-गाँधी' चिल्लाये। यह सुनकर और आदमी इकट्ठे हो गये और उनपर पत्थर एवं सड़े अण्ड़े बरसाने लगे। किसी ने पगड़ी उड़ा दी और गाँधीजी पर लातें जमानी शुरू कीं।

इतने में गाँधीजी को सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्ज़ेण्डर से भेजी गयी पुलिस की एक टुकड़ी समय पर आ पहुँची। पुलिस की रक्षा में गाँधीजी सही-सलामत रुस्तमजी के यहाँ पहुँचे।

अब रुस्तमजी के घर को गोरों ने घेर लिया। सुपरिण्टेण्डेण्ट अलेक्ज़ेण्डर की योजना के अनुसार गाँधीजी वेश बदलकर, नज़दीक की गली से होकर बाहर चले गये। गली के मुँह पर गाड़ी खड़ी थी, उसमें बैठकर थाने पर पहुँचे। गाँधीजी आक्रमणकारियों पर मुकदमा चलाना नहीं चाहते थे।

जब गोरों को स्पष्ट हुआ कि गाँधीजी निरपराधी हैं, तब उनको शर्मिन्दा होना पड़ा। अखबारों ने गाँधीजी को निर्दोष बताया और आक्रमणकारियों को भला-बुरा कहा। इससे हिन्दुस्तानियों की प्रतिष्ठा बढ़ी और उनके 'सत्याग्रह' का रास्ता अधिक सुगम हो गया।

******

19. सेवा-भाव और सादगी

मेरा काम यद्यपि ठीक चल रहा था, फिर भी मुझे उससे सन्तोष न था। मन में यह मंथन चलता ही रहता था कि जीवन में अधिक सादगी आनी चाहिए और कुछ-न-कुछ शारीरिक सेवा-कार्य होना चाहिए।

संयोग से एक दिन एक अपंग कोढ़ी घर आ पहुँचा। पहले तो कुछ खाने को देकर हटा देने को जी चाहा; पर बाद को मैंने उसे एक कमरे में रखा, उसके ज़ख्मों को धोया और शुश्रूषा की। किन्तु यह कितने दिनों तक चल सकता था? सदा के लिए उसे घर में रखने योग्य न सुविधा थी, न हिम्मत। अतः मैंने उसे गिरमिटियों के सरकारी अस्पताल में भेज दिया।

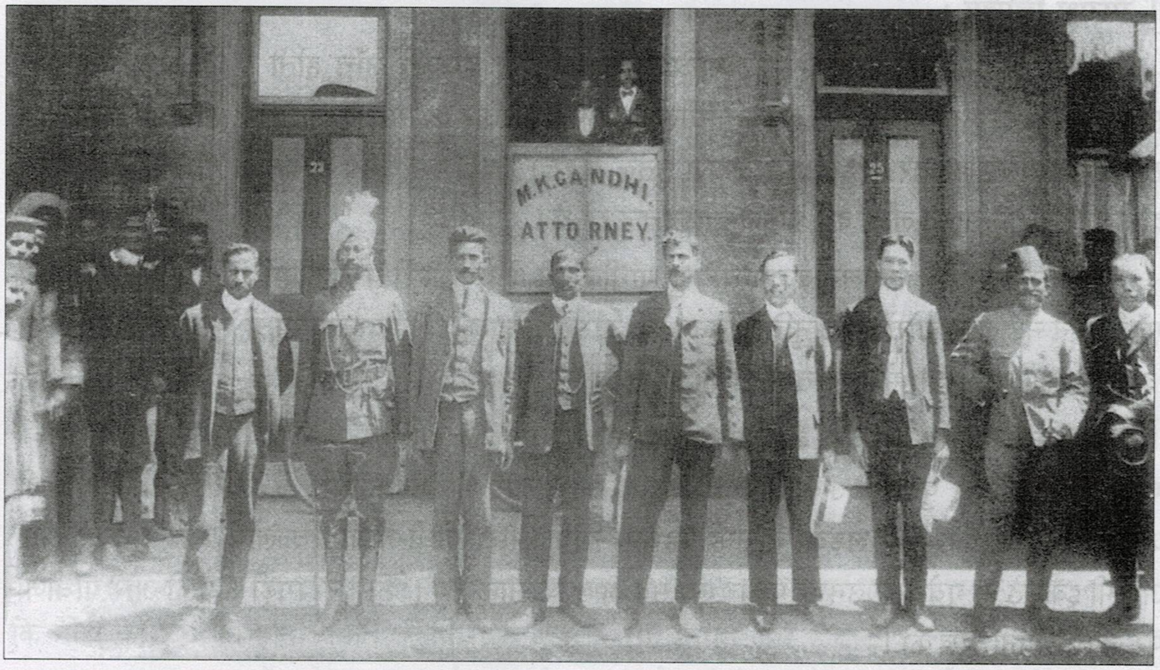

जोहानसबर्ग का कार्यालय और मित्रवर्ग

पर इससे मुझे तृप्ति नहीं हुई। मन में यह हुआ करता कि यदि ऐसा कोई शुश्रूषा का काम सदा मिलता रहे, तो क्या ही अच्छा हो। डॉ. बूथ सेण्ट एडम्स मिशन के अधिकारी थे। जो कोई आता उसे वह हमेशा मुफ़्त दवा देते थे। बड़े-भले आदमी थे, हृदय स्नेहपूर्ण था। उनकी देख-रेख में पारसी रुस्तमजी के दान से एक छोटा-सा अस्पताल खोला गया था। इसमें शुश्रूषा के तौर पर काम करने की मुझे बड़ी इच्छा हुई। एक-दो घंटे तक उसमें दवा देने का काम रहता था। दवा बनानेवाले किसी अवैतविक या स्वयं सेवक की वहाँ ज़रूरत थी। मैंने इतना समय अपने काम में से निकालकर इस काम को करने का निश्चय किया। वकालत-संबंधी मेरा काम तो इतना ही था– दफ़्तर में बैठे-बैठे सलाह देना, दस्तावेज के मसविदे बनाना और झगड़े सुलझाना। मजिस्ट्रेट के इजलास में थोड़े-बहुत ही मुकदमे रहते। उनमें से अधिकांश तो अविवादास्पद होते

थे। जब ऐसे मुकदमे होते, तब मेरे साथी श्री खान उनकी पैरवी कर देते। वह मेरे बाद आये थे और मेरे साथ ही रहते थे। उनके इस सहयोग के कारण मैं इस छोटे-से अस्पताल में काम करने लगा।

रोज़ सुबह वहाँ जाता। आने-जाने और काम करने में कोई दो घंटे लगते। इस काम से मेरे मन को शांति मिली। रोगी से हाल-चाल पूछकर डॉक्टर से समझाना और डॉक्टर जो दवा बताए, वह तैयार करके दे देना, यह मेरा काम था। इस कार्य से मैं दुःखी हिन्दुस्तानियों के निकट संबंध में आने लगा। उसमें ज़्यादातर लोग तो तमिल और तेलुगू या उत्तर भारतीय गिरमिटिया थे।

यह अनुभव मुझे आगे जाकर बड़ा उपयोगी साबित हुआ। बोअर-युद्ध के समय घायलों की शुश्रूषा में तथा दूसरे रोगियों की सेवा-टहल में मुझे उससे बड़ी सहायता मिली।

इस प्रकार सेवा द्वारा लोगों के निकट परिचय में आना शुरू हुआ। उसके साथ ही सादगी की ओर भी झुकाव बढ़ा।

यद्यपि मेरी रहन-सहन शुरू में कुछ ठाट-बाट की थी, परन्तु उसका मोह मुझे नहीं हुआ। इसलिए घर-गृहस्थी जमाते ही मैंने खर्च कम करने की शुरूआत की। धुलाई का खर्च कुछ ज़्यादा मालूम हुआ। धोबी नियमित रूप से कपड़े भी न लाता, इस कारण दो-तीन दर्जन कमीज़ और इतने ही कालर से कम में काम न चलता। कालर रोज़ बदलता था, कमीज़ रोज़ नहीं तो तीसरे दिन ज़रूर बदलता। इस तरह दोहरा खर्च लगता। यह मुझे व्यर्थ मालूम हुआ। इसलिए घर पर भी कपड़े धोने की शुरूआत की। धुलाई-विद्या की पुस्तक पढ़कर धोना सीख लिया और पत्नी को भी सिखा दिया। इससे काम का कुछ भार बढ़ा तो, पर एक नयी चीज़ थी, इसलिए मनोरंजन भी होता।

पहले-पहल जो कालर मैंने धोया, उसे मैं कभी न भूल सकूँगा। इसमें कलफ ज़्यादा था और इस्त्री पूरी गरम न थी। फिर कालर के जल जाने के भय से इस्त्री ठीक-ठीक दबायी नहीं गयी थी। इस कारण कालर कड़ा तो हो गया; पर उसमें से कलफ झिरता रहता है।

इसी कालर को लगाकर मैं अदालत में गया और बैरिस्टरों के मज़ाक का साधन बन गया; परन्तु ऐसी हँसी-दिल्लगी को सहन करने की क्षमता मुझमें उस समय भी कम न थी।

"कालर हाथ से धोने का यह पहला प्रयोग है, इसलिए उसमें से कलफ झिर रहा है। पर मेरा इसमें कुछ हर्ज नहीं होता। फिर आप सब लोगों के इतने विनोद का कारण हुआ, यह विशेष बात है।" मैंने स्पष्टीकरण किया।

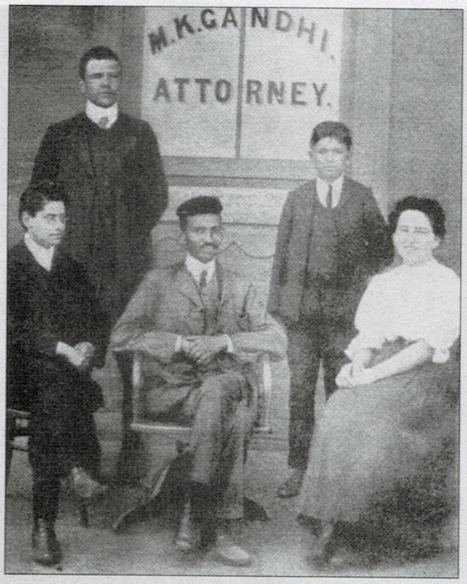

कार्यकर्ताओं के साथ

"पर धोबी क्या नहीं मिलते?" एक मित्र ने पूछा।

"यहाँ धोबी का खर्च मुझे नागवार मालूम हो रहा है। कालर की कीमत के बराबर धुलाई का खर्च– और फिर भी धोबी की गुलामी बरदास्त करनी पड़ती है, सो अलग। इसकी बनिस्बत तो मैं घर पर हाथ से धो लेना ही ज़्यादा पसन्द करता हूँ।"

पर स्वावलम्बन की यह खूबी मैं अपने मित्रों को न समझा सका।

मुझे कहना चाहिए कि अन्त में मैंने अपने काम के लायक कपड़े धोने की कुशलता प्राप्त कर ली थी और कहना होगा कि धोबी की धुलाई से घर की धुलाई किसी तरह घटिया न रहती थी। कालर का कड़ापन और चमक धोबी के धोये कालर से किसी तरह कम न थी।

गोखले के पास स्व. महादेव गोविन्द रानडे का प्रसाद-स्वरूप एक दुपट्टा था। गोखले उसे बड़े जतन से रखते और प्रसंग-विशेष पर ही उसका इस्तेमाल करते। जोहान्सबर्ग में उनके स्वागत के उपलक्ष में जो भोज हुआ था, वह अवसर बड़े महत्व का था। दक्षिण अफ्रीका में यह उनका सबसे महत्त्वपूर्ण भाषण था। इसलिए इस अवसर पर अपना वह दुपट्टा डालना चाहते थे। उसमें सलवटें पड़ गयी थीं और इस्त्री करने की ज़रूरत थी। धोबी के यहाँ भेजकर तुरन्त इस्त्री करा लेना सम्भव न था। मैंने कहा– "ज़रा मेरी विद्या को भी आजमा लीजिए।"

"तुम्हारी वकालत पर मैं विश्वास कर सकता हूँ, पर इस दुपट्टे पर तुम्हारी धुलाई-कला का प्रयोग न होने दूँगा। तुम इसे जला डालो तो? जानते हो यह कितना अमूल्य है?" यह कहकर उन्होंने बड़े उल्लास से उस प्रसादी की कथा कह सुनायी।

मैंने नम्रता के साथ दाग न पड़ने देने की ज़िम्मेदारी ली और मुझे इस्त्री करने की इजाज़त मिल गयी। बाद में अपनी कुशलता का प्रमाण-पत्र भी मुझे मिला। अब यदि दुनिया मुझे प्रमाण-पत्र न दे तो इससे क्या?

****

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

धुलाई-विद्या की सीख

जिस प्रकार गाँधीजी सेवा द्वारा लोगों के निकट आना शुरू करने लगे, उसी प्रकार सादगी की ओर भी उनका झुकाव बढ़ा। धुलाई का खर्च कुछ ज़्यादा मालूम पड़ता था। धोबी भी नियमित रूप से कपड़े न लाता था। दोहरा खर्च लगता था।

यह गाँधीजी को व्यर्थ मालूम हुआ। इसलिए घर पर ही कपड़े धोने की शुरूआत की। धुलाई-विद्या की पुस्तक पढ़कर धोना सीख लिया और अपनी पत्नी को भी सिखा दिया। इससे काम का कुछ भार बढ़ गया था, पर मनोरंजन ज़्यादा होता था। पहले-पहल जो कालर उन्होंने धोया, उसे वे कभी नहीं भूले थे। उसमें कलफ़ ज़्यादा था और इस्त्री पूरी गरम न थी। इस कारण कालर में से कलफ़ झिरता रहता था। मित्रों के बीच मज़ाक का साधन बने और पूछने पर बोले कि धोबी की गुलामी उन्हें पसन्द नहीं थी। गाँधीजी धुलाई-कला में इतने निपुण बन सके कि गोखले के दुपट्टे पर इस्त्री लगाकर प्रमाण-पत्र भी पाया था।

II. सारांश लिखिए :–

गाँधीजी का काम यद्यपि ठीक चल रहा था, फिर भी उन्हें काम से संतोष नहीं था। मन में यह मंथन चलता रहता था कि जीवन में अधिक सादगी आनी चाहिए और कुछ-न-कुछ शारीरिक सेवा-कार्य होना चाहिए।

संयोग से एक दिन एक अपंग कोढ़ी गाँधीजी के घर आ पहुँचा। गाँधीजी ने उसे एक कमरे में रखा, उसके ज़ख्मों को धोया और शुश्रूषा की। उसके बाद उसे गिरमिटियों के सरकारी अस्पताल में भेज दिया।

गाँधीजी के मन में यह हुआ करता रहा कि यदि ऐसा कोई शुश्रूषा का काम मिलता रहे तो अच्छा हो। इस विचार से एक छोटे-से अस्पताल में काम करने लगे।

अस्पताल के काम से गाँधीजी के मन को शान्ति मिली। रोगी से हाल-चाल पूछकर डाक्टर को समझाते थे और डाक्टर जो दवा बताते, उसे तैयार करके देते थे। इस कार्य से गाँधीजी दुखी हिन्दुस्तानियों के निकट सम्बन्ध में आने लगे। यह अनुभव उन्हें आगे चलकर बड़ा उपयोगी साबित हुआ। बोअर युद्ध के समय घायलों की शुश्रूषा में तथा दूसरे रोगियों की सेवा-टहल में उन्हें बड़ी सहायता मिली। इस प्रकार सेवा द्वारा सादगी की ओर उनका झुकाव बढ़ा।

यद्यपि गाँधीजी की रहन-सहन शुरू में ठाठ-बाट की थी, परन्तु उसका मोह उन्हें अब नहीं हुआ।

इसलिए घर-गृहस्थी का खर्च कम करने के विचार से घर पर ही कपड़े धोने की शुरूआत की। इससे केवल खर्च ही नहीं बचा, बल्कि मनोरंजन भी हुआ।

एक बार गोखले दक्षिण अफ्रिका में महत्वपूर्ण भाषण देनेवाले थे। उनके दुपट्टे में सलवरें पड़ी थीं और इस्त्री करने की ज़रूरत थी। धोबी के यहाँ इस्त्री करा लेना सम्भव न था। गाँधीजी ने कहा–ज़रा मेरी विद्या को भी आजमा लीजिए।

गोखले जी बोले–"तुम्हारी वकालत पर मैं विश्वास कर सकता हूँ, पर इस दुपट्टे पर तुम्हारी धुलाई-कला का प्रयोग न होने दूँगा। तुम इसे जला डालोगे। जानते हो यह कितना अमूल्य है?"

गाँधीजी ने नम्रता के साथ दाग न पड़ने देने की ज़िम्मेदारी ली तो इस्त्री करने की अनुमति मिली। बाद को उनकी कुशलता का प्रमाण-पत्र भी उन्हें मिला।

******

20. एक पुण्य स्मरण और प्रायश्चित

डरबन और जोहान्सबर्ग में मेरे साथ कई मित्र और बहुत बार मेरे कारकुन भी रहते थे। वे आम तौर पर हिन्दू और ईसाई होते थे, अथवा प्रान्तों के हिसाब से कहें, तो गुजराती और मद्रासी। मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके विषय में मेरे मन में कोई भेद-भाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें बिल्कुल घर के जैसा समझता। यह मेरा कोई विशेष गुण नहीं, बल्कि स्वभाव ही है। मेरा एक क्लर्क ईसाई था। उसके माँ-बाप पंचम जाति के थे। कमरों में पेशाब के लिए एक अलग बर्तन होता था। उसे साफ़ करने का काम हम दोनों–दम्पति का था, नौकरों का नहीं। हाँ, जो कारकुन लोग अपने को हमारा कुटुम्बी-सा मानने लगते थे, वे तो खुद ही उसे साफ़ कर डालते थे। लेकिन यह पंचम जाति के जन्मे कारकुन नये थे। उनका बर्तन हमें ही उठाकर साफ़ कर देना चाहिए था। और बर्तन तो कस्तूरबाई उठाकर साफ़ कर देती, लेकिन इन भाई का बर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ। इसलिए हम दोनों में काफ़ी विवाद हुआ। यदि मैं उठाता हूँ, तो उसे अच्छा नहीं लगता था और खुद उठाना उसके लिए कठिन था। फिर भी आँखों से मोती की बूँदें टपक रही हैं, एक हाथ में बर्तन है और अपनी लाल-लाल आँखों से उलाहना देती हुई कस्तूरबाई सीढ़ियों से उतर रही है! वह चित्र मैं आज भी ज्यों-का-त्यों खींच सकता हूँ।

सत्याग्रही दंपति

परन्तु मैं सहृदय और प्रेमी पति था, वैसा ही निठुर और कठोर भी था। मैं अपने को उसका शिक्षक मानता था। इससे, अपने अन्ध-प्रेम के अधीन हो, मैं उसे खूब सताता था। इस कारण महज उसके बर्तन उठा ले जाने-भर से मुझे सन्तोष न हुआ। मैंने यह भी चाहा कि वह प्रसन्नतापूर्वक यह काम करे। इसके लिए मैंने उसे डांटा-डपटा भी। मैं उत्तेजित होकर यह कह गया– "देखो, यह बखेड़ा मेरे घर में न चल सकेगा।"

मेरा यह बोल कस्तूरबाई को तीर की तरह लगा। उसने भरे हुए दिल से कहा– "तो संभालो अपना घर! यह मैं चली।"

उस समय मैं ईश्वर को भूल गया था! लेश-मात्र दया मेरे हृदय में न रह गयी थी। मैंने उसका हाथ पकड़ा। सीढ़ी के सामने ही बाहर

भुक्त-भोगी मित्र

निकलने का दरवाज़ा था। मैं उस दीन अबला का हाथ पकड़े दरवाज़े तक खींचकर ले आया। दरवाज़ा आधा खोला था कि आँखों में गंगा-यमुना की धार बहाती हुई कस्तूरबाई बोली–

"तुम्हें तो कुछ शरम है नहीं, पर मुझे है। ज़रा तो लजाओ। मैं बाहर निकलकर जाऊँ; कहाँ? माँ-बाप भी यहाँ नहीं कि उनके पास चली जाऊँ; मैं ठहरी स्त्री। इसलिए मुझे तुम्हारी धौंस सुननी ही पड़ेगी। अब शरम करो और दरवाज़ा बन्द कर लो। कोई देख लेगा, तो दोनों की फजीहत होगी।"

मैंने अपना चेहरा सुर्ख तो बना रखा, पर मन में शरमा ज़रूर गया। दरवाज़ा बन्द कर दिया। जब पत्नी मुझे नहीं छोड़ सकती थी, तब मैं भी उसे छोड़कर कहाँ जा सकता था? इस तरह हमारे आपस में कई बार लड़ाई-झगड़े हुए हैं, परन्तु उनका परिणाम सदा अच्छा ही निकला है। उसमें पत्नी ने अपनी अद्‌भुत सहनशीलता के द्वारा हमेशा विजय प्राप्त की है।

आज मैं तब की तरह मोहान्ध पति नहीं हूँ, न उसका शिक्षक ही हूँ। हम आज एक-दूसरे के भुक्त-भोगी मित्र हैं, एक-दूसरे के प्रति निर्विकार रहकर जीवन बिता रहे हैं। कस्तूरबाई आज ऐसी सेविका बन गयी है, जो मेरी बीमारियों में बिना प्रतिफल की इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती है। मेरा अनुगमन करने में उसने अपने जीवन की सार्थकता मानी है और स्वच्छ जीवन बिताने के मेरे प्रयत्नों में उसने कभी बाधा नहीं डाली। इस कारण यद्यपि हम दोनों की बुद्धि और शक्ति में बहुत अन्तर है, फिर भी मेरा ख्याल है कि हमारा जीवन सन्तोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी हैं।

******

अभ्यास

I. टिप्पणी लिखिए :–

सभी जातियों पर समान-भाव

जिस प्रकार गाँधीजी सभी धर्मों के प्रति समान-भाव रखते थे, उसी प्रकार जातियों में भेद-भाव नहीं मानते थे। वे सबकी सेवा समान-भाव से करते थे।

गाँधीजी का एक क्लर्क ईसाई था। उसके माँ-बाप पंचम जाति के थे। कमरों में पेशाब के लिए एक अलग बर्तन होता था। उसे साफ़ करने का काम पति-पत्नी दोनों का था, नौकरों का नहीं। एक दिन वह ईसाई क्लर्क मित्र गाँधीजी का घर आया था। उसका बर्तन उठाने में कस्तूर बा हिचक रही थीं। यदि गाँधीजी उठाते तो, बा को अच्छा नहीं लगता था और खुद उठाना भी उन्हें कठिन लगता था। पति-पत्नी दोनों के बीच वाद-विवाद बढ़ा, तो उत्तेजित होकर गाँधीजी ने अपनी पत्नी का हाथ पकड़ा और घर से बाहर निकालने के लिए दरवाज़े तक लेकर आये। लेकिन पत्नी की करुणा-भरी बातों से गाँधीजी लज्जित हुए और पछताने लगे। इस प्रकार गाँधीजी अपने परिवार से ज़्यादा धर्मों और जातियों का सम्मान करते थे।

II. सारांश लिखिए :–

डरबन और जोहान्सबर्ग में गाँधीजी के साथ कई मित्र और रहते थे। वे आम तौर पर हिन्दू और ईसाई होते थे। प्रांतों के हिसाब से, वे गुजराती और मदरासी थे। गाँधीजी के मन में अपने मित्रों के धर्म के विषय में कोई भी भेदभाव पैदा नहीं हुआ था।

गाँधीजी का एक क्लर्क ईसाई था। उसके माता-पिता पंचम जाति, अर्थात् नीच जाति के थे। कमरों में पेशाब के लिए एक अलग बर्तन होता था। उसे साफ़ करने का काम गाँधीजी और उनकी पत्नी दोनों ही करते थे। नौकरों से वह काम नहीं करवाते थे। जो अफ़सर लोग अपने को गाँधीजी का कुटुम्बी-सा मानते थे, वे तो खुद ही उस बर्तन को साफ़ कर डालते थे। लेकिन वह ईसाई पंचम जाति में जन्मा था। उसका बर्तन गाँधीजी और उनकी पत्नी दोनों को ही उठाकर साफ़ कर देना चाहिए था। दूसरे बर्तन गाँधीजी के पत्नी कस्तूर बा उठाकर साफ़ कर देती थीं, लेकिन उस ईसाई मित्र का बर्तन उठाना उन्हें असह्य मालूम हुआ। इसलिए गाँधीजी को अपनी पत्नी के साथ काफ़ी विवाद हुआ।

वे अपनी दीन अबला का हाथ पकड़े दरवाज़े तक खींचकर ले आये। दरवाज़ा आधा खोला ही था कि आँखों में गंगा-यमुना की धार बहाती हुई कस्तूर बा जी बोलीं–"तुम्हें तो कुछ शरम नहीं है, पर मुझे है। ज़रा तो लजाओ। मैं बाहर निकलकर जाऊँ कहाँ?

गाँधीजी ने अपना चेहरा सुर्ख बना रखा, पर मन में शरमा ज़रूर गये। दरवाज़ा बन्द किया। उन्होंने अपने मन में सोचा कि जब पत्नी अपने पति को छोड़कर नहीं जा सकती थी, तब वे अपनी पत्नी को छोड़कर कहाँ जा सकते थे? इस तरह दोनों के बीच कई बार लड़ाई-झगड़े होते रहे। इन सभी में कस्तूर बा जी ने अपनी अद्भुत सहनशीलता के द्वारा हमेशा गाँधीजी पर विजय प्राप्त की।

अब गाँधीजी तब की तरह मोहान्ध पति नहीं रहे; न पत्नी का शिक्षक भी। कस्तूर बा जी ऐसी सेविका बन गयीं, जो गाँधीजी की बीमारियों में बिना प्रतिफल की इच्छा किये सेवा-शुश्रूषा करती रहीं। पति-पत्नी दोनों की बुद्धि और शक्ति में अन्तर पाये जाने पर भी, गाँधीजी का ख्याल था कि दोनों का जीवन संतोषी, सुखी और ऊर्ध्वगामी से चल सकता है।

****

प्रवेशिका पाठ्य पुस्तक–2

तीसरा भाग

हिन्दी व्याकरण

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

1.	भाषा	....	149
2.	व्याकरण	....	149
3.	वर्ण	....	150
4.	शब्द	....	151
5.	संज्ञा	....	152
6.	लिंग और वचन	....	154
7.	कारक	....	160
8.	सर्वनाम	....	162
9.	विशेषण	....	164
10.	क्रिया	....	165
11.	काल	....	168
12.	क्रिया विशेषण	....	172
13.	संबंधबोधक	....	173
14.	समुच्चयबोधक	....	174
15.	विस्मयादिबोधक	....	175
16.	उपसर्ग और प्रत्यय	....	175
17.	समास	....	177
18.	'ने' नियम	....	178
19.	न, नहीं और मत का प्रयोग	....	179
20.	अनेक शब्दों के लिए एक शब्द	....	181

❊ ❊ ❊ ❊

1. भाषा

मनुष्य चिंतनशील प्राणी है। वह चाहता है कि वह अपने मन के विचारों को दूसरों के सामने पूर्ण रूप से प्रकट करे और दूसरों के विचारों को पूर्ण रूप से समझे। इसके लिए उसे आंगिक संकेत पर्याप्त नहीं थे। इस स्थिति में वह अपने मुँह से निकलनेवाली आवाज़ को कुछ निश्चित रूप देने लगा और अपने विचारों को, इच्छाओं को, आदेशों को शब्दबद्ध कर प्रकट करने लगा।

मनुष्य अपने मन के विचार को मुँह से बोलकर दूसरे मनुष्य तक पहुँचाता है। इस बोली को हम भाषा कहते हैं।

भाषा के दो प्रकार हैं– 1. कथित भाषा, 2. लिखित भाषा। जो भाषा मुँह से बोली जाती है और कानों से सुनी जाती है, उसे हम कथित भाषा या मौखिक भाषा कहते हैं।

जो भाषा हाथ या किसी यंत्र से लिखी या टंकित की जाती है और आँखों से पढ़ी जाती है, उसे हम लिखित भाषा कहते हैं।

मानव-जीवन में लिखित भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. भाषा किसे कहते हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. भाषा की परिभाषा देते हुए उसके प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

❊ ❊ ❊ ❊

2. व्याकरण

मनुष्य का बौद्धिक स्तर बढ़ता गया और उसकी भौतिक आवश्यकताएँ भी बढ़ती गयीं। उसने दूर पर रहनेवालों तक और आनेवाली पीढ़ी तक अपने विचारों को पहुँचाना चाहा। कथित या मौखिक भाषा से यह कहाँ संभव था? इस स्थिति में उसने लिखित भाषा का आविर्भाव किया।

धीरे-धीरे उसने महसूस किया कि भाषा कथित हो या लिखित, उसके रूप में वाँछित स्थिरता या निश्चितता, अर्थात् शुद्धता हो, तभी भाषाबद्ध विचारों में अनावश्यक परिवर्तन नहीं होगा और वे विचार ज्यों के त्यों सुरक्षित रूप में दूसरों तक पहुँच सकेंगे। उसने कथित भाषा के रूप से कुछ सामान्य बातें ग्रहण कीं और उन्हें भाषा के व्यवहार के लिए नियमों के रूप में बनाया। यहीं से व्याकरण का आविर्भाव हुआ।

भाषा को शुद्ध रूप से बोलने या लिखने के नियम निर्धारित करनेवाला शास्त्र व्याकरण है।

हिंदी व्याकरण के तीन प्रकार हैं– 1. वर्ण-विचार, 2. शब्द-विचार, 3. वाक्य-विचार।

वर्ण-विचार में वर्णों की बनावट, उच्चारण आदि पर विचार किया जाता है।

शब्द-विचार में शब्दों की उत्पत्ति, बनावट और उसके भेदों पर विचार किया जाता है।

वाक्य-विचार में वाक्य-रचना, उसके भेद और प्रयोगों पर विचार किया जाता है।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. व्याकरण किसे कहते हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. व्याकरण की परिभाषा देते हुए हिंदी व्याकरण के प्रकारों को समझाइए।

❁ ❁ ❁ ❁

3. वर्ण

भाषा वाक्यों से बनती है, वाक्य शब्दों से बनता है और शब्द वर्णों से बनता है। वर्ण लिखित भाषा की सबसे छोटी इकाई है। इसे अक्षर भी कहा जाता है।

कथित भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि का लिखित रूप ही वर्ण है। इसके खंड किये नहीं जा सकते।

वर्णों के समूह को हम वर्णमाला कहते हैं।

हिंदी वर्णों के दो प्रकार हैं– 1. स्वर, 2. व्यंजन

अनुस्वार और विसर्ग को स्वर के साथ रखा जाता है।

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ – **स्वर**

अं – **अनुस्वार**

अः – **विसर्ग**

क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न

प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	
श	ष	स	ह	

हिंदी में कुछ संयुक्त व्यंजन भी व्यवहृत हैं। जैसे श्र (श् + र), क्ष (क् + ष), ज्ञ (ज् + ञ), त्र (त् + र)।

व्यंजनों के साथ जब स्वर मिलते हैं, तब बारह खड़ियों का उपयोग कर लिखा जाता है।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :-

1. वर्णमाला किसे कहते हैं? हिंदी वर्णों के प्रकार क्या-क्या हैं?

❄ ❄ ❄ ❄

4. शब्द

हम कभी-कभी अपने मन के विचारों को व्यक्त करने के लिए एकाध शब्द पर्याप्त समझते हैं। उन एकाध शब्दों में हमारा काम पूर्ण रूप से पूरा भी हो जाता है। इससे हम भाषा में शब्द का महत्वपूर्ण स्थान समझ सकते हैं। शब्द भाषा की महत्वपूर्ण इकाई है।

सार्थक ध्वनि-समूह को हम शब्द कहते हैं।

व्युत्पत्ति, रचना या बनावट, प्रयोग – इन तीन दृष्टियों से शब्द का वर्गीकरण किया जाता है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्द के चार भेद माने जाते हैं। जैसे– 1. तत्सम शब्द, 2. तत्भव शब्द, 3. देशज शब्द, 4. विदेशी शब्द।

1. **तत्सम शब्द** – ये संस्कृत के वे शब्द हैं जो उसी रूप में ज्यों के त्यों हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। जैसे– अग्नि, अश्रु, गृह, रात्रि, भ्राता....।
2. **तत्भव शब्द** – ये संस्कृत के वे शब्द हैं जो थोड़े-से परिवर्तन के साथ हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। जैसे– आग, आँसू, घर, रात, भाई....।
3. **देशज शब्द** – ये वे शब्द हैं जो अन्य भारतीय भाषाओं से हिंदी में लिये गये हैं और हिंदी के ही अपने हैं। जैसे– थैला, गाड़ी, खिड़की, घोंसला, पगड़ी, पेट, जूता, झाड़ू, लोटा, चिड़िया, कपड़ा....।
4. **विदेशी शब्द** – ये वे शब्द हैं जो किसी विदेशी भाषा से हिंदी में लिये गये हैं और हिंदी में उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं। जैसे– पेंसिल, कुली, चाभी, फ़ीस, फ़ुटबाल, ज़मीन, चाय, प्याला, अमीर, बटन, तोप, बेगम....।

रचना या बनावट की दृष्टि से शब्द के तीन भेद किये जाते हैं– 1. रूढ़ शब्द, 2. यौगिक शब्द, 3. योगरूढ़ शब्द।

1. **रूढ़ शब्द** – जिन शब्दों के खंड किये नहीं जाते और खंड करने पर उसका कुछ अर्थ नहीं निकलता, वे रूढ़ शब्द हैं। ये शब्द परंपरा से चले आ रहे हैं। जैसे- हाथ, रात, कुरसी, कलम, किताब, ज़मीन, आग, पानी....।

2. **यौगिक शब्द** – दो या दो से अधिक रूढ़ शब्दों के मेल से बने शब्द को यौगिक शब्द कहते हैं। खंडों (रूढ़ शब्द) का यौगिक अर्थ ही इसका अर्थ होता है। जैसे– पाठशाला, देवालय, रसोईघर, विद्याध्ययन, फूलमाला, कलाभ्यास....।

3. **योगरूढ़ शब्द** – योगरूढ़ शब्द भी दो या दो से अधिक रूढ़ शब्दों के मेल से ही बनता है। लेकिन अर्थ खंड-शब्दों का यौगिक अर्थ न होकर बिलकुल दूसरा होता है। योगरूढ़ शब्द का अर्थ रूढ़ी होता है। जैसे पंकज (कमल), नीलकंठ (शिव), वीणावाणि (सरस्वती), चक्रपानि (विष्णु)....।

प्रयोग की दृष्टि से शब्द के दो भेद हैं– 1. विकारी शब्द, 2. अविकारी शब्द।

1. विकारी शब्द – लिंग, वचन, कारक आदि के कारण जिन शब्दों के रूप में बदलाव होता है, वे विकारी शब्द हैं। जैसे– लड़का-लड़की (लिंग), लड़का-लड़के (वचन), लड़के-लड़कों को (कारक)।

   संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया विकारी शब्द हैं।

2. **अविकारी शब्द** – लिंग, वचन, कारक आदि के कारण जिन शब्दों के रूप में किसी प्रकार का बदलाव नहीं होता, वे अविकारी शब्द हैं। जैसे– जल्दी (लड़का जल्दी गया, लड़की जल्दी गयी, लड़के जल्दी गये, लड़कियाँ जल्दी गयीं।

   क्रिया विशेषण, संबंधबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादी बोधक अविकारी शब्द हैं।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. शब्द किसे कहते हैं? किन-किन दृष्टियों से शब्दों का वर्गीकरण किया जाता है?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्द के कितने भेद हैं? सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
2. रचना की दृष्टि से शब्द के भेदों पर उदाहरण सहित प्रकाश डालिए।
3. प्रयोग की दृष्टि से शब्द के भेद क्या-क्या हैं? सविस्तार उत्तर लिखिए।

❊ ❊ ❊ ❊

5. संज्ञा

किसी व्यक्ति, स्थान, जाति, भाव और संबंध को सूचित करनेवाले शब्द को संज्ञा कहते हैं। संज्ञा के तीन भेद होते हैं– 1. व्यक्तिवाचक संज्ञा, 2. जातिवाचक संज्ञा, 3. भाववाचक संज्ञा।

1. **व्यक्तिवाचक संज्ञा** – किसी विशेष व्यक्ति या विशेष स्थान या विशेष वस्तु का बोध करानेवाली संज्ञा व्यक्तिवाचक संज्ञा है। जैसे– महात्मा गाँधी, कन्याकुमारी, कमल, भगवद्गीता....।

2. **जातिवाचक संज्ञा** – किसी जाति के एक ही प्रकार के प्राणियों या वस्तुओं या स्थानों का बोध करानेवाली संज्ञा जातिवाचक संज्ञा है। जैसे– बालक, विद्यार्थी, शहर, देश, लेखनी, वाहन....।

3. **भाववाचक संज्ञा** – किसी व्यक्ति या वस्तु के गुण, दोष, आधार, दशा, भाव आदि का बोध करानेवाली संज्ञा भाववाचक संज्ञा है। जैसे– सज्जनता, नीचता, लंबाई, ऊँचाई, सुंदरता, बचपन, गरीबी, भक्ति, दयालुता....।

भाववाचक संज्ञाएँ चार प्रकार के शब्दों से बनती हैं– 1. जातिवाचक संज्ञा से, 2. सर्वनाम से, 3. विशेषण से, 4. क्रिया से।

जातिवाचक संज्ञा से	–	मनुष्य	–	मनुष्यता
	–	पशु	–	पशुत्व
	–	शहर	–	शहरीकरण
	–	राष्ट्र	–	राष्ट्रीयता
सर्वनाम से	–	अपना	–	अपनापन
	–	मम	–	ममता
	–	निज	–	निजत्व
विशेषण से	–	चौड़ा	–	चौड़ाई
	–	गरम	–	गरमी
	–	बड़ा	–	बड़प्पन
	–	सुंदर	–	सुंदरता
क्रिया से	–	गा	–	गाना
	–	उड़	–	उड़ान
	–	चल	–	चाल
	–	पहन	–	पहनावा

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :-

1. संज्ञा की परिभाषा दीजिए।

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :-

1. संज्ञा किसे कहते हैं और उसके कितने प्रकार हैं– समझाइए।
2. भाववाचक संज्ञा की परिभाषा देते हुए सोदाहरण लिखिए कि भाववाचक संज्ञाएँ किन-किन शब्दों से बनती हैं?

❄ ❄ ❄ ❄

6. लिंग और वचन

हमने पढ़ा है कि संज्ञा एक विकारी शब्द है, क्योंकि लिंग, वचन, और कारक के कारण उसमें विकार होता है, अर्थात् उसके रूप में परिवर्तन होता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम लिंग और वचन के विषय में और उनके नियमों के बारे में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लें।

लिंग

शब्द के जिस रूप से हमें इसका ज्ञान हो कि वह शब्द स्त्री जाति के लिए प्रयुक्त है या पुरुष जाति के लिए, उसे लिंग कहते हैं। हिंदी-व्याकरण के अनुसार लिंग के दो भेद माने जाते हैं– 1. पुल्लिंग, 2. स्त्रीलिंग।

हिंदी में केवल दो लिंगों की व्यवस्था होने के कारण घर, पुस्तक, हवा, नदी, जान, देश-जैसे अप्राणीवाचक शब्दों को भी इन दोनों ही लिंगों में, या तो पुल्लिंग में या स्त्रीलिंग में माना गया है। हिंदी सीखनेवाले दूसरे भाषा-भाषियों को यह एक हद तक कष्टदायक अवश्य है, फिर भी अभ्यास से यह आसान हो जाता है।

हिंदी सीखनेवालों को जब एक नया शब्द मिलता है, तब वे पहले उसका अर्थ जानना चाहते हैं। उसके साथ-साथ वे उस संज्ञा का लिंग भी जान लें, तो वे शुद्ध भाषा प्राप्त कर सकेंगे। क्रिया, विशेषण, संबंध कारक के विभक्ति चिह्न (का, के, की) आदि इस कार्य में सहायक सिद्ध होंगे।

पानी बहता है	('पानी' पुल्लिंग – 'क्रिया' से पता चलता है।)
हवा बहती है	('हवा' स्त्रीलिंग – 'क्रिया' से पता चलता है।)
ऊँची दीवार	('दीवार' स्त्रीलिंग – 'विशेषण' से पता चलता है।)
चौड़ा मैदान	('मैदान' पुल्लिंग – 'विशेषण' से पता चलता है।)
राम **की आँख**	('आँख' स्त्रलिंग – संबंध कारक 'की' से पता चलता है।)
सीता **का हाथ**	('हाथ' पुल्लिंग – संबंध कारक 'का' से पता चलता है।)

वचन और कारक संबंधी नियमों को जान लेना भी लिंग की पहचान में मदद देगा।

1. **पुल्लिंग** – पुरुष जाति का बोध करानेवाला शब्द-रूप पुल्लिंग है। जैसे– लड़का, घोड़ा, पहाड़, हाथ, धर्म....

   निम्नोक्त समूह के शब्द अक्सर पुल्लिंग में ही रहते हैं–

दिनों के नाम	–	सोमवार, मंगलवार, बुधवार....
महीनों के नाम	–	जनवरी, फ़रवरी, मार्च....
फलों के नाम	–	आम, केला, अमरूद....
समयसूचक शब्द	–	क्षण, पल, घंटा, दिन, सप्ताह, महीना, साल....
ग्रहों के नाम	–	चंद्र, मंगल, सूर्य....
अनाजों के नाम	–	चावल, गेहूँ, चना, बाजरा....
धातुओं के नाम	–	सोना, लोहा, ताँबा....
वृक्षों के नाम	–	आम, नारियल, नीम, पीपल....

जिन शब्दों के अंत में आव, आपा, आर, पन, त्व, ख़ाना आदि प्रत्यय लगे रहते हैं, वे पुल्लिंग माने जाते हैं। जैसे– चुनाव, बुढ़ापा, लोहार, अपनापन, नारीत्व, डाकख़ाना....।

2. **स्त्रीलिंग** – स्त्री जाति का बोध करानेवाला शब्द-रूप स्त्रीलिंग है। जैसे– लड़की, बिल्ली, कलम, नदी, आँख, अहिंसा....

निम्नोक्त समूह के शब्द अक्सर स्त्रीलिंग में ही रहते हैं–

1. नदियों के नाम	–	गंगा, कावेरी, तुंगभद्रा, नर्मदा...
2. लिपियों के नाम	–	देवनागरी, गुरुमुखी, अरबी...
3. भाषाओं के नाम	–	हिंदी, अंग्रेज़ी, तमिल, तेलुगु...
4. आकारांत तत्सम शब्द	–	वीणा, सेवा, सेना, यात्रा, कला...

जिन शब्दों के अंत में ता, आई, आवट, इया, आहट आदि प्रत्यय लगे रहते हैं, वे स्त्रीलिंग शब्द माने जाते हैं। जैसे– मानवता, ऊँचाई, बनावट, चिड़िया, घबराहट....

विशेषता यह है कि हिंदी में अन्य पुरुष के सर्वनामों के अलावा उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष के सर्वनामों के लिए भी लिंग की व्यवस्था है।

मैं पढ़ता हूँ।	–	मैं पढ़ती हूँ
हम पढ़ते हैं	–	हम पढ़ती हैं
तुम पढ़ते हो	–	तुम पढ़ती हो
आप पढ़ते हैं	–	आप पढ़ती हैं

बच्चा — बच्ची	सखा — सखी	वृद्ध — वृद्धा
लड़का — लड़की	बालक — बालिका	अध्यक्ष — अध्यक्षा
बेटा — बेटी	युवक — युवती	छात्र — छात्रा
पोता — पोती	अध्यापक — अध्यापिका	महाशय — महाशया
चाचा — चाची	सेवक — सेविका	महोदय — महोदया
काका — काकी	सहायक — सहायिका	सदस्य — सदस्या
मामा — मामी	साहब — साहिबा	भैंसा — भैंस
नाना — नानी	बूढ़ा — बुढ़िया	बाप — माँ
दादा — दादी	कुत्ता — कुतिया	पिता — माता
बकरा — बकरी	चूहा — चुहिया	भाई — बहन
घोड़ा — घोड़ी	बंदर — बंदरिया	बैल — गाय

देवर — देवरानी	बादशाह — बेगम	शेर — शेरनी
ससुर — सास	पति — पत्नी	मोर — मोरनी
आदमी — औरत	हाथी — हथिनी	पुत्र — पुत्री
नर — नारी	राजा — रानी	कवि — कवयित्री
मर्द — महिला	सम्राट — सम्राज्ञी	विद्‌वान — विदुषी
वर — वधू	स्वामी — स्वामिनी	मालिक — मालकिन
बिलाव — बिल्ली	ऊँट — ऊँटनी	बाघ — बाघिन

वचन

शब्द-रचना में वचन का बड़ा महत्त्व है। किसी भी शब्द का प्रयोग एक के लिए हुआ है या अनेक के लिए हुआ है, यह जान लेना आवश्यक है।

शब्द के जिस रूप से इसका बोध हो कि वह एक के लिए प्रयुक्त है या अनेक के लिए, उसे वचन कहते हैं। हिंदी में वचन के दो भेद माने जाते हैं- 1. एकवचन, 2. बहुवचन।

1. **एकवचन** – किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थान के एक होने का बोध शब्द के जिस रूप से हो, वह एकवचन है। जैसे- लड़का, कुरसी, कुत्ता, कलम, इमारत...
2. **बहुवचन** – व्यक्ति, वस्तु, स्थान के एक से अधिक होने का बोध शब्द के जिस रूप से हो, वह बहुवचन है। जैसे- लड़के, कुरसियाँ, कुत्ते, कलमें, इमारतें...

संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, संबंध कारक (का, के, की) से वचन की पहचान की जा सकती है।

प्राण, होश, दर्शन, हस्ताक्षर, आँसू – ये शब्द हमेशा हिंदी में बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं।

सेना, प्रजा, जनता आदि कुछ शब्द हमेशा एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं।

वचन परिवर्तन के नियम :

वचन परिवर्तन के लिए शब्दों को वर्गीकृत कर लेना और उनका लिंग पहचानना ज़रूरी है। हिंदी के शब्दों को सामान्यतः छः वर्गों में विभाजित कर सकते हैं- अकारांत, आकारांत, इकारांत, ईकारांत, उकारांत और ऊकारांत। इन छः वर्गों के शब्द पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों में रहते हैं। एक वर्ग के पुल्लिंग शब्द का रूप बहुवचन के लिए एक प्रकार से बदलता है, तो उसी वर्ग के स्त्रीलिंग शब्द का रूप दूसरे प्रकार से बदलता है।

1. अकारांत पुल्लिंग शब्द का रूप बहुवचन में नहीं बदलता। जैसे- एक घर – दस घर, एक हाथ – दो हाथ, एक वृक्ष – सौ वृक्ष....
2. अकारांत स्त्रीलिंग शब्द का रूप बहुवचन में बदलता है। अंत का 'अ' – 'एँ' हो जाता है। जैसे – कलम – कलमें, आँख – आँखें, दूकान – दूकानें....

3. आकारांत पुल्लिंग शब्द का रूप बहुवचन में बदलता है। अंत का 'आ' – 'ए' हो जाता है। जैसे– बेटा – बेटे, कपड़ा – कपड़े, कमरा – कमरे....
4. आकारांत स्त्रीलिंग शब्द का रूप बहुवचन में बदलता है। शब्द के अंत 'एँ' जोड़ा जाता है। जैसे– माला – मालाएँ, सेना – सेनाएँ, यात्रा – यात्राएँ....
5. इकारांत पुल्लिंग शब्द का रूप बहुवचन में नहीं बदलता। जैसे– स्वामि, विधि (ब्रह्म) – विधि।
6. इकारांत स्त्रीलिंग शब्द का रूप बहुवचन में बदलता है। उसके साथ अंत में 'याँ' जोड़ा जाता है। जैसे– रीति – रीतियाँ, समिति – समितियाँ....
7. ईकारांत पुल्लिंग शब्द का रूप बहुवचन में नहीं बदलता। जैसे– एक आदमी – चार आदमी, एक भाई – तीन भाई, एक मोती – सात मोती....
8. ईकारांत स्त्रीलिंग शब्द का रूप बहुवचन में बदलता है। अंत के 'ई' को ह्रस्व बनाकर 'याँ' जोड़ा जाता है। जैसे– लड़की – लड़कियाँ, कुरसी – कुरसियाँ, धोती – धोतियाँ...
9. उकारांत पुल्लिंग शब्द का रूप बहुवचन में नहीं बदलता। जैसे– साधु – साधु, मधु – मधु....
10. उकारांत स्त्रीलिंग शब्द का रूप बहुवचन में बदलता है। शब्द के अंत में 'एँ' जोड़ा जाता है। जैसे– ऋतु – ऋतुएँ, वस्तु – वस्तुएँ, धातु – धातुएँ....
11. ऊकारांत पुल्लिंग शब्द का रूप बहुवचन में नहीं बदलता। जैसे– हिंदू – हिंदू, टापू – टापू....
12. ऊकारांत स्त्रीलिंग शब्द का रूप बहुवचन में बदलता है। अंत के 'ऊ' को ह्रस्व बनाकर 'एँ' जोड़ा जाता है। जैसे– बहू – बहुएँ, वधू – वधुएँ....

वचन संबंधी कुछ अन्य नियम भी हैं–

अंत में जन, गण, लोग, वर्ग आदि लगाकर भी बहुवचन रूप बनाया जाता है। जैसे– गुरु – गुरुजन, लेखक – लेखकगण, महात्मा – महात्मा लोग, पुरुष – पुरुषवर्ग.....

स्त्रीलिंग शब्द के अंतिम 'या' को 'याँ' बनाकर भी बहुवचन रूप बनाया जाता है। जैसे– चिड़िया–चिड़ियाँ, बुढ़िया–बुढ़ियाँ, गुड़िया–गुड़ियाँ....

साधारणतः हम बता सकते हैं कि पुल्लिंग शब्दों में आकारांत (लड़का, बेटा, घोड़ा...) शब्दों को छोड़कर बाकी कोई भी शब्द बहुवचन में नहीं बदलता जब कि सभी प्रकार के स्त्रीलिंग शब्द ज़रूर बदलते हैं।

बच्चा – बच्चे	कमरा – कमरे	धंधा – धंधे
लड़का – लड़के	पत्ता – पत्ते	पेशा – पेशे
घोड़ा – घोड़े	कुत्ता – कुत्ते	रेशा – रेशे
रुपया – रुपये	रस्सा – रस्से	पैसा – पैसे
गधा – गधे	मेला – मेले	गाना – गाने

केला केले	तोता – तोते	महीना – महीने
घड़ा – घड़े	टोकरा – टोकरे	बेटा – बेटे
बगीचा – बगीचे	पोता – पोते	नाला – नाले
कपड़ा – कपड़े	खिलौना – खिलौने	रास्ता – रास्ते
अपवाद		
राजा – राजा	नेता – नेता	काका – काका
मामा – मामा	चाचा – चाचा	
पाठ – पाठ	बाग – बाग	युवक – युवक
चोर – चोर	खेत – खेत	मैदान – मैदान
मंदिर – मंदिर	पेड़ – पेड़	हाथ – हाथ
पैर – पैर	काम – काम	समुद्र – समुद्र
मनुष्य – मनुष्य	घर – घर	सिर – सिर
दिन – दिन	वृक्ष – वृक्ष	पत्र – पत्र
अध्यापक–अध्यापक	शहर – शहर	गाँव – गाँव
पहाड़ – पहाड़	साधन – साधन	देश – देश
किसान – किसान	बाघ – बाघ	मंत्री – मंत्री
रोगी – रोगी	पक्षी – पक्षी	भाई – भाई
विद्यार्थी–विद्यार्थी	व्यापारी–व्यापारी	धोबी – धोबी
पुजारी – पुजारी	मोती – मोती	आदमी – आदमी
खिलाड़ी–खिलाड़ी	मुनि – मुनि	गुरु – गुरु
पशु – पशु	साधु – साधु	डाकू – डाकू
कलम – कलमें	गाय – गायें	चीज़ – चीज़ें
जीभ – जीभें	पुस्तक – पुस्तकें	सड़क – सड़कें
इमारत – इमारतें	सरकार – सरकारें	भैंस – भैंसें
जंज़ीर – जंज़ीरें	खबर – खबरें	किताब – किताबें
चट्टान – चट्टानें	दीवार – दीवारें	आँख – आँखें
ज़मीन – ज़मीनें	दूकान – दूकानें	बूँद – बूँदें
बात – बातें	जान – जानें	भेड़ – भेड़ें
रात – रातें	ज़रूरत – ज़रूरतें	मेज़ – मेज़ें
माता – माताएँ	भाषा – भाषाएँ	यात्रा – यात्राएँ
माला – मालाएँ	सेवा – सेवाएँ	सभा – सभाएँ

शिक्षा – शिक्षाएँ	आशा – आशाएँ	लीला – लीलाएँ
लता – लताएँ	कला – कलाएँ	सेना – सेनाएँ
वीणा – वीणाएँ	विधा – विधाएँ	यातना – यातनाएँ
भावना – भावनाएँ	दिशा – दिशाएँ	प्रथा – प्रथाएँ
रचना – रचनाएँ	पीडा – पीडाएँ	पताका – पताकाएँ
कथा – कथाएँ	सुविधा – सुविधाएँ	हवा – हवाएँ
समस्या–समस्याएँ	विशेषता–विशेषताएँ	सभ्यता – सभ्यताएँ
पाठशाला–पाठशालाएँ		
लड़की–लड़कियाँ	स्त्री – स्त्रियाँ	बेटी – बेटियाँ
युवती – युवतियाँ	गाड़ी – गाड़ियाँ	रानी – रानियाँ
छुट्टी – छुट्टियाँ	पुत्री – पुत्रियाँ	चिट्ठी – चिट्ठियाँ
साड़ी – साड़ियाँ	घड़ी – घड़ियाँ	मिट्टी – मिट्टियाँ
नौकरी–नौकरियाँ	उँगली–उँगलियाँ	बीमारी – बीमारियाँ
सब्जी – सब्जियाँ	रोटी – रोटियाँ	नदी – नदियाँ
कहानी–कहानियाँ	बुराई – बुराइयाँ	तरकारी – तरकारियाँ
उन्नति – उन्नतियाँ	संस्कृति–संस्कृतियाँ	जाति – जातियाँ
दृष्टि – दृष्टियाँ	नीति – नीतियाँ	विधि – विधियाँ
वस्तु – वस्तुएँ	वायु – वायुएँ	बहू – बहुएँ
बाहु – बाहुएँ	वधू – वधुएँ	

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. लिंग किसे कहते हैं ? उसके कितने प्रकार हैं ?
2. वचन किसे कहते हैं ? उसके प्रकार क्या-क्या हैं ?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. लिंग की परिभाषा देते हुए सोदाहरण लिखिए कि लिंग के कितने प्रकार हैं और वे क्या-क्या हैं ?
2. हिंदी शब्दों के लिंग की पहचान किन-किन शब्दों से हो सकती है ? उदाहरण देकर समझाइए ।
3. वचन की परिभाषा देकर उसके भेदों पर सविस्तार लिखिए ।
4. हिंदी में वचन-परिवर्तन संबंधी नियमों को उदाहरण सहित समझाइए ।

❋ ❋ ❋ ❋

7. कारक

सभी ध्वनि-समूह शब्द माने नहीं जाते। उसे सार्थक होने की ज़रूरत है। उसी तरह केवल शब्द-समूह वाक्य नहीं बनता। उसमें अर्थ की, उसके पूर्ण होने की ज़रूरत है।

कलम मेज़ है।

मोहन कुमार बेटा है।

यह किताब गीता दो।

स्कूल घर दूर है।

इनमें संज्ञा, क्रिया, क्रिया विशेषण आदि के होने पर भी पूरा अर्थ स्पष्ट नहीं हो सका है। मेज़ पर, कुमार का, गीता को, घर से – ऐसा हो, तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है। शब्दों के इन रूपों को, याने विभक्ति सहित शब्द को कारक कहते हैं। पर, का, को, से आदि को विभक्ति या कारक चिह्न कहते हैं।

संज्ञा या सर्वनाम का जो रूप वाक्य के अन्य शब्दों के साथ, खासकर क्रिया के साथ अपना संबंध प्रकट करे, उसे कारक कहते हैं।

कारक के आठ प्रकार हैं– 1. कर्ता कारक (ने), 2. कर्म कारक (को), 3. करण कारक (से), 4. संप्रदान कारक (को), 5. अपादान कारक (से), 6. संबंध कारक (का-के-की), 7. अधिकरण कारक (में, पर), 8. संबोधन कारक (हे! अरे!...)

1. **कर्ता कारक** – क्रिया को करनेवाली संज्ञा या सर्वनाम के रूप को कर्ता कारक कहते हैं। कर्ता कारक की विभक्ति 'ने' है। यह विभक्ति सकर्मक क्रिया के भूतकालीन वाक्य के कर्ता के साथ जुड़ती है। बाकी वाक्यों में इसका लोप होता है। जैसे- राम ने रोटी खायी। कमला ने पत्र लिखा। हमने कलम खरीदी। रमेश दूकान गया। आप कल मंदिर जाएँगे।
2. **कर्म कारक** – क्रिया का फल कर्ता पर न पड़कर किसी दूसरी संज्ञा या सर्वनाम पर पड़े, तो उस संज्ञा या सर्वनाम के रूप को कर्म कारक कहते हैं। कर्म कारक की विभक्ति 'को' है। यह विभक्ति अप्राणीवाचक शब्द के साथ साधारणतः जोड़ा नहीं जाता। जैसे– माँ ने बालक को बुलाया। सुरेश विमल को देखता है। बिल्ली चूहे को मारती है। बच्चा दूध पीता है। हम खत लिखते हैं।
3. **करण कारक** – क्रिया के साधन का बोध करानेवाले संज्ञा या सर्वनाम के रूप को करण कारक कहते हैं। करण कारक की विभक्ति 'से' है। जैसे– मैं कलम से पत्र लिखता हूँ। कौआ प्यास से तड़प रहा है। हम रेल से दिल्ली गये।
4. **संप्रदान कारक** – जिसके लिए क्रिया की जाती है, उसका बोध करानेवाले संज्ञा या सर्वनाम के रूप को संप्रदान कारक कहते हैं। संप्रदान कारक की विभक्ति 'को', 'के लिए' है। जैसे– आपने गणेश को पैसा दिया। वे हमको किताब देते हैं। हमें देश की भलाई के लिए काम करना है।
5. **अपादान कारक** – अलग होने या तुलना करने या डरने का बोध करानेवाले संज्ञा या सर्वनाम के रूप को अपादान कारक कहते हैं। अपादान कारक की विभक्ति 'से' है। जैसे– गाड़ी स्टेशन से निकलती है। आम से

कटहल बड़ा है। मेरा दोस्त साँप से नहीं डरना।

6. **संबंध कारक** – शब्दों के पारस्परिक संबंध का बोध करानेवाले संज्ञा या सर्वनाम के रूप को संबंध कारक कहते हैं। संबंध कारक की विभक्ति 'का, के, की' है। मैं, हम, तू, तुम आदि सर्वनामों के साथ इसका रूप 'रा, रे, री' भी होता है। जैसे– दिल्ली हमारे देश की राजधानी है। तुम्हारी बहन का नाम क्या है?

7. **अधिकरण कारक** – शब्दों के आधार का बोध करानेवाले संज्ञा या सर्वनाम के रूप को अधिकरण कारक कहते हैं। अधिकरण कारक की विभक्ति 'में, पर' है। जैसे– हाथ में कलम है। ज़मीन पर कुरसी है।

8. **संबोधन कारक** – किसी को पुकारने का बोध करानेवाले शब्द-रूप को संबोधन कारक कहते हैं। संबोधन कारक की विभक्ति 'हे, हो, अरे, ओ' आदि हैं। जैसे– हे भगवान, तुम कहाँ हो? अरे मोहन, इधर आओ।

विभक्ति के लगते समय संज्ञा और सर्वनामों के रूपों में बहुधा परिवर्तन होता है। सर्वनामों के रूपों में जो परिवर्तन होता है, उसका विवरण तालिका में दिया गया है।

विभक्ति सहित सर्वनामों की तालिका

	मैं	हम	तू	तुम	आप	यह	वह	ये	वे	कौन	कोई	जो
ने कर्ता	मैंने	हमने	तूने	तुमने	आपने	इसने	उसने	इन्होंने	उन्होंने	किसने किन्होंने	किसी ने किन्हीं ने	जिसने जिन्होंने
को कर्म संप्रदान	मुझको मुझे	हमको हमें	तुझको तुझे	तुमको तुम्हें	आपको	इसको इसे	उसको उसे	इनको इन्हें	उनको उन्हें	किसको किसे किनको किन्हें	किसी को किन्हीं को	जिसको जिसे जिनको जिन्हें
से अधिकरण अपादान	मुझसे	हमसे	तुझसे	तुमसे	आपसे	इससे	उससे	इनसे	उनसे	किससे किनसे	किसी से किन्हीं से	जिससे जिनसे
का-के-की संबंध	मेरा मेरे मेरी	हमारा हमारे हमारी	तेरा तेरे तेरी	तुम्हारा तुम्हारे तुम्हारी	आपका आपके आपकी	इसका इसके इसकी	उसका उसके उसकी	इनका इनके इनकी	उनका उनके उनकी	किसका किसके किसकी किनका किनके किनकी	किसी का किसी के किसी की किन्हीं का किन्हीं के किन्हीं की	जिसका जिसके जिसकी जिनका जिनके जिनकी
में अधिकरण **पर**	मुझमें मुझपर	हममें हमपर	तुझमें तुझपर	तुममें तुमपर	आपमें आपपर	इसमें इसपर	उसमें उसपर	इनमें इनपर	उनमें उनपर	किसमें किनमें किसपर किनपर	किसी में किन्हीं में किसी पर किन्हीं पर	जिसमें जिनमें जिसपर जिनपर

कर्ताकारक और कर्मकारक को मुख्य कारक माना जाता है। क्योंकि सामान्यतः वाक्य की क्रिया-रचना इन दोनों में से किसी एक के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार होती है।

शेष करणकारक, संप्रदानकारक, अपादानकारक, संबंधकारक, अधिकरणकारक और संबोधनकारक का, वाक्य की क्रिया-रचना के साथ संबंध नहीं रहता। इसलिए इन कारकों को गौण कारक या सहकारक कहते हैं।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :-

1. कारक किसे कहते हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :-

1. कारक की परिभाषा क्या है, उसके कितने प्रकार हैं, सोदाहरण समझाइए।
2. कर्म कारक और संप्रदान कारक में क्या अंतर है? समझाइए।
3. करण कारक और अपादान कारक में क्या अंतर है? समझाइए।

❊ ❊ ❊ ❊

8. सर्वनाम

वाक्यों में एक ही शब्द बार-बार आए, तो भद्दा-सा लगता है। जैसे-राम गणेश का बेटा है। राम अच्छा लड़का है। राम स्कूल में पढ़ता है। राम साइकिल से स्कूल जाता है। इन वाक्यों में राम शब्द के बार-बार आने से पढ़नेवाला या सुननेवाला ऊब-सा जाता है। यदि पहले वाक्य में 'राम' और अन्य वाक्यों में 'वह' शब्द का प्रयोग हो, तो अच्छा लगता है।

संज्ञा के बदले उसी अर्थ में प्रयुक्त होनेवाला शब्द सर्वनाम है। यह वचन, विभक्ति आदि के कारण बदलता है, इसलिए सर्वनाम विकारी शब्द है। जैसे-मैं, हम, तुम आप, वह, वे....

सर्वनाम के प्रधानतः छः भेद हैं - 1. पुरुषवाचक सर्वनाम, 2. निश्चयवाचक सर्वनाम, 3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम, 4. संबंधवाचक सर्वनाम, 5. प्रश्नवाचक सर्वनाम, 6. निजवाचक सर्वनाम।

1. **पुरुषवाचक सर्वनाम** - बोलनेवाला या लिखनेवाला व्यक्ति अपने लिए, सुननेवाले या पढ़नेवाले के लिए और किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग करे, उन्हें पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-मैं (बोलनेवाला) चेन्नई का रहनेवाला हूँ। तुम (सुननेवाला) मेरी बात मानते हो। वह (अन्य व्यक्ति) मेरा दोस्त है। यह (अन्य वस्तु) मेज़ पर है।

पुरुषवाचक सर्वनाम के तीन उपभेद हैं-

अ) उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम - बोलनेवाला या लिखनेवाला व्यक्ति अपने लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग करे, उन्हें उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे-मैं, हम

आ) मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम - बोलनेवाला या लिखनेवाला व्यक्ति सुननेवाले या पढ़नेवाले व्यक्ति के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग करे, उन्हें मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे- तू, तुम, आप।

इ) **अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम** – बोलनेवाला या लिखनेवाला व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग करे, उन्हें अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे–वह, यह, वे, ये।

2. **निश्चयवाचक सर्वनाम** – किसी निश्चित व्यक्ति या वस्तु या विषय के लिए प्रयुक्त होनेवाला सर्वनाम निश्चयवाचक सर्वनाम है। जैसे– वह मेरी कलम है। वे मोहन के भाई हैं। यह धीरे-धीरे चलता है। ये हमारे अध्यापक हैं।

   यह, वह, ये, वे – ये निश्चयवाचक सर्वनाम हैं।

3. **अनिश्चयवाचक सर्वनाम** – जिन सर्वनामों से निश्चित व्यक्ति या वस्तु या विषय का बोध न हो, उन्हें अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे– दिल्ली से कोई आया है। कुछ लेते जाओ। उसने कुछ नहीं कहा।

   कोई, कुछ – ये अनिश्चयवाचक सर्वनाम हैं।

4. **संबंधवाचक सर्वनाम** – एक बात का संबंध दूसरी बात के साथ प्रकट करनेवाला सर्वनाम संबंधवाचक सर्वनाम है। जैसे–जो मेरा मित्र है, वह आपका भी मित्र है। जो बात आपने कही, वह सही है।

   जो–वह – ये संबंधवाचक सर्वनाम हैं।

5. **प्रश्नवाचक सर्वनाम** – प्रश्न का बोध करानेवाला सर्वनाम प्रश्नवाचक सर्वनाम है। जैसे – वहाँ कौन जा रहा है? दीवार पर क्या है?

   कौन, क्या – ये प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं।

   इनमें 'कौन' प्रायः प्राणीवाचक शब्दों के लिए और 'क्या' प्रायः पदार्थवाचक शब्दों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

6. **निजवाचक सर्वनाम** – 'स्वयं' का अर्थ प्रकट करनेवाला सर्वनाम निजवाचक सर्वनाम है। जैसे – मैं यह काम आप करता हूँ। तुम यह काम खुद करो। वे यह काम स्वयं करते हैं।

   आप, खुद, स्वयं – ये निजवाचक सर्वनाम हैं।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :-

1. सर्वनाम की परिभाषा दीजिए।
2. सर्वनाम के कितने भेद हैं और वे क्या-क्या हैं?
3. 'कोई' और 'कुछ' निश्चयवाचक सर्वनाम हैं या अनिश्चयवाचक सर्वनाम हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :-

1. सर्वनाम किसे कहते हैं? उसका उपयोग बताकर उसके भेदों पर प्रकाश डालिए।
2. पुरुषवाचक सर्वनाम की परिभाषा देते हुए उसके भेदों को सोदाहरण लिखिए।
3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम किसे कहते हैं और 'कोई' और 'कुछ' के प्रयोग में क्या अंतर है? समझाइए।

❋ ❋ ❋ ❋

इ) **अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम** – बोलनेवाला या लिखनेवाला व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु के लिए जिन सर्वनामों का प्रयोग करे, उन्हें अन्य पुरुषवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे–वह, यह, वे, ये।

2. निश्चयवाचक सर्वनाम – किसी निश्चित व्यक्ति या वस्तु या विषय के लिए प्रयुक्त होनेवाला सर्वनाम निश्चयवाचक सर्वनाम है। जैसे– वह मेरी कलम है। वे मोहन के भाई हैं। यह धीरे-धीरे चलता है। ये हमारे अध्यापक हैं।

यह, वह, ये, वे – ये निश्चयवाचक सर्वनाम हैं।

3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम – जिन सर्वनामों से निश्चित व्यक्ति या वस्तु या विषय का बोध न हो, उन्हें अनिश्चयवाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे– दिल्ली से कोई आया है। कुछ लेते जाओ। उसने कुछ नहीं कहा।

कोई, कुछ – ये अनिश्चयवाचक सर्वनाम हैं।

4. संबंधवाचक सर्वनाम – एक बात का संबंध दूसरी बात के साथ प्रकट करनेवाला सर्वनाम संबंधवाचक सर्वनाम है। जैसे–जो मेरा मित्र है, वह आपका भी मित्र है। जो बात आपने कही, वह सही है।
जो–वह – ये संबंधवाचक सर्वनाम हैं।

5. प्रश्नवाचक सर्वनाम – प्रश्न का बोध करानेवाला सर्वनाम प्रश्नवाचक सर्वनाम है। जैसे – वहाँ कौन जा रहा है? दीवार पर क्या है?

कौन, क्या – ये प्रश्नवाचक सर्वनाम हैं।

इनमें 'कौन' प्रायः प्राणीवाचक शब्दों के लिए और 'क्या' प्रायः पदार्थवाचक शब्दों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

6. निजवाचक सर्वनाम – 'स्वयं' का अर्थ प्रकट करनेवाला सर्वनाम निजवाचक सर्वनाम है। जैसे – मैं यह काम आप करता हूँ। तुम यह काम खुद करो। वे यह काम स्वयं करते हैं।

आप, खुद, स्वयं – ये निजवाचक सर्वनाम हैं।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. सर्वनाम की परिभाषा दीजिए।
2. सर्वनाम के कितने भेद हैं और वे क्या-क्या हैं?
3. 'कोई' और 'कुछ' निश्चयवाचक सर्वनाम हैं या अनिश्चयवाचक सर्वनाम हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. सर्वनाम किसे कहते हैं? उसका उपयोग बताकर उसके भेदों पर प्रकाश डालिए।
2. पुरुषवाचक सर्वनाम की परिभाषा देते हुए उसके भेदों को सोदाहरण लिखिए।
3. अनिश्चयवाचक सर्वनाम किसे कहते हैं और 'कोई' और 'कुछ' के प्रयोग में क्या अंतर है? समझाइए।

❄ ❄ ❄ ❄

9. विशेषण

बोलते समय किसी व्यक्ति या वस्तु या स्थान के गुण या दोष के बारे में, मात्रा या संख्या के बारे में कुछ कहना पड़ता है। जैसे-प्रकाश अच्छा लड़का है। वह बुरा आदमी है। यह चौड़ा मैदान है। वहाँ चार लड़के खेल रहे हैं। बिल्ली ने सारा दूध पी लिया।.... इन वाक्यों में प्रयुक्त 'अच्छा', 'बुरा', 'चौड़ा', 'चार', 'सारा' आदि शब्द विशेषण कहलाते हैं।

संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतानेवाला शब्द विशेषण है। यह संज्ञा के लिंग और वचन के अनुसार बदलता है, इसलिए विशेषण विकारी शब्द है।

जिस संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बतायी जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं। 'अच्छा लड़का' – इसमें 'अच्छा' विशेषण है और 'लड़का' विशेष्य है।

विशेषण के चार भेद हैं – 1. गुणवाचक विशेषण, 2. संख्यावाचक विशेषण, 3. परिमाणवाचक विशेषण, 4. निर्देशक विशेषण।

निर्देशक विशेषण को सार्वनामिक विशेषण भी कहते हैं।

1. **गुणवाचक विशेषण** – संज्ञा या सर्वनाम के गुण बतानेवाला विशेषण गुणवाचक विशेषण है। इसके पाँच उपभेद हैं–

अ) गुणवाचक–अच्छा, बुरा, नम्र, होशियार, लड़ाकू ....

आ) कालवाचक–पुराना, नया, ताज़ा, आधुनिक ....

इ) स्थानवाचक – शहरी, गंवार, पहाड़ी, कश्मीरी ....

ई) आकारवाचक – ऊँचा, चौड़ा, गोला, टेढ़ा ....

उ) रंगवाचक – काला, पीला, नीला, लाल ....

2. **संख्यावाचक विशेषण** – संज्ञा या सर्वनाम की संख्या बतानेवाला विशेषण संख्यावाचक विशेषण है। इसके छः उप भेद हैं –

अ) पूर्णांकवाचक – एक, दो, सौ, हज़ार, लाख ....

आ) अपूर्णांकवाचक – पाँव, आधा, पौन, सवा, डेढ़ ....

इ) क्रमवाचक – पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा ....

ई) आवृत्तिवाचक – दुगुना, तिगुना, चौगुना, पंचगुना ....

उ) समूहवाचक – दोनों, तीनों, चारों, पाँचों ....

ऊ) प्रत्येक वाचक – प्रत्येक, हर एक ....

3. **परिमाणवाचक विशेषण** – नाप-तोल आदि परिमाण का बोध करानेवाला विशेषण परिमाणवाचक विशेषण है। इसके दो भेद हैं–

अ) निश्चितवाचक – कम, थोड़ा, चार किलो, पाँच लिटर .....

आ) अनिश्चितवाचक – कोई, कुछ ....

4. **निर्देशक या सार्वनामिक विशेषण** – किसी संज्ञा के प्रति निर्देश या संकेत प्रकट करनेवाला विशेषण निर्देशक विशेषण है। प्रायः सर्वनाम शब्द ही इस रूप में प्रयुक्त होते हैं। इसलिए इसे सार्वनामिक विशेषण भी कहते हैं।

यह मेरा घर है ('यह' सर्वनाम है)

यह घर मेरा है ('यह' विशेषण है)

कोई गा रहा है ('कोई' सर्वनाम है)

कोई आदमी गा रहा है ('कोई' विशेषण है)

उसने क्या कहा है ('क्या' सर्वनाम है)

उसने क्या बात कही ('क्या' विशेषण है)

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. विशेषण किसे कहते हैं?
2. निर्देशक सर्वनाम का दूसरा नाम क्या है?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. विशेषण की परिभाषा देते हुए उसके भेदों को सोदाहरण समझाइए।

❊ ❊ ❊ ❊

10. क्रिया

क्रियाहीन मनुष्य को मनुष्य नहीं कहते। जैसे मानव जीवन में क्रिया का महत्व है, वैसे ही भाषा में भी। मानव आजीवन कुछ-न-कुछ करता ही रहता है और उसके चारों ओर कुछ-न-कुछ होता ही रहता है। ये करना और होना उसकी बोली में आते ही रहते हैं।

किसी कार्य का करना या होना बतानेवाला शब्द क्रिया है। संज्ञा या सर्वनाम के अनुसार या समय-समय पर कर्म के लिंग वचन और पुरुष के अनुसार क्रिया के रूप में परिवर्तन होता है। अतः क्रिया एक विकारी शब्द है।

क्रिया के मूल या सामान्य रूप को 'धातु' कहते हैं।

कर्म की दृष्टि से क्रिया के दो भेद होते हैं– 1. अकर्मक, 2. सकर्मक।

1. अकर्मक क्रिया – जिस क्रिया का कर्म नहीं होता और क्रिया का फल कर्ता पर पड़ता है, उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे– लड़का जाता है। बच्चा रो रहा है। सरला आएगी। पिताजी पाँच बजे उठे।

उपरोक्त 'जाता है', 'रो रहा है', 'आएगी', 'उठे' आदि क्रियाओं का कर्म नहीं होता और इनका फल कर्ता पर ही पड़ता है। इसलिए ये अकर्मक क्रियाएँ हैं।

2. सकर्मक क्रिया – जिस क्रिया का कर्म होता है और क्रिया का फल कर्म पर पड़ता है, उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं। जैसे– दिनेश पुस्तक पढ़ता है। कमला वीणा बजा रही है। मैं रोटी खाऊँगा। लड़कियों ने गीत गाया।

उपरोक्त 'पढ़ता है', 'बजा रही है', 'खाऊँगा', 'गाया' आदि क्रियाओं के पुस्तक, वीणा, रोटी, गीत आदि कर्म होते हैं और उनका फल कर्म पर ही पड़ता है। इसलिए ये सकर्मक क्रियाएँ हैं।

बनावट की दृष्टि से क्रिया के दो भेद हैं– 1. मूल क्रिया, 2. यौगिक क्रिया।

1. मूल क्रिया – जो क्रिया किसी दूसरी धातु से या शब्द से न बनी हो, उसे मूल क्रिया कहते हैं। जैसे– आ, जा, उठ, बैठ....

2. यौगिक क्रिया – जो क्रिया किसी दूसरी धातु या शब्द से बनी हो, उसे यौगिक क्रिया कहते है। जैसे – पढ़ा (पढ़), बुलवा (बुला), मार (मर), खिला (खा)....

यौगिक क्रिया के पाँच प्रकार हैं– 1. प्रेरणार्थक क्रिया, 2. नामधातु, 3. संयुक्त क्रिया, 4. सहायक क्रिया, 5. अनुकरणवाचक।

1) प्रेरणार्थक क्रिया – क्रिया का कर्ता खुद वह काम न करके किसी दूसरे को करने की प्रेरणा दे, उस क्रिया को प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं। इसे पहली प्रेरणार्थक क्रिया भी कहते हैं। कर्ता वह काम करने की प्रेरणा दूसरे द्वारा तीसरे को दे, उस क्रिया को दूसरी प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं।

जैसे –	पढ़	–	पढ़ा	–	पढ़वा
	कर	–	करा	–	करवा
	खा	–	खिला	–	खिलवा
	दे	–	दिला	–	दिलवा

2) नामधातु – क्रिया शब्द को छोड़कर अन्य शब्दों के साथ प्रत्यय लगाकर जो क्रिया बनी हो, उसे नामधातु कहते हैं। जैसे – हथिया (हाथ), बतिया (बात), लजा (लाज), सजा (साज)....

3) संयुक्त क्रिया – दो या तीन मूल धातुओं के मिलने से जो क्रिया बनी हो, उसे संयुक्त क्रिया कहते हैं. जैसे – मैं गाने लगा (आरंभ बोधक) हम उधर पहुँच नहीं पाये (अवकाश बोधक), मेरी बहन गाना चाहती है (इच्छा बोधक), लड़का पढ़ चुका (समाप्ति बोधक), आप यह काम कर सकते हैं (शक्ति बोधक), पिताजी चौंक उठे

(आकस्मिकता बोधक), बच्चा गिर पड़ा (पूर्णता बाधक), लड़के खेल रहे हैं (निरंतरता बोधक), मुझे बोलना पड़ा (विवशता बोधक), मैं यह काम कर डाला (काल बोधक), निर्मला पढ़ाई में लगी रहती है। (स्थिरता बोधक)

4) सहायक क्रिया – मुख्य क्रिया की काल-रचना में सहायता करनेवाली क्रिया सहायक क्रिया है। जैसे – अध्यापक आये हैं। अध्यापक आये थे। अध्यापक आये होंगे।

5) अनुकरणवाचक – ध्वनि या दृश्य के अनुसार जा क्रिया बने, उसे अनुकरणवाचक क्रिया कहते हैं। जैसे – 'खटखट' से खटखटा, 'ठकठक' से ठकठका, 'चमचम' से चमचमा, 'भनमन' से भनभना....

कर्ता, कर्म और भाव की दृष्टि से क्रिया के तीन भेद हैं– 1. कर्तृवाच्य, 2. कर्मवाच्य, 3. भाववाच्य।

1. कर्तृवाच्य – क्रिया द्वारा कही गयी बात का मुख्य विषय कर्ता हो, तो उसे कर्तृवाच्य कहते हैं।

कर्तृवाच्य में क्रिया और कर्ता का सीधा संबंध रहता है। कर्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार क्रिया बनती है। **जैसे** – लड़का पाठ पढ़ता है। लड़के पाठ पढ़ते हैं। लड़की पाठ पढ़ती है। लड़कियाँ पाठ पढ़ती हैं। मैं पाठ पढ़ता हूँ। मैं पाठ पढ़ती हूँ........

2. कर्मवाच्य – क्रिया द्वारा कही गयी बात का मुख्य विषय कर्म हो, तो उसे कर्मवाच्य कहते हैं।

कर्मवाच्य में क्रिया और कर्म का सीधा संबंध रहता है। कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार क्रिया बनती है। कर्ता के साथ 'से' करणकारक चिह्न लगे रहता है। **जैसे** – मोहन से एक पाठ पढ़ा जाता है। मोहन से दो पाठ पढ़े जाते हैं। मोहन से एक कहानी पढ़ी जाती है। मोहन से दो कहानियाँ पढ़ी जाती हैं।

3. भाववाच्य – कभी-कभी क्रिया द्वारा कही गयी बात का मुख्य विषय न कर्ता होता है, न कर्म होता है और क्रिया का अपना अर्थ ही मुख्य विषय होता है, तो उसे भाववाच्य कहते हैं।

भाववाच्य की क्रिया हमेशा अकर्मक ही रहती है और पुल्लिंग, एकवचन और अन्यपुरुष में रहती है। **जैसे** – उस आदमी से चला नहीं जाता। उस औरत से दौड़ा नहीं जाता। मुझसे सोया नहीं गया। तुमसे खेला नहीं जाएगा।

कर्तृवाच्य को कर्मवाच्य या भाववाच्य में बदलने के लिए क्रिया को सामान्य भूतकाल में लाकर उसके साथ 'जा' लगाया जाता है। कर्मवाच्य में यह क्रिया-रूप कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार बनता है और भाववाच्य में हमेशा पुल्लिंग, एकवचन और अन्यपुरुष में। कर्तृवाच्य का काल ही कर्मवाच्य या भाववाच्य का भी होता है। 'जा' के साथ काल का प्रत्यय लगाया जाता है। कर्ता करणकारक में रहता है। **जैसे** –

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य	भाववाच्य
राम रोटी खाता है।	राम से रोटी खायी जाती है।	–
सरला फल खाती है।	सरला से फल खाया जाता है।	–
मैं पाठ पढ़ती हूँ।	मुझसे पाठ पढ़ा जाता है।	–
मैं कहानी पढ़ता हूँ।	मुझसे कहानी पढ़ी जाती है।	–

वह दो पत्र लिखेगा।	–	उससे दो पत्र लिखे जाएँगे।
वे हिंदी बोले।	–	उनसे हिंदी बोली गयी।
वह बूढ़ी चल नहीं सकती।	–	उस बूढ़ी से चला नहीं जाता।
मैं सुबह-सुबह उठ नहीं सका।	–	मुझसे सुबह-सुबह उठा नहीं गया।
हम तेज़ दौड़ नहीं सकेंगे।	–	हमसे तेज़ दौड़ा नहीं जाएगा।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. कर्म की दृष्टि से क्रिया के भेद क्या-क्या हैं?
2. नामधातु किसे कहते हैं?
3. 'यह तस्वीर पिताजी ने खींची' – यह वाक्य कर्तृवाच्य है या कर्मवाच्य?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. क्रिया की परिभाषा देकर कर्म की दृष्टि से क्रिया के भेदों को सोदाहरण समझाइए।
2. क्रिया किसे कहते हैं और बनावट की दृष्टि से क्रिया के कितने भेद हैं? उदाहरण के साथ लिखिए।
3. कर्ता, कर्म और भाव की दृष्टि से क्रिया के कितने भेद हैं? सोदाहरण लिखिए।
4. कर्तृवाच्य को कर्मवाच्य या भाववाच्य में बदलने के नियम क्या हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

❊ ❊ ❊ ❊

11. काल

हम किसी विषय के बारे में बोलते हैं या सुनते हैं, तो उसमें इसका बोध अवश्य होना चाहिए कि उक्त विषय बीते हुए समय में घठित हुआ या वर्तमान समय में घटित हो रहा है या आनेवाले समय में घटित होगा। अगर इसका बोध नहीं हुआ, तो बोलने या सुनने का उद्देश्य बेकार हो जाएगा। इस दृष्टि से भाषा में 'काल' का बड़ा महत्व रहताहै।

क्रिया के जिस रूप से उसके करने या होने के समय का बोध हो, उसे काल कहते हैं।

प्रमुख रूप से काल के तीन भेद हैं– 1. भूतकाल, 2. वर्तमानकाल, 3. भविष्यत्काल।

भूतकाल – क्रिया के जिस रूप से बीते हुए समय का बोध हो, उसे भूतकाल कहते हैं।

भूतकाल के सात भेद हैं– 1. सामान्यभूत, 2. आसन्नभूत, 3. पूर्णभूत, 4. अपूर्णभूत, 5. संदिग्धभूत, 6. संभाव्यभूत, 7. हेतुहेतुमद्भूत।

1. सामान्यभूत –- यह भूतकाल का सामान्य रूप है। क्रिया का जो रूप भूतकाल को प्रकट करे, लेकिन उसकी समाप्ति का निश्चित समय प्रकट न करे, उसे सामान्य भूत कहते हैं।

जैसे – विघ्नेश ने पत्र लिखा।
– गायत्री ने गीत गाया।
– पिताजी पुस्तक लाये।
– हमने तुमको देखा।

2. आसन्नभूत – क्रिया का जो रूप यह प्रकट करे कि कार्य भूतकाल में शुरू होकर वर्तमानकाल में समाप्त हुआ है, अर्थात् अभी अभी समाप्त हुआ है, उसे सामान्यभूत कहते हैं।

जैसे – मैं आया हूँ।
– हमने पाठ लिखा है।
– नौकर दूध लाया है।
– उन्होंने ताजमहल देखा है।

3. पूर्णभूत – क्रिया का जो रूप यह प्रकट करे कि कार्य भूतकाल में शुरू होकर भूतकाल में ही समाप्त हुआ था, अर्थात् समाप्त हुए बहुत समय बीत चुका, उसे पूर्णभूत कहते हैं।

जैसे – दोस्त आया था।
– आप दिल्ली गये थे।
– मैंने उसे पैसा दिया था।
– वे हमसे मिले थे।

4. अपूर्णभूत – क्रिया का जो रूप यह प्रकट करे कि कार्य भूतकाल में शुरू हुआ, लेकिन यह प्रकट न करे कि समाप्त हुआ या नहीं, उसे अपूर्णभूत कहते हैं।

जैसे – विनायक खेल रहा था।
– माताजी गा रही थीं।
– तुम कुछ लिख रहे थे।
– सुधा पाठ याद कर रही थी।

5. संदिग्धभूत – क्रिया का जो रूप कार्य के भूतकाल में होने का सही बोध न कराए, अर्थात् संदेह प्रकट करे, उसे संदिग्धभूत कहते हैं।

जैसे – गाड़ी आयी होगी।
– आपने मुझे देखा होगा।
– लड़के स्कूल गये होंगे।
– बच्चे ने दूध पिया होगा।

6. संभाव्यभूत – यह क्रिया का वह रूप है, जिससे भूतकाल में क्रिया के होने की संभावना समझी जाए।

सामान्य भूतकालिक क्रिया पर पुरुष-लिंग-वचनानुसार 'हो', 'हों' आदि जोड़ने से संभाव्य भूतकालिक क्रिया बनती है।

जैसे – शायद लड़की गयी हो।
– संभवतः लड़का गया हो।
– कदाचित् लड़के गये हों।

7. हेतुहेतुमद्‌भूत – क्रिया का जो रूप यह प्रकट करे कि कार्य का भूतकाल में होना संभव था, लेकिन किसी दूसरे कार्य के न होने से वह नहीं हुआ, उसे हेतुहेतुमद्‌भूत कहते हैं।

जैसे – अध्यापक आते, तो छात्र भी आते।
– तुम देते, तो मैं लेता।
– विमला गाती, तो रमेश सुनता।
– लड़के खूब खेलते, तो ज़रूर जीतते।

वर्तमानकाल – क्रिया के जिस रूप से वर्तमान समय का बोध हो, उसे वर्तमानकाल कहते हैं।

वर्तमानकाल के तीन भेद हैं– 1. सामान्य वर्तमानकाल, 2. अपूर्ण वर्तमानकाल, 3. संदिग्ध वर्तमानकाल।

1. सामान्य वर्तमानकाल – क्रिया का जो रूप कार्य का वर्तमानकाल में होना बताए, लेकिन उसका निश्चित समय न बताए, उसे सामान्य वर्तमानकाल कहते हैं।

जैसे – हमारा भाई कालेज में पढ़ता है।
– पिताजी दफ़्तर में काम करते हैं।
– सुमति अच्छा गाती है।
– बच्चा दूध पीता है।

2. अपूर्ण वर्तमानकाल – क्रिया का जो रूप यह बताए कि कार्य अभी जारी है, पूर्ण नहीं हुआ है, उसे अपूर्ण वर्तमानकाल कहते हैं।

जैसे – हम पाठ लिख रहे हैं।
– गाय चर रही है।
– माताजी वीणा बजा रही हैं।
– घोड़े दौड़ रहे हैं।

3. संदिग्ध वर्तमानकाल – क्रिया का जो रूप वर्तमान में कार्य के होने में संदेह प्रकट करे, उसे संदिग्ध वर्तमानकाल कहते हैं।

जैसे – यह लड़का स्कूल में पढ़ता होगा।

– सुधा मुंबई में रहती होगी।
– गणेश और विमल कसरत करते होंगे।
– वे दोनों औरतें डाक-घर में नौकरी करती होंगी।

भविष्यत्काल – क्रिया के जिस रूप से आनेवाले समय का बोध हो, उसे भविष्यत्काल कहते हैं।

भविष्यत्काल के दो भेद हैं– 1. सामान्य भविष्यत्काल, 2. संभाव्य भविष्यत्काल।

1. सामान्य भविष्यत्काल – क्रिया का जो रूप कार्य का आम तौर पर आनेवाले समय में होना प्रकट करे, उसे सामान्य भविष्यत्काल कहते हैं।

जैसे – मोहन चेन्नई जाएगा।
– गीता मैदान में खेलेगी।
– मैं रोटी खाऊँगा।
– वे हमसे बात करेंगे।

2. संभाव्य भविष्यत्काल – क्रिया का जो रूप कार्य के आनेवाले समय में होने की उम्मीद या संभावना प्रकट करे, उसे संभाव्य भविष्यत्काल कहते हैं।

जैसे – इस साल खूब पानी बरसे।
– देश की आमदनी बढ़े।
– आपका यश अमर हो।
– प्रजा स्वस्थ रहे।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. काल किसे कहते हैं?
2. प्रमुख रूप से काल के कितने भेद हैं? वे क्या-क्या हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. भूतकाल किसे कहते हैं? भूतकाल के कितने प्रकार हैं और वे क्या–क्या हैं? उदाहरण सहित समझाइए।
2. वर्तमानकाल की परिभाषा देते हुए उसके प्रकारों पर प्रकाश डालिए।
3. काल की परिभाषा देते हुए लिखिए कि भविष्यकाल किसे कहते हैं? उसके भेद क्या–क्या हैं? उदाहरण दीजिए।

❊ ❊ ❊ ❊

12. क्रिया विशेषण

बोलते समय जैसे किसी कारणवश व्यक्ति की विशेषता का उल्लेख करना पड़ता है, वैसे क्रिया की भी विशेषता का उल्लेख करने की नौबत आती है। 'घोड़ा दौड़ता है' तो यह भी कहना पड़ता है कि वह तेज़ दौड़ता है या धीरे-धीरे दौड़ता है। 'विध्वेश ने खाया' तो इसका भी उल्लेख करना पड़ता है कि उसने कम खाया या बहुत खाया।

क्रिया की विशेषता का बोध करानेवाला शब्द क्रिया विशेषण है। क्रिया विशेषण अविकारी शब्द है।

जैसे – बच्चा ज़ोर से हँसता है।
– विजया अच्छी तरह पढ़ती है।
– हम खूब खाते हैं।
– वे मंदिर रोज़ जाते हैं।

क्रिया विशेषण के चार भेद हैं– 1. रीतिवाचक क्रिया विशेषण, 2. स्थानवाचक क्रिया विशेषण, 3. कालवाचक क्रिया विशेषण, 4. परिमाणवाचक क्रिया विशेषण।

1. रीतिवाचक क्रिया विशेषण – यह क्रिया विशेषण बताता है कि क्रिया किस रीति या ढंग से होती है।

जैसे – बच्चा धीरे धीरे चलता है।
– पानी ज़ोर से बरस रहा है।
– लोग शांतिपूर्वक जीते हैं।
– लड़के चुपचाप बैठे हैं।

2. स्थानवाचक क्रिया विशेषण – यह क्रिया विशेषण क्रिया के होने का स्थान या दिशा बताता है।

जैसे – लड़के बाहर खेलते हैं।
– हम वहाँ गये।
– सामने खड़े हो जाओ।
– फल नीचे गिरता है।

3. कालवाचक क्रिया विशेषण – यह क्रिया विशेषण क्रिया के होने का समय बताता है।

जैसे – हम बड़े सबेरे उठते हैं।
– मैं कल आऊँगा।
– पिताजी रोज़ काफ़ी पीते हैं।
– सुरेश कभी-कभी गाता है।

4. परिमाणवाचक क्रिया विशेषण – यह क्रिया विशेषण क्रिया की मात्रा या नाप-तौल बताता है।

जैसे – माताजी कम बोलती हैं।
– उसने आज बहुत खाया।
– थोड़ा पानी दीजिए।
– उन्होंने कुछ नहीं कहा।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. क्रिया विशेषण किसे कहते हैं? उसके कितने भेद हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. क्रिया विशेषण की परिभाषा देते हुए उसके भेदों को सोदाहरण समझाइए।

❊ ❊ ❊ ❊

13. संबंधबोधक

हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि केवल शब्दों का समूह वाक्य नहीं कहलाता। उसमें अर्थ की पूर्णता की आवश्यकता है। इसके लिए ज़रूरत है कि वाक्य की संज्ञा या सर्वनाम का, अन्य संज्ञा या सर्वनाम के साथ संबंध स्थापित हो। संबंधबोधक शब्द इसमें काम आते हैं।

जो शब्द संज्ञा या सर्वनाम का संबंध, वाक्य के अन्य शब्दों के साथ बताता है, वह संबंधबोधक है। संबंधबोधक अविकारी है।

जैसे – मंदिर के सामने तालाब है।
– स्कूल के अंदर बड़ा मैदान है।
– मैं पिताजी के साथ बाज़ार गया।
– दो दिनों के बाद हम एरणाकुलम जाएँगे।

ज़्यादातर संबंधबोधक शब्द विभक्ति के साथ (के या की) प्रयुक्त होते हैं।

जैसे – के पीछे, के ऊपर, के बिना,
की तरह, की तरफ़

कुछ संबंधबोधक शब्दों में यह विभक्ति लुप्त भी हो जाती है।

जैसे – गुरु बिना कौन मार्ग बताएगा।
– यह खबर पत्र द्वारा भेजी गयी।
– हमने यह काम राम भरोसे छोड़ दिया।

संबंधबोधक शब्द जब किसी संज्ञा या सर्वनाम के साथ नहीं आते, तब वे क्रिया विशेषण बन जाते हैं।

जैसे – आप बाहर जाइए।
– अंदर आना मना है।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. संबंधबोधक की परिभाषा दीजिए।

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. संबंधबोधक किसे कहते हैं? सोदाहरण समझाइए।

❊ ❊ ❊ ❊

14. समुच्चयबोधक

शब्द, वाक्यांश, वाक्य–ये सब भाषा की इकाइयाँ हैं। सरलता, सुबोधता, सुंदरता आदि की दृष्टि से शब्दों को शब्दों से, वाक्यांशों को वाक्यों से या वाक्यों को वाक्यों से मिलाना पड़ता है। समुच्चयबोधक शब्द यह काम करते हैं।

शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को आपस में मिलानेवाले शब्द को समुच्चयबोधक कहते हैं। समुच्चयबोधक के दो मुख्य भेद हैं- 1. संयोजक समुच्चयबोधक, 2. वियोजक समुच्चयबोधक।

1. संयोजक समुच्चयबोधक – यह समुच्चयबोधक शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों का मेल प्रकट करता है।

जैसे – राम और श्याम

– मेरा घर और तुम्हारा घर

– हम स्कूल जाते हैं और आप कालेज जाते हैं।

और, तथा, एवं, व आदि संयोजक समुच्चयबोधक हैं।

2. वियोजक समुच्चयबोधक – यह समुच्चयबोधक शब्दों, वाक्यांशों या वाक्यों को मिलाता तो है, लेकिन मिलाकर उनके मतलब को अलग करता है। इसके पाँच भेद हैं-

1. विरोधबोधक – पर, परंतु, किंतु, मगर, बल्कि, लेकिन.......
2. परिणामबोधक – अतः, अतएव, क्योंकि, इसलिए, कि, ताकि, इस वास्ते, इस कारण, इससे, लिहाज़ा.....
3. संकेतबोधक – यदि, जो, तो, चाहे, पर, यद्यपि, तथापि.....
4. रूपबोधक – यानी, यहाँ तक कि, मानो, अर्थात्, कि.....
5. विकल्पबोधक – या, वा, या कि, न, अथवा, केवल, न कि, चाहे, नहीं, तो.....

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. समुच्चयबोधक का काम क्या है?
2. समुच्चयबोधक के कितने भेद हैं और वे क्या-क्या हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :-

1. समुच्चयबोधक की परिभाषा देते हुए उसके भेदों पर प्रकाश डालिए।
2. समुच्चयबोधक की परिभाषा देकर संयोजक समुच्चयबोधक और वियोजक समुच्चयबोधक का अंतर स्पष्ट कीजिए।

❋ ❋ ❋ ❋

15. विस्मयादिबोधक

भाषा मनुष्य के विचार एवं भावों की शब्दिक अभिव्यक्ति है। मनुष्य अपने मन के आश्चर्य, हर्ष, क्रोध, शोक, भय, तिरस्कार, ग्लानि आदि मनोविकारों को सूचित करने के लिए कुछ शब्दों का उपयोग करता है। ये शब्द विस्मयादिबोधक कहलाते हैं। ये अविकारी होते हैं।

विस्मयादिबोधक के प्रकार यों हैं-

विस्मयबोधक	–	ओहो!, हैं!, क्या!, लो!, अरे वाह!
हर्षबोधक	–	धन्य!, वाह-वाह!, अहा!, शाबास!
तिरस्कारबोधक	–	धत्!, छिः!, हट!, क्या!, थू!
शोकबोधक	–	आह!, हा!, हाय!, ऊह!, त्राहि!, हे राम!
पीडाबोधक	–	उफ़!, हाय!, सी!
स्वीकृतिबोधक	–	अच्छा!, जी हाँ!, ज़रूर!, हाँ, हाँ!

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :-

1. विस्मयादिबोधक शब्द विकारी हैं या अविकारी?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :-

1. विस्मयादिबोधक किसे कहते हैं? उसके प्रकारों को सोदाहरण लिखिए।

❋ ❋ ❋ ❋

16. उपसर्ग और प्रत्यय

भाषा में शब्द ही नहीं, शब्दांश भी प्रयुक्त हैं। ये शब्दांश न तो अक्षर हैं और न ही शब्द। इनका प्रयोग अकेला नहीं होता, किसी शब्द के आगे या पीछे जुड़कर ही ये अर्थ देते हैं।

जो शब्दांश किसी शब्द के आदि में जुड़कर उसका अर्थ बदल देते हैं या उसके अर्थ में विशेषता उत्पन्न करते हैं, वे उपसर्ग कहलाते हैं।

जो शब्दांश किसी धातु या शब्द के अंत में लगकर उसका अर्थ बदल देते हैं या उसके अर्थ में विशेषता उत्पन्न करते हैं वे प्रत्यय कहलाते हैं। प्रत्यय को परसर्ग भी कहा जाता है।

उपसर्ग तीन प्रकार के हैं–

1. तत्सम उपसर्ग – ये संस्कृत के उपसर्ग हैं। हिंदी में उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं।

जैसे – अभि – अभिशाप, प्र – प्रबल, उप – उपवन
अनु – अनुचर, अ – अहिंसा, अप – अपमान

2. तत्भव उपसर्ग – ये हिंदी के अपने उपसर्ग हैं।

जैसे – अध – अधपका, दु – दुगुना, भर – भरपेट
स – सपरिवार, क – कपूत

3. आगत उपसर्ग – ये भारतेतर भाषाओं के उपसर्ग हैं। हिंदी में खासकर उर्दू के उपसर्गों का अधिक प्रयोग है।

जैसे – खुश – खुशकिस्मत, कम – कमज़ोर, ला – लापता
ना – नासमझ, गैर – गैरहाज़िरी, बे – बेशक
दर – दरअसल

प्रत्यय के दो प्रकार हैं– 1. कृत प्रत्यय, 2. तद्धित प्रत्यय।

1. कृत प्रत्यय – ये धातु के अंत में लगकर संज्ञा या विशेषण शब्दों का निर्माण करते हैं। इस तरह बननेवाले शब्द को कृदंत कहते हैं।

जैसे – घूमना – घुमक्कड़, भागना – भगोड़ा, कमाना – कमाऊ,
टिकना – टिकाऊ, खेलना – खिलौना, लड़ना – लड़ाई,
घबराना – घबराहट, बसना – बसेरा

2. तद्धित प्रत्यय – ये संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण या किसी अव्यय शब्द के अंत में जुड़ते हैं।

जैसे – सोना – सुनार, तेल – तेली, गाड़ी – गाड़ीवाला,
साँप – सँपेरा, बड़ा – बड़ाई, मीठा – मिठास,
लड़का – लड़कपन, रंग – रंगीला, झगड़ा – झगड़ालू,
विष्णु – वैष्णव, वेद – वैदिक

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :–

1. प्रत्यय का दूसरा नाम क्या है?
2. तत्सम उपसर्ग किसे कहते हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :–

1. उपसर्ग किसे कहते हैं? उदाहरण देकर उसके भेदों को समझाइए।
2. प्रत्यय की परिभाषा देकर उसके भेदों पर प्रकाश डालिए।
3. उपसर्ग और प्रत्यय का अंतर उदाहरण सहित समझाइए।

17. समास

कभी–कभी दो या दो से अधिक शब्द किसी विभक्ति या संबंधबोधक के बिना मिलकर उसी अर्थ या किसी विशेष अर्थ को प्रकट करते हैं। शब्दों के ऐसे मेल को समास कहते हैं।

मिले हुए शब्दों को सामासिक शब्द या समस्तपद कहते हैं। शब्दों के संबंध को अलग–अलग दिखाने की रीति को विग्रह कहते हैं।

समास के 6 भेद हैं– 1. अव्ययी भाव समास, 2. तत्पुरुष समास, 3. कर्मधारय समास, 4. द्‌वंद्‌व समास, 5. द्‌विगु समास, 6. बहुव्रीहि समास।

1. अव्ययी भाव समास – इसका पहला खंड अव्यय होता है, वही प्रधान होता है। यह क्रिया विशेषण की तरह काम आता है।

जैसे – यथाशक्ति, आजीवन, भरपेट, प्रतिदिन....

2. तत्पुरुष समास — इसमें दूसरा खंड प्रधान होता है।

जैसे – मार्ग–व्यय, रसोई–घर, कामचोर, शरणागत, घुड़दौड़, गंगा–स्नान, आपबीती......

तत्पुरुष समास के दो भेद हैं –

1. व्यधिकरण तत्पुरुष, 2. समानाधिकरण तत्पुरुष।

1. व्यधिकरण तत्पुरुष : इस समास में पूर्वपद में किसी कारक की विभक्ति का लोप होता है। जिस कारक की विभक्ति का लोप होता है, उसी कारक के नाम पर इस समास का नाम होता है।

उदा.: चिड़िमार – चिड़िया को मारनेवाला – कर्म तत्पुरुष।

2. समानाधिकरण तत्पुरुष : जिस समास का विग्रह करने में दोनों पद एक ही विभक्ति में होते हैं, उसे 'समानाधिकरण' तत्पुरुष कहते हैं।

इसका दूसरा नाम है 'कर्मधारय'।

कर्मधारय समास का उपभेद है 'द्विगुसमास'।

3. कर्मधारय समास – यह समास विशेषण और विशेष्य, विशेष्य और विशेषण तथा विशेषण और विशेषण से बनता है। इसमें भी दूसरा खंड प्रधान होता है।

जैसे – नीलकमल, नराधम, मंदप्रकाश, घनश्याम, महाकवि, भलमानस.....

4. द्‌वंद्‌व समास – इसमें दोनों खंड प्रमुख होते हैं।

जैसे – माता–पिता, भाई–बहन, रात–दिन, राजा–रंक, स्त्री–पुरुष, भूल–चूक, हाथ–पाँव, पाप–पुण्य, भला–बुरा.....

5. द्‌विगु समास – इसका पहला खंड संख्यावाचक होता है और दूसरा खंड प्रधान होता है।

जैसे – त्रिलोकी, चतुर्युग, सप्तस्वर, पंचपात्र.....

6. बहुव्रीहि समास – इसमें दोनों खंड प्रधान नहीं होते। यह समस्तपदों से भिन्नार्थ सूचित करता है।

जैसे – दशानन (रावण), षण्मुख (भगवान कार्तिकेय), पीतांबर (भगवान विष्णु), लंबोदर (भगवान गणेश).....

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :-

1. सामासिक शब्द या समस्त पद किसे कहते हैं?
2. समास के भेद क्या-क्या हैं?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :-

1. समास की परिभाषा देकर उसके भेदों को उदाहरण सहित समझाइए।
2. सामासिक शब्द या समस्तपद किसे कहते हैं? तत्पुरुष समास और कर्मधारय समास का अंतर समझाइए।
3. समास की परिभाषा देते हुए द्वंद्व समास और बहुव्रीहि समास का अंतर सोदाहरण समझाइए।

❊ ❊ ❊ ❊

18. 'ने' नियम

बहुधा कर्तृवाच्य के वाक्यों में कर्ता ही कर्ता कारक का काम करता है। इसका विभक्ति चिह्न लुप्त रहता है। अन्य भाषाओं की तरह हिंदी में भी यही नियम चलता है। लेकिन कुछ जगहों में कर्ता कारक के विभक्ति चिह्न के रूप में 'ने' का प्रयोग किया जाता है।

1. सामान्यभूत, आसन्नभूत, पूर्णभूत, संदिग्धभूत आदि कालों के वाक्यों में जिनकी क्रिया सकर्मक हो, कर्ता के साथ 'ने' जोड़ा जाता है।

जैसे – राम ने देखा। राम ने देखा था।
राम ने देखा है। राम ने देखा होगा।

2. क्रिया का रूप कर्ता के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार न होकर कर्म के लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार होता है।

जैसे – राम ने यह तस्वीर देखी। राम ने यह तस्वीर देखी थी।
राम ने यह तस्वीर देखी है। राम ने यह तस्वीर देखी होगी।

3. यदि कर्म लुप्त हो या कर्म के साथ 'को' हो, तो क्रिया का रूप पुल्लिंग एकवचन में रहता है।

जैसे – राम ने देखा। राम ने सीता को देखा।
राम ने देखा है। राम ने सीता को देखा है।
राम ने देखा था। राम ने सीता को देखा था।
राम ने देखा होगा। राम ने सीता को देखा होगा।

4. ला-, बोल-, भूल- आदि क्रियाओं को हिंदी में अकर्मक मानकर इनके कर्ता के साथ 'ने' जोड़ा नहीं जाता।

जैसे – राम किताब लाया।
सुशीला फल लायी।
पिताजी हिंदी बोले।
लड़कियाँ नहीं बोलीं।

मेरा दोस्त मुझे नहीं भूला।
हम आपको नहीं भूले।

5. हिंदी में कुछ ऐसी क्रियाएँ भी हैं जिनके कर्ता के साथ कभी उन्हें अकर्मक मानकर 'ने' लगाया नहीं जाता और कभी उन्हें सकर्मक मानकर 'ने' लगाया जाता है।

जैसे – वे आपस में लड़े।
उन्होंने लड़ाई लड़ी।
मैं कुछ भी नहीं समझा।
मैंने आपकी बात समझी।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :-

1. 'ने' का प्रयोग किस काल में किया जाता है?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :-

1. 'ने' नियम विस्तार से लिखिए।

❋ ❋ ❋ ❋

19. न, नहीं और मत का प्रयोग

नहीं – वाक्य को मुख्यतः निषेधात्मक या नकारात्मक रूप देने के लिए 'नहीं' का प्रयोग किया जाता है। यह प्रायः क्रियापद के पहले होता है।

जैसे – मेज़ पर कलम है। मेज़ पर कलम **नहीं** है।
उसने पढ़ा। उसने **नहीं** पढ़ा।
हम आएँगे। हम **नहीं** आएँगे।

वर्तमानकाल के निषेधात्मक या नकारात्मक वाक्यों में सहक्रिया 'हूँ', या 'हो' या 'है' या 'हैं' का लोप हो जाता है।

जैसे – श्याम चाय पीता है। श्याम चाय नहीं पीता।
मैं रोटी खाती हूँ। मैं रोटी नहीं खाती।
लड़के गेंद खेलते हैं। लड़के गेंद नहीं खेलते।

समय-समय पर किसी बात से सीधा इनकार करने के लिए भी 'नहीं' का प्रयोग किया जाता है।

जैसे – क्या तुम माँस खाते हो?
नहीं।

'न' का प्रयोग बहुधा अनुरोध करते समय, विकल्प जानते समय, असहमति प्रकट करते समय किया जाता है।

जैसे – आप यह काम न करें। (अनुरोध)

मैं उधर जाऊँ या न जाऊँ? (विकल्प)

वह आदमी यहाँ न आए। (असहमति)

समय-समय पर नकारात्मकता ही नहीं, बल्कि सकारात्मकता जताने के लिए भी **'न'** का प्रयोग किया जाता है।

जैसे – कुछ न कुछ तो वे बोलेंगे ही।

किसी न किसी दिन यह संभव हो जाएगा।

कभी न कभी उनकी बात साबित होगी।

कभी-कभी किसी कथन या तथ्य से उत्पन्न परिणाम की आशंका या दृढ़ता दिखाने के लिए भी 'न' का प्रयोग होता है।

जैसे – आखिर आप जीत गये न!

मेरी बात सच है न!

तुम अगले साल दिल्ली जाओगे न!

आप अध्यापक हैं न!

असमर्थता प्रकट करते समय क्रियापद के पहले 'न' या 'नहीं' दोनों का प्रयोग किया जाता है।

जैसे – हम यह काम कर नहीं सके।

हम यह काम कर न सके।

मैं तुम्हारे घर आ नहीं पाऊँगा।

मैं तुम्हारे घर आ न पाऊँगा।

'मत' का प्रयोग विध्यर्थ वाक्यों में निषेध सूचित करने के लिए किया जाता है। यहाँ भी क्रियापद के पहले ही किया जाता है।

जैसे – तुम काफ़ी मत पिओ।

आप उधर मत जाइए।

अभ्यास

I. एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :-

1. वाक्य को निषेधात्मक या नकारात्मक रूप देने के लिए किस शब्द का प्रयोग किया जाता है?

II. सविस्तार उत्तर दीजिए :-

1. न, नहीं और मत का प्रयोग उदाहरण के साथ समझाइए।

❁ ❁ ❁ ❁

20. अनेक शब्दों के लिए एक शब्द

जितने आदमी हैं, उतनी भाषा–शैलियाँ भी हैं। कुछ लोग एक शब्द के लिए अनेक शब्दों का उपयोग करते हैं, तो कुछ लोग अनेक शब्दों के लिए एक शब्द का उपयोग करते हैं। इसमें अर्थ समझाने से लेकर अपना पांडित्य सिद्ध करने तक की कई बातें हैं।

इस पाठ में पाठकों के उपयोगार्थ कुछ वे शब्द जो अनेक शब्दों की जगह प्रयुक्त होते हैं, दिये गये हैं।

जो ईश्वर को मानता हो	–	आस्तिक
जो ईश्वर को न मानता हो	–	नास्तिक
जो कम खर्च करता हो	–	मितव्ययी
जो व्याकरण के नियम जानता हो	–	वैयाकरण
जो दूर की बातें सोचता हो	–	दूरदर्शी
जिसके कोई अंग न हो	–	अनंग
जो सब कुछ जानता हो	–	सर्वज्ञ
जिसके समान कोई दूसरा न हो	–	अनुपम, बेजोड़
जितना हो सके	–	यथासंभव, भरसक
जो हित चाहता हो	–	हितैषी
जिसे लड़ने की आदत हो	–	लड़ाकू
जो किसी का उपकार न माने	–	कृतघ्न
जो दूसरों का उपकार माने	–	कृतज्ञ
जो लिखना-पढ़ना न जानता हो	–	निरक्षर
जो मार्ग दिखाता हो	–	मार्गदर्शक
जो आकाश में चलता हो	–	नभचर
जो कम बोलता हो	–	मितभाषी
जिसका कोई रूप न हो	–	निराकार
जो सप्ताह में एक बार होता हो	–	साप्ताहिक
जो महीने में एक बार होता हो	–	मासिक
जो महीने में दो बार होता हो	–	पाक्षिक
जिसका कोई शत्रु न हो	–	अजातशत्रु

जिसे किसी का भय न हो – निर्भय, निडर

जिसकी कोई सीमा न हो – असीम

जिसे मांस खाने की आदत हो – मांसाहारी

जो केवल शाकाहार करता हो – शाकाहारी

जिसने शिक्षा पायी हो – शिक्षित

जो इतिहास से संबंधित हो – ऐतिहासिक

जिसे घूमने की आदत हो – घुमक्कड़

जिसे भूलने की आदत हो – भुलक्कड़

❄ ❄ ❄ ❄

प्रवेशिका–2
PRAVESHIKA–2
नया पाठ्यक्रम / NEW SYLLABUS
नमूना प्रश्न-पत्र

समय : 3 घंटे] **[पूर्णांक : 100**

I. किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर एक या दो वाक्यों में लिखिए :- **10**

1. भरत श्रीराम से कहाँ मिलता है।
2. ब्राह्मण के घर सब लोग क्यों रो रहे थे?
3. 'न्याय की जीत' एकांकी किस नाटक पर आधारित है?
4. कृष्णदास कैसा आदमी था?
5. गुलनार कौन है?
6. महामाया बेगम को क्या दंड देती है?
7. औरंगज़ेब कैसे बादशाह बना?
8. शाहजहाँ को किसने बंदी बनाया?

II. किसी एक पात्र पर टिप्पणी लिखिए :- **5**

1. सेठ कृष्णदास 2. माण्डवी 3. गुलनार

III. किसी एक पात्र का चरित्र-चित्रण लिखिए :- **10**

1. भरत 2. भीम 3. शाहजहाँ

IV. किन्हीं तीन की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए :- **15**

1. अवश्य उनके स्वागत का पूर्ण प्रबंध हो। तुम्हें भी यह काषाय वस्त्र और कृष्ण मृगचरम का परित्याग करना चाहिए।
2. बड़ी अजीब जगह है। यहाँ आदमी बिकते हैं? मालूम होता है, यहाँ के आद्मियों में आपस में प्रेम और एकता नहीं है।
3. यदि इतनी भलाई आप इनके साथ करेंगे तो लोग आपकी ही तारीफ़ करेंगे।
4. लेकिन ऐसा हरगिज़ न होना चाहिए, कि तुम्हारे दोस्त के एक बाल भी बाँक हो। जाओ देर बिलकुल न करे।
5. सेनापति इनको बादशाह के पास पहुँचा जाओ। खड़ी हुई हो। विस्मय हुआ? राजपूतों का यही बदला है।
6. खुदा का दिया हुआ दिल सभी आद्मियों में एक सा है, चाहे वह बादशाह हो या मज़दूर।

V. किन्हीं दो पर टिप्पणियाँ लिखिए :- **10**

1. माँ-बाप और जन्म
2. माँसाहार की मुल्तवी
3. धर्मों के प्रति समभाव
4. मेट्रिकुलेशन का छात्र

VI. किसी एक का सारांश लिखिए :- **10**

1. हाई स्कूल में 2. आँखें खुलीं 3. सभ्य बनने के प्रयत्न में

VII. वचन बदलिए :- **5**

1. लड़का 2. गली 3. पेड़
4. माला 5. कलम

VIII. लिंग बदलिए :- **5**

1. अध्यापक 2. अध्यक्ष 3. शेर
4. पंडित 5. बेटा

IX. निम्न अनेकार्थी शब्दों के लिए एक शब्द लिखिए :- **5**

1. जो ईश्वर को मानता हो
2. जो लिखना पढ़ना न जानता हो
3. जिसे लड़ने की आदत हो
4. जिसके समान कोई दूसरा न हो
5. जो मार्ग दिखाता हो

X. किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर एक या दो वाक्यों में लिखिए :- **10**

1. वर्णमाला किसे कहते हैं?
2. संज्ञा की परिभाषा दीजिए।
3. सर्वनाम की परिभाषा दीजिए।
4. कारक कितने प्रकार में हैं।
5. समास के भेद क्या-क्या हैं?
6. 'ने' का प्रयोग किन-किन कालों में किया जाता है।
7. प्रत्यय का दूसरा नाम क्या है?
8. वर्तमान काल के कितने भेद हैं?

XI. किन्हीं तीन प्रश्नों के उत्तर सविस्तार लिखिए :- **15**

1. व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्द के कितने भेद हैं? सोदाहरण समझाइए।
2. संज्ञा के भेदों को लिखकर उदाहरण दीजिए।
3. विशेषण की परिभाषा देकर सोदाहरण समझाइए।
4. क्रिया किसे कहते हैं और बनावट की दृष्टि से क्रिया के कितने भेद हैं? सोदाहरण समझाइए।
5. पुल्लिंग से स्त्री लिंग बनाने के नियम क्या-क्या हैं?

❋ ❋ ❋ ❋ ❋